“BIRSA MUNDA AUR KOMARAM BHEEM KE JEEVAN PAR AADHARIT SAHITYA KA TULANATMAK ADHYAYAN”

A dissertation submitted during (year) 2018 to the University of Hyderabad in partial fulfillment of the award of M. Phil Degree in Hindi, School of Humanities.

By

RATODE SURESH

(16HHHL13)

M.Phil. Hindi, 2018

Under the Supervision of

Dr. Bhim Singh

Department of Hindi,

School of Humanities

University of Hyderabad

Hyderabad – 500046

Telangana State (India)

“बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के जीवन पर आधारित साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन”

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की एम. फिल. हिन्दी उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध)

शोधार्थी

राठोड़ सुरेश

16HHHL13

एम.फिल. हिन्दी, वर्ष -2018

शोध-निर्देशक

डॉ. भीम सिंह

हिन्दी विभाग, मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद – 500046

तेलंगाना प्रदेश (भारत)

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled ***"BIRSA MUNDA AUR KOMARAM BHEEM KE JEEVAN PAR AADHARIT SAHITYA KA TULANATMAK ADHYAYAN" ["बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के जीवन पर आधारित साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन"]*** submitted by **RATODE SURESH** bearing Reg. No. **16HHHL13** in partial fulfillment of the requirements for the award of Master of philosophy in Hindi in a bonafide work carried out by him/her under my supervision and guidance which is a plagiarism free thesis.

The thesis has not been submitted previously in part or in full to this or any other University of Institution for the award of any degree or diploma.

Supervisor/s　　Head of the Department/Centre　　Dean of the School

DECLARATION

I **RATODE SURESH**, hereby declare that this dissertation entitle ***"BIRSA MUNDA AUR KOMARAM BHEEM KE JEEVAN PAR AADHARIT SAHITYA KA TULANATMAK ADHYAYAN" ["बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के जीवन पर आधारित साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन"]*** submitted by me under the guidance and supervisor of **Dr. Bhim Singh** is a bonafide research work which is also free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my dissertation can be deposited in shodhganga/INFLIBNET

Date: Name: RATODE SURESH

(signature of the student)

Reg. No. 16HHHL13

बिरसा मुंडा (1875-1901)

कोमराम् भीम (1901-1940)

प्रस्तावना

प्रस्तावना

ज्ञात स्रोतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि, आदिवासियों का भारत भूमि से अत्यंत प्राचीन रिश्ता है। इसलिए आदिवासियों को मूल 'निवासी' भी कहा जाता है। 'आदिवासी' शब्द का अर्थ है- आदि से किसी स्थान पर निवास करने वाला। आदिवासी समाज जितना प्राचीन और वनों में निवास करने वाला है उसके बराबर अन्य कोई समाज नहीं है। वह आरंभ से ही जंगलों पर निर्भर थे और आज भी हैं। सही अर्थ में जंगल ही उनका पालन-पोषण करता है और इस बात का आदिवासी समाज को एहसास है। इसलिए वह यहाँ की जमीन और जंगलों से प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं। आदिवासियों की पीढ़ियाँ सदियों से जल, जंगल और जमीन के सहारे अपना जीवन व्यतीत करती आई हैं। जंगल उनके लिए माँ के समान है। जंगल के पेड़ काटना उनके लिए अपनी माता को यातना देने जैसा है। इसलिए वह अपनी जन्मदात्री माँ और पालन-पोषण करने वाली जंगल रूपी माँ में कोई भेद-भाव नहीं करते हैं। आज की इक्कीसवीं सदी में भी और तकनीकी विकास के बावजूद वह जल-जंगल-जमीन से भावनात्मक रूप से जुड़े हैं और इसी को अपना जीवन यापन करने का सहारा मानते हैं।

आज के समय में भारत में आदिवासियों की आबादी 2011 की जनगणना के अनुसार लगभग 10 करोड़ है। पहले जनगणना की अपेक्षा 2011 के जनगणना में आदिवासियों की आबादी में निश्चित रूप से वृद्धि हुई है। भारत में अनेक आदिवासी जनजातियाँ निवास करती हैं। यह जनजातियाँ अपने-अपने समूह में रहकर अन्य जनजातीय समूह से बिल्कुल भिन्न होती हैं। इन समग्र जनजातियों की भाषाएँ, आचार-विचार, रहन-सहन, जीवन-पद्धति आदि अलग-अलग होती हैं। उनका विवाह भी अपनी ही जनजातियों में होता है। वह अपने समूह का अस्तित्व बचाने के लिए चली आती हुई परंपरा का कठोरता से पालन करते हैं। भारत में कुल 461 आदिवासी जनजातियाँ निवास करती हैं, जिसमें 424 जनजातियाँ भारत के सात क्षेत्रों में विभाजित हुई हैं।

विश्व का विकास तीव्र गति से हो रहा है। तकनीकी, विज्ञान, स्वास्थ्य आदि के संदर्भ में तो बहुत प्रगति हुई है। लेकिन इसके बावजूद आदिवासी समाज जिस स्थिति में था, उसी स्थिति में जीने के लिए विवश है। इनको विकास का उस रूप में लाभ नहीं हुआ है। वह आज भी शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सुविधाओं से वंचित है। वह आज भी मुख्यधारा के समाज में नहीं आ पाया है। उनकी प्राचीन स्थिति में और आज की स्थिति में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। शिक्षा के प्रति उनके मन में जो उदासीनता है वह आज भी जस-की-तस है। मुख्यधारा का समाज भी उन्हें अपने साथ जोड़ने में असफल रहा है। उनके पिछड़ेपन का महत्त्वपूर्ण कारण अशिक्षा है। स्वास्थ्य के संदर्भ में भी आदिवासी समुदाय पिछड़ा हुआ है। उनके पास कोई

प्राथमिक स्वास्थ्य की सुविधा भी उपलब्ध नहीं है। आदिवासी समुदाय भी इसके प्रति गंभीर नहीं है। स्वास्थ्य सुविधा के अभाव के कारण आज भी अनेक आदिवासियों की मृत्यु हो जाती है। सरकार भी उनके स्वास्थ्य का और उनके स्वास्थ्य संबंधी प्रचार-प्रसार करने में कोई ध्यान नहीं देती। साथ-ही-साथ उनके पिछड़ेपन का अन्य महत्त्वपूर्ण कारण हम अंधविश्वास को मान सकते हैं। उनमें अंधविश्वास का भूत इस तरह बैठा है कि वह निकल ही नहीं पा रहा है। किसी के बीमार होने पर वह दवा देने की अपेक्षा झाड़-फूँक करते हैं। इससे बीमारी में वृद्धि होकर, अंत में वह मर जाता है। इसी के साथ-साथ शोषण भी इनके पिछड़ेपन का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। शोषण तो आदिवासियों का आरंभ से ही होता आया है और आज भी निरंतर हो रहा है, बस तरीके बदले हैं। यह शोषण उनमें शिक्षा का अभाव, अज्ञानता और उनकी मानसिकता इन तीनों के सहारे किया जाता है।

आज का दौर विमर्शों का दौर है। आज के समय में प्रमुख रूप से दलित-विमर्श, स्त्री -विमर्श और आदिवासी-विमर्श अधिक प्रचलित और चर्चित विमर्श है। आदिवासी-विमर्श में साहित्य की प्रत्येक विधाओं के द्वारा आदिवासी समाज की दयनीय स्थिति को उजागर किया गया है। आज कल समग्र विधाओं में उनकी प्राचीन संपन्नता और आज की विपन्नता को बहुत कुशलता से दर्शाया गया है। आज के समय में आदिवासी समुदाय की साहित्यिक कृतियों में जो छवि दिखाई जाती है वह उनकी वास्तविक छवि है।

आदिवासी समाज ने अपने अधिकारों और अस्मिता के लिए आज तक बहुत सारे आंदोलन किये हैं। ये आंदोलन उन पर किये जाने वाले निर्मम जुल्मों के प्रतिकार थे।

प्रस्तुत शोध-ग्रंथ में बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम पर लिखे गए साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। *इसमें झारखंड और आदिलाबाद क्षेत्र अपनी समग्र विशेषताओं के साथ जीवित हो उठा है*। इसके साथ-ही-साथ दोनों महानायकों की जीवन गाथा समाहित हुई है। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम पर लिखा गया साहित्य अलग-अलग भाषाओं में रचित अवश्य है लेकिन दोनों का उद्देश्य एक समान है। इन दोनों भाषाओं के साहित्य में मुंडा आदिवासी समुदाय और गोंड आदिवासी समुदाय की सूक्ष्म एवं समग्र रूप से तस्वीर उभारी गई है। दोनों पर आधारित साहित्य में दोनों समुदायों का अपने-अपने अस्तित्व के लिए, अपने हकों के लिए जो संघर्ष है उसे बखूबी दर्शाया है। साथ-ही-साथ दोनों समुदाय की अनेक पद्धतियाँ जैसे- जीवन-निर्वाह-पद्धति, विवाह-पद्धति, संस्कृति, रीति-रिवाज आदि का भी सूक्ष्मता से रेखाकंन किया है। दोनों समुदाय की अनेक पद्धतियों में साम्य भी है और वैषम्य भी है। साहित्यकारों का प्रमुख और महत्त्वपूर्ण उद्देश्य बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के जीवन-संघर्ष को दर्शाना है। ये दोनों महानायक आजीवन अपने हकों के लिए उन पर होने वाले जुल्मों के विरोध में लड़ते रहे।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध का विषय है *'बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के जीवन पर आधारित साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन'*। इसे अध्ययन की सुविधा हेतु तीन अध्यायों में विभाजित किया गया है। साथ-ही-साथ ये तीन अध्याय अनेक उपाध्यायों में वर्गीकृत किये गये हैं।

इस लघु शोध प्रबंध का प्रथम अध्याय है- *'भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में आदिवासियों की भूमिका'*। जिसके अंतर्गत आधुनिक भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता को विविध उपागमों के द्वारा दर्शाया गया है। साथ-ही-साथ भारत में हुए प्रमुख आदिवासी आंदोलन को भी दिखाया है। और अंत में बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में जो योगदान रहा है उसे भी उजागर किया है। साथ-ही-साथ बिरसा मुंडा का 'उलगुलान आंदोलन' और कोमरम् भीम के 'जोड़ेघाट आंदोलन' का विस्तृत रूप से परिचय दिया गया है।

द्वितीय अध्याय है- *'बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के जीवन पर आधारित साहित्य का परिचयात्मक विवेचन'*। जिसके अंतर्गत बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम का परिवेश, उन पर लिखे गए साहित्यिक-कृतियों का विवेचन और उनके आंदोलन को भी संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय है- *'बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के जीवन पर आधारित साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन'*। जिसके अंतर्गत कथ्य, परिवेश, जीवन निर्वाह पद्धति, सांस्कृतिक मूल्य, भौगोलिक अवस्थिति, राजनीतिक सहभागिता, पात्र और भाषा-शैली आदि बिंदुओं के सहारे उनमें निहित साम्य और वैषम्य को दर्शाया है और अंत में इस समग्र अध्ययन का निचोड़ उपसंहार के रूप में प्रस्तुत किया है। इस लघु शोध कार्य में जिन ग्रंथों की सहायता मिली है उन ग्रंथों को भी संदर्भ ग्रंथ सूची में समाविष्ट किया है।

प्रस्तुत शोध कार्य के लिए मैंने तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक, ऐतिहासिक, और अनुवाद पद्धति का प्रयोग किया है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध की विषय-चयन की प्रक्रिया से लेकर उसे अंतिम आकार प्रदान करने तक मेरे शोध निर्देशक डॉ. भीम सिंह जी की विशेष और अविस्मरणीय भूमिका रही है। उनकी प्रेरणा और उनका उत्साह मुझे प्रायः लिखने के लिए निरंतर प्रेरित करता रहा और उसका ही फल है कि आज यह लघु शोध प्रबंध आपके समक्ष प्रस्तुत है। अतः मैं इसके लिए उनका बहुत आभारी हूँ। साथ-ही-साथ मैं हिंदी के भूतपूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. आर.एस. सर्राजु जी एवं वर्तमान विभागाध्यक्ष प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी जी तथा हिंदी विभाग के समग्र प्राध्यापकों का भी आभारी हूँ। जिन्होंने मुझे समय-समय पर मार्गदर्शन कर मेरे उत्साह का वर्धन किया।

अंततः मैं अपने माता-पिता, भाई, बहन (रेणुका, शिवाजी नरसिंह राठोड़, श्रीराम, जयराम और विजयमला) का भी अत्यंत आभारी हूँ जिन्होंने शोध के दौरान मुझे धैर्य दिया और मुझ पर विश्वास रखकर मेरा उत्साह वर्धन किया है। और अंत में मैं उन सभी मित्रों का आभारी हूँ जिनकी मुझे इस लघु शोध प्रबंध के कार्य में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सहायता मिली है उन सभी मित्रों का मैं मन से आभार व्यक्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी इनका साथ बना रहेगा और हर पथ पर उनका मार्गदर्शन मिलता रहेगा। हैदराबाद विश्वविद्यालय के ग्रंथालय के सभी ग्रंथालयीन कर्मचारियों का भी मैं आभारी हूँ।

दिनांक : **राठोड़ सुरेश**

स्थान : हैदराबाद

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ सं.
प्रस्तावना	i-iv
प्रथम अध्याय : ***भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में आदिवासियों की भूमिका***	1-47

1.1. आधुनिक भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता

1.1.1. औपनिवेशिक उपागम

1.1.2. राष्ट्रवादी उपागम

1.1.3. मार्क्सवादी उपागम

1.1.4. उपाश्रितवर्गवादी उपागम

1.1.5. निम्नवर्गीय उपागम

1.1.6. दलित उपागम

1.1.7. नारीवादी उपागम

1.2 भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में आदिवासियों के प्रमुख आंदोलन

1.2.1 भील विद्रोह

1.2.2 मानगढ़ विद्रोह

1.23 खासी विद्रोह

1.2.4 नागा विद्रोह

1.2.5 जेलियांगरांग आंदोलन

1.2.6 तिलका मांझी का विद्रोह

1.2.7 कोल विद्रोह

1.2.8 संथाल विद्रोह

1.2.9 रंपा विद्रोह

1.2.10 वारली संघर्ष

1.3 बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम का भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में योगदान

1.3.1 बिरसा मुंडा का उलगुलान-आंदोलन

1.3.2 कोमरम् भीम का जोड़ेघाट-आंदोलन
1.3.3 बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के आंदोलन का महत्त्व

द्वितीय अध्याय : *'बिरसा मुंडा' और 'कोमरम् भीम' के जीवन पर आधारित साहित्य का परिचयात्मक विवेचन* 48-100

2.1 'बिरसा मुंडा' का परिवेश एवं आंदोलन
2.1.1 परिवेश
2.1.2 बिरसा मुंडा का बचपन
2.1.3 बिरसा मुंडा का आंदोलन
2.2 'बिरसा मुंडा' के जीवन पर आधारित साहित्यिक कृतियाँ: एक विवेचन
2.2.1 जंगल के दावेदार (उपन्यास)
2.2.2 धरती आबा (नाटक)
2.2.3 ओ मेरे बिरसा (कविता)
2.2.4 बिरसा मुंडा की याद में (कविता)
2.3 'कोमरम् भीम' का परिवेश एवं आंदोलन
2.3.1 कोमरम् भीम का जन्म एवं परिवार
2.3.2 परिवेश
2.3.3 कोमरम् भीम का आंदोलन
2.4 'कोमरम् भीम' के जीवन पर आधारित साहित्यिक कृतियाँ: एक विवेचन
2.4.1 कोमरम् भीम (उपन्यास) साहू-अल्लम राजय्या
2.4.2 आदिवासी वीरुडु कोमरम् भीम
2.4.3 अडवि तल्लि (वन माता)
2.4.4 कोमरम् भीम (उपन्यास)
2.4.5 कोमरम् भीम (नाटक)

तृतीय अध्याय : *'बिरसा मुंडा' और 'कोमरम् भीम' के जीवन पर आधारित साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन* 101-148

3.1 कथ्यगत

3.2 परिवेश

3.3 जीवन-निर्वाह पध्दति

3.4 सांस्कृतिक-मूल्य

- 3.4.1 संस्कृति
- 3.4.2 भारतीय संस्कृति
- 3.4.3 आदिवासी संस्कृति
- 3.4.4 बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के साहित्य में चित्रित संस्कृति
- 3.4.5 सामूहिक सामाजिक संरचना
- 3.4.6 आदिवासी धार्मिक आस्थाएँ
- 3.4.7 ईमानदारी और नैतिकता
- 3.4.8 प्रकृति से लगाव
- 3.4.9 विवाह एवं त्यौहार
    - 3.4.9.1 त्यौहार
    - 3.4.9.2 करम पर्व
    - 3.4.9.3 दंडारी (गुस्साडी) उत्सव
- 3.4.10 आदिवासी संस्कृति और संघर्ष

3.5 भौगोलिक-अवस्थिति

- 3.5.1 भौगोलिक क्षेत्रफल
- 3.5.2 मौसम
- 3.5.3 पर्यटन स्थल

3.6 राजनीतिक-सहभागिता

- 3.6.1 पंचायत-व्यवस्था
- 3.6.2 आदिवासी समाज और राजनीतिक-सहभागिता

3.7 पात्रगत

- 3.7.1 पुरुष पात्र
- 3.7.2 स्त्री पात्र
- 3.7.3 विदेशी पात्र
- 3.7.4 सामंत पात्र

3.8 आंदोलन: शक्ति और सीमाएँ

3.9 **भाषा-शैली**

3.9.1 भाषा
3.9.2 शैली
3.9.2.1 वर्णनात्मक-शैली
3.9.2.2 भावात्मक-शैली
3.9.2.3 पत्रात्मक-शैली
3.9.2.4 कथा-शैली
3.9.2.5 संवादात्मक-शैली
3.9.3 बिम्ब
3.9.4 प्रतीक
3.9.5 मिथक
3.9.6 शब्द-चयन
3.9.6.1 अंग्रेजी-शब्द
3.9.6.2 देशज-विदेशज शब्द
3.9.6.3 मुंडारी-शब्द
3.9.6.4 गोंडी-शब्द
3.9.6.5 हिंदी-देशज शब्द
3.9.6.6 तेलुगु-देशज शब्द
3.9.6.7 उर्दू-अरबी और फारसी
3.9.6.8 संयुक्त अर्थ वाले शब्द
3.9.6.9 अशिष्ट-शब्द

उपसंहार 149-150

संदर्भ ग्रंथ-सूची 151-152

परिशिष्ट- (क) बिरसा मुंडा का परिवार 153

परिशिष्ट- (ख) कोमरम् भीम का परिवार 154

प्रथम अध्याय

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में आदिवासियों की भूमिका

प्रथम अध्याय

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में आदिवासियों की भूमिका

1.1 *आधुनिक भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता*

1857 ई. को भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का प्रथम आंदोलन माना जाता है। लगभग पाश्चात्य एवं भारतीय इतिहासों में प्रथम स्वाधीनता संग्राम के रूप इसी 1857 ई. के विद्रोह का जिक्र है यह जो प्रथम राष्ट्रवादी आंदोलन माना जाता है। लेकिन वास्तविक रूप में यह भारत का प्रथम आंदोलन नहीं है बल्कि भारत में आंदोलन की शुरुआत अंग्रेजों के आगमन से ही हुई थी। भारत में अंग्रेजों का आगमन व्यापार के हेतु हुआ था वह व्यापार के बहाने भारत में आये और यहाँ की स्थितियाँ, यहाँ की साधन-सामग्री, कच्चामाल और यहाँ के क्षेत्रीय राजाओं में आपसी दुश्मनी इन सब स्थितियों को देखकर उन्हें भारत पर नियंत्रण लेने के लिए स्थितियाँ अनुकूल लगी। यहाँ के राजाओं ने भी उन्हें सहज अनुमति दे दी।

इसी का लाभ उठाकर उन्होंने एक-एक क्षेत्र को अपने कब्जे में कर लिया और अंत में समग्र भारत को पराधीनता के बेड़ी में बांध दिया। 1857 ई. का स्वाधीनता-संग्राम पराधीनता के बेड़ी से निकालने का एक प्रयास था जो असफल रहा। उसके बावजूद इतिहास में वह महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

इतिहासकारों के अनुसार 1857 ई. की विद्रोह शक्ति बहुत कुछ हिन्दू, मुस्लिम के संगठन में समाहित थी। सभी आंदोलनकारियों ने 'बहादुर शाह' को अपना सम्राट स्वीकार कर लिया था। इस विद्रोह के प्रमुख केंद्र दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, बरेली, झाँसी और आरा थे। कानपुर में विद्रोह का नेतृत्व नाना साहेब पेशवा, लखनऊ में अवध की बेगम हजरतमहल ने नेतृत्व संभाला तो, झाँसी में रानी लक्ष्मी बाई, बिहार में विद्रोह के प्रमुख नेता कुँवर सिंह थे तो फैजाबाद में मौलवी अहमदुलाह आदि। लेकिन विद्रोह के सबसे महावीर सिपाही और अन्य छोटे-छोटे क्षेत्र में लड़ रहे आदिवासी इनका इतिहास में कहीं उल्लेख तक नहीं है। जब अंग्रेजों ने भारत में आगमन किया और वह भारत में सत्ता स्थापित करने के प्रयास में थे तभी से लेकर उनका मुकाबला यहाँ के आदिवासियों से होता था। लेकिन इतिहासकारों ने अनजाने में या पक्षपात से इन छोटे-छोटे विद्रोहों का इतिहास में कहीं जिक्र नहीं किया।

जिस प्रकार 1857 ई. का आंदोलन देशव्यापी या नियोजित था इसलिए समग्र भारत में फैल गया लेकिन आदिवासियों के विद्रोह पूर्व-नियोजित और देशव्यापी नहीं थे। लेकिन इसके बावजूद उनके महत्त्व को कम करके नहीं आंका जा सकता, क्योंकि 1857 ई. के विद्रोह के जो कारण थे जैसे प्रताड़ना से मुक्ति,

स्वशासन, आर्थिक शोषण से मुक्ति, धर्म का बचाव आदि उसी प्रकार आदिवासी विद्रोह के कारण भी यही थे।

आदिवासियों ने 1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम के पहले ही अपना आंदोलन शुरू किया था लेकिन इतिहासकारों ने इसे महत्त्व नहीं दिया। उनके आंदोलन को इतिहास में उपेक्षित ही रखा गया बहुत सारे इतिहासकार, आदिवासियों के आंदोलन से परिचित थे। लेकिन पूर्वग्रह से दूषित मानसिकता से उन्होंने इतिहास का लेखन किया और उनमें उनके आंदोलनों का उल्लेख नहीं किया। 1857 ई. के पहले हुए जनजाति विद्रोह को और उनके महत्त्व को नजरअंदाज करना उनके साथ अन्याय करने जैसा है जो बिलकुल उचित प्रतीत नहीं होता। इस बात पर श्री कृष्ण सरल का मत है कि- 'इसका समय सन् 1757 ई. अर्थात पलासी के युध्द से सन् 1965 ई. अर्थात् गोवा मुक्ति तक मानना चाहिए।'

1857 ई. की आजादी की प्रथम लड़ाई जो लड़ी गयी यह भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम नहीं, यह केवल सिपाही विद्रोह है। जो आदिवासियों द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ कई आंदोलन हुए उनका कोई उल्लेख तक नहीं। इससे यह प्रतीत होता है कि आधुनिक इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता है। जो आदिवासियों ने भारत में 1857 ई. के पहले ही अंग्रेजों या अंग्रेजों द्वारा पोषित रजवाड़े, जमींदार, महाजन के खिलाफ विद्रोह करना शुरू किया था। जिन्होंने बाहरी लोगों या शासकों का कभी समर्थन नहीं किया भले लड़ते लड़ते शहीद हो गए हों।

1857 ई. का भारतीय स्वतंत्रता का जो राजे-रजवाड़ों या सामंत के हित का विद्रोह था तो उसे ज्यादा से ज्यादा सिपाही विद्रोह कह सकते हैं। लेकिन आदिवासियों द्वारा किया जा रहा विद्रोह अंग्रेजों के शासन से मुक्ति, वह बिलकुल आम जनता के द्वारा लड़ा जा रहा था जो उनकी मंशा और उद्देश्य 1857 ई. के विद्रोह से भिन्न थे। जिस सेना ने अंग्रेजों के विरुध्द कुछ कारणों से विद्रोह किये थे उसी से कई भिन्न प्रकार से आदिवासियों ने संपूर्ण भारत में उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पश्चिम से लेकर पूर्व के सीमा तक अपने समुदाय के साथ अंग्रेज और उनके द्वारा शासित महाजन, जमींदार के दमन, अन्याय, अत्याचार के खिलाफ बहुत ही क्रूरता से विद्रोह किया था।

यहाँ एक बात कहना आवश्यक है कि 1885 ई. में कांग्रेस पार्टी की स्थापना हुई जो सिर्फ अंग्रेजों के खिलाफ राजनीतिक लडाई ही लड़ रही थी जबकि उससे पहले संथाल के नायक सिदो-कान्हू 1855-56 में और बाद में बिरसा मुंडा, आदि वीर नायकों ने एक तरफ अंग्रेजों से मुक्ति की राजनीतिक लड़ाई और दमन, स्वतंत्रता, अस्मिता और उनके मौलिक अधिकारों की लड़ाई के साथ-साथ आन्तरिक औपनिवेशिक

शासकों के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी। इस विद्रोह में आदिवासियों के साथ-साथ अन्य जातियाँ भी शामिल थीं।

1857 ई. से पहले जो जनजातियों ने आंदोलन किये थे जो लगभग उससे 90 साल पहले ही आदिवासियों ने अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़े। इस पर रमणिका गुप्ता ने अपनी पुस्तक 'आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह (झारखंड)' में लिखती है कि "सर्व प्रथम झारखण्ड के रमण अल्हाडी के नेतृत्व में 1766 का पहाड़िया विद्रोह झारखण्ड की धरती पर ही शुरू हुआ था।" उससे पहले भी आदिवासियों द्वारा आंदोलन हुआ था लेकिन उनको दर्ज नहीं किया गया।

भारत में आदिवासियों ने आजादी से पूर्व से कई विद्रोह किये थे। जिनमें मुख्यतः 'पहाड़िया विद्रोह' (1766), 'ढाल विद्रोह' (1773), 'तिलका मांझी का विद्रोह' (1784), 'चुआड़ विद्रोह' (1769), 'तमाड़ विद्रोह' (1819-20), 'कोल विद्रोह' (1831-32) 'भूमिज विद्रोह' (1832-33), 'खासी विद्रोह' (1833), रोहिल्ला विद्रोह (1836-1860), 'नागा विद्रोह' (1879), 'सरदार विद्रोह' (1860-95), 'भील विद्रोह' (1881), 'उलगुलान' (1895-1900), 'मानगढ़ धाम' (1913), 'रंपा विद्रोह' (1922-24), 'जेलियांगरांग' (1932), 'जोड़ेघाट विद्रोह' (1935-40) और 'वारली विद्रोह'(1945-48) आदि।

उपर्युक्त आंदोलन 1857 ई. के भांति ही उद्देश्य सहित और महत्त्वपूर्ण थे। इन आंदोलनों का उद्देश्य विदेशी सत्ता को समूल उखाड़ना, अपने अधिकार एवं स्वराज्य प्राप्त करना आदि था। जो कि 1857 ई. का प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम भी इन्हीं कारणों से हुआ था। लेकिन इसके बावजूद उपर्युक्त सभी आंदोलन इतिहास में उपेक्षित रहे हैं।

1857 ई. के आंदोलन को अनेक उपागमों के माध्यम से व्याख्यायित किया गया है। इस व्याख्या के लिए जिन उपागमों का सहारा लिया गया है, वह निम्न प्रकार है।

1. औपनिवेशिक उपागम
2. राष्ट्रवादी उपागम
3. मार्क्सवादी उपागम
4. उपाश्रितवर्गवादी उपागम
5. निम्नवर्गवादी उपागम
6. दलित उपागम
7. नारीवादी उपागम

1.1.1 औपनिवेशिक उपागम

औपनिवेशिक उपागम के नजरिये से 1857 ई. का विद्रोह कुछ बिखरे हुए अशक्त विद्रोह का समूह था। जिसमें राष्ट्रवादी चरित्र का अभाव था कहने का तात्पर्य यह है कि 1857 ई. का विद्रोह राष्ट्रवाद की

विचारधारा से प्रेरित नहीं था। उसका हेतु भारतीय राष्ट्र-राज्य का निर्माण नहीं था वह मुग़ल साम्राज्य को फिर से स्थापित करने की साजिश थी या पुराने सामंतवाद को स्थापित करने का एक हिंदू आंदोलन था।

पीटर राब ने कहा की "वह मुख्यतः एक सिपाही विद्रोह था जिससे कालांतर में आम नागरिक भी जुड़ गए क्योंकि वह बदतर कानून व व्यवस्था का लाभ उठा सकें। चार्ल्स बाल, जान कोई और जार्ज ट्रेवेल्यन के दृष्टिकोण से 1857 ई. का इतिहास, विद्रोह के दमन का इतिहास था जो अंग्रेजी नस्ल के साहस को प्रमाणित करता था।"

जेम्स स्टीफेन ने 1857 ई. की घटना को एक ऐसे प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जो प्रमाणित करता था कि *"भारतवासियों में सुधार की क्षमता न होने कारण भारत के विकास के लिए अंग्रेज साम्राज्य की उपस्थिति आवश्यक थी।"* इसी बात का जिक्र करते हुए जेम्स मिल ने भारत का इतिहास लिखते हुए इसे तीन कालो में विभजित किया- हिंदू काल, मुस्लिम काल और ब्रिटिश काल। ब्रिटिश पूर्व काल के संदर्भ में उसने 'प्राच्य निरंकुशतावाद' का सिध्दांत प्रतिपादित किया। इस सिध्दांत के मतानुसार ब्रिटिश पूर्व भारत में लोकतांत्रिक और स्वशासन का जिक्र नहीं था या अभाव था। भारत पूर्ण रूप से राजा, महाराजों के द्वारा चलाया जाता था। लेकिन कालावधि में लोकतंत्र की नींव तो अंग्रेज आने के बाद हुयी।

इस प्रकार 1857 ई. का विद्रोह सिपाही विद्रोह से कहीं ज्यादा किन्तु राष्ट्रीय आंदोलन से कुछ कम था। थामस मेटाकाफ का मानना था कि विद्रोह के नेतागण तो संगठित थे लेकिन विजय होने बाद के एक-दूसरे के शत्रु बन गये। कहने का आशय यह है कि साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के अनुसार 1857 ई. का विद्रोह ही अनेक निजी हितों से प्रेरित होकर विद्रोह के लिए तैयार तो हुए थे लेकिन उनके सम्मुख अंग्रेजी साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने या एकीकृत भारतीय राष्ट्र निर्माण का न तो उद्देश्य था न ही इस प्रकार के उद्देश्य प्राप्ति की कोई योजना थी।

1857 ई. का विद्रोह कुछ लोगों की प्रेरणा था लेकिन उनमें समग्र स्तर के लोगों ने भागीदारी की थी और उसे व्यापक रूप दे दिया लेकिन इतिहासकारों ने कुछ महत्त्वपूर्ण वर्गों को ही इस विद्रोह का नेतृत्व करनेवाले प्रमुख व्यक्तियों के रूप में दिखाया है अन्य वर्गों को दुर्लक्षित कर उनको उपेक्षा की है।

इस विद्रोह का उद्देश्य राष्ट्रीयता नहीं था बल्कि इसके पीछे उद्देश्य फिर भारत को साम्राज्यवादी बनाने का था। यह विद्रोह कुछ वर्गों के हितों के लिए शुरु किया गया था। इनमें राष्ट्रहित के अन्य वर्गीय हितों का भाव था इसलिए यह विद्रोह कुछ व्यक्ति और वर्ग तक सीमित रहा। उनमें जन सामान्य के लोगों का हित दूर-दूर तक नहीं दिखाई देता था इस विद्रोह को अनेक विदेशी विद्वानों ने परिभाषित कर यह सिध्द किया है कि यह विद्रोह किस प्रकार कुछ वर्ग के हित के लिए था।

1.1.2 राष्ट्रवादी उपागम

राष्ट्रवादी उपागम एक अलग नजरिये से ब्रिटिश उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रीय आंदोलन के स्वरुप का विश्लेषण करता है यह साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से भिन्न भारत का राष्ट्रवादी दृष्टिकोण है। इसके उदय की प्रक्रिया और राष्ट्रवाद के उदय की प्रक्रिया के दरम्यान एक अनोखा संबंध नजर आता है। एक तरह से यह भारत में राष्ट्रीयता की तीव्रगति की भावना के कारण मजबूत हुआ वहीं दूसरी तरह इसने राष्ट्रीयता की भावना को सशक्त बनाने में मदद की है।

राष्ट्रवादी उपागम को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक उग्र-राष्ट्रवादी और दूसरा तार्किक-राष्ट्रवादी। उग्र राष्ट्रवादी समूह में बाल गंगाधर तिलक, के. पी. जायसवाल, सावरकर, बंकिम चटर्जी, दयानंद सरस्वती आदि इसके अंतर्गत आते हैं। वही दूसरे समूह तार्किक राष्ट्रवादी में राजेंद्रलाल मित्र. लाजपत राय, सुरेन्द्र नाथ आदि आते हैं।

उग्र राष्ट्रवादियों ने जेम्स मिल द्वारा प्रतिपादित भारत के कालिक विभाजन को मान्यता देते हुए भारतीय इतिहास के सांप्रदायिक विभाजन हिंदूकाल, मुस्लिम काल, ब्रिटिशकाल को स्वीकार किया उन्होंने पुरातन भारत या हिन्दू युग के संदर्भ में एक प्रकार के स्वर्ण युग की धारणा विकसित की जिसमें भारत को विश्व गुरु के रूप में दर्शाया भारतीय विज्ञान, साहित्य एवं कला की उपलब्धियाँ अप्रतिम थी। 'प्राच्य निरंकुशतावाद' का खंडन करते हुए उन्होंने प्राचीन भारत में स्वशासन की संस्थाओं के अस्मिता को स्वीकार किया, उन्होंने वेदों को समग्र ज्ञान उपलब्धियों का स्रोत माना। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन को उन्होंने भारत की महासभ्यता की विरासत माना।

इस उपागम की दूसरी धारा अपेक्षाकृत सर्वाधिक तार्किक है इन्होंने अतिवादी दृष्टि से बचते हुए और तार्किक दृष्टियों को ग्रहण कर उपनिवेशवाद और राष्ट्रीय आंदोलन का सजग विश्लेषण किया। वे भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के शोषणमूलक चरित्र पर बल देते हैं। ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने भारतीय कृषि, उद्योग, और हस्तशिल्प आदि को नष्ट कर दिया।

उपनिवेशवादी शासन का प्रमुख उद्देश्य भारत की अर्थ व्यवस्था को ब्रिटिश अर्थ व्यवस्था की आवश्यकता अनुसार ढालना था। क्योंकि भारत ब्रिटेन के विकास के लिए, के भांति कार्य कर सके इसी परिप्रेक्ष्य में भारतीय अर्थ व्यवस्था को उन्होंने ब्रिटेन के लिए कच्चे माल की आपूर्ति करना और तैयार माल को बाजार के रूप में विकसित किया, भारत की दयनीय स्थिति इसी कारण थी।

सामाजिक क्षेत्र में भी उन्होंने भारतीयों को तुच्छ माना अतः राष्ट्रीय आंदोलन के पीछे राष्ट्रवादी विचारों का प्रमुख योगदान था। भारत का राष्ट्रीय आंदोलन किसी वर्ग विशेष का आंदोलन नहीं अपितु यह औपनिवेशिक शोषण के विरुध्द एकता बध्द हो रहे एक उभरते राष्ट्र की आकांक्षा की देन था।

राष्ट्रवादी उपागम की सबसे बड़ी कमी भारतीय समाज के आन्तरिक अंतर्विरोधों की पूर्णता उपेक्षा करना था। उन्हें बहुत कम महत्त्व देना रहा है। भारतीय समाज व्याप्त विघटन, आपसी फूट और जाति धर्म, भाषा जैसे विभाजन कार्य तत्वों पर वे अधिक ध्यान नहीं देते थे परिणाम था वे इस प्रश्न का उत्तर देने में असफल रहे।

ब्रिटिशों ने भारत के समग्र क्षेत्रों को जिसमें समाज, राजनीति, आर्थिक, धार्मिक संस्कृतियों को हीन माना और यहाँ के जनता में अपने गौरवाती परंपरा पर जो अभिमान था उसे उनके मन से निकालकर हीन भावना को दिखाया अंग्रेजों ने भारतीय संस्कृति को तुच्छ मानकर यहाँ के जनमानस को मानसिक रुप से कमजोर बताया।

1.1.3 मार्क्सवादी उपागम

मार्क्सवादी उपागम के मतानुसार 1857 ई. का विद्रोह को पूर्ण आधुनिक अर्थ में राष्ट्रवादी नहीं माना जा सकता। जब कि विद्रोह में विरोधी संवेदना थी लेकिन एक सकारात्मक राष्ट्रीयतत्वों का अभाव था। विद्रोह में जिन भिन्न-भिन्न सामाजिक समूहों ने भागीदारी की थी उनमें यह भावना नहीं थी कि वह एक राष्ट्र के निवासी हैं जिनका समान राजनीतिक एवं आर्थिक अस्तित्व है। उनमें राष्ट्रीय चेतना नहीं थी।

जवाहरलाल नेहरु ने अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में लिखा है कि "1857 ई. का विद्रोह वस्तुतः सामंती विद्रोह था। सामंती नेतृत्व का राजनीतिक कार्यक्रम सिर्फ विदेशियों को भगाने के नकारात्मक लक्ष्य तक सीमित था। उनके पास भारतीय समाज के पुनर्गठन तथा भारतीय राष्ट्र-राज्य के निर्माण की सकारात्मक योजना नहीं थी और न हो सकती थी। वास्तव में वह विदेशी शासन को हटाकर पूर्व-अंग्रेजी युग की शोषणकारी सामंती अर्थव्यवस्था पर आधारित बिखरे हुए सामंती भारत को पुनःस्थापित करना चाहते थे।"[1] लेनिन ने कहा था की "उपनिवेशवाद के केंद्र में आर्थिक शोषण का भाव समाहित होता है। यह आर्थिक शोषण ही इसका सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है अतः उपनिवेशवाद सिर्फ एक राजनीतिक प्रक्रिया मात्र नहीं है अपितु यह जटिल सामाजिक, आर्थिक संरचना है।"

[1] भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद : एक अध्ययन- पृ. सं. 62

आर. पी. दत्त के मतानुसार "1857 ई. के विद्रोह का सामंती चरित्र लोकप्रिय सहयोग के मार्ग में बाधक था इसी कारणवश विद्रोह की हार निश्चित थी।" विद्रोह के बाद अंग्रेजों की सामन्ती राज्य को संरक्षण की नयी नीति पर गहरी चिंता व्यक्त करते हुए मार्क्स ने कहा कि 'जिन दशाओं के अंतर्गत सामन्ती राज्यों को स्वतंत्र रहने की आज्ञा दी जा रही है। वही दशाएँ भारत के प्रगति में अवरोधक है।' रजवाड़े अंग्रेज व्यवस्था को निश्चित रखनेवाले गढ़ हैं।

भारतीय विकास में एक और बाधा जो अंग्रेजों के हिफाजत के लिए पुलिस या सेनाओं की भर्ती की जा रहीं थीं जो मार्क्स के अनुसार एक प्रदेश में इतने सारे फौज पहले कभी केन्द्रित नहीं थी। वह फौज सभी ओर बिखरी हुयी थी। रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'सन सत्तावन की राज्यक्रांति और मार्क्सवाद' में मार्क्स के लेख पर विचार करते हुए लिखा है कि "अवध और रूहेलखंड के विद्रोहियों के साथ इनकी कार्यनीति की समानता स्पष्ट है।"[2]

मार्क्स ने अपने लेखों द्वारा अंग्रेजों की लुटेरी फौज़ जनता से उनका अलगाव केवल शस्त्र बल से शासन कायम रखने की नीति, उनका राजनीतिक और सैनिक परिस्थितियों का कमजोर होना, संघर्ष को सफल बनाने के लिए और जोरों से छापामार युध्द चलाने तथा संघर्ष को नए प्रदेशो में फ़ैलाने की आवश्यकता पर अपने विचार प्रकट किये और इस प्रकार अमेरिका और यूरोप की जनता को अंग्रेज राज की सच्चाई से परिचित कराया। जब कि मार्क्सवादी उपागम 1857 ई. के विद्रोह को राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में किया गया लोकतांत्रिक प्रयास नहीं मानता लेकिन यह स्वीकार करता है कि इसके द्वारा अंग्रेजों को दी गयी साहसपूर्ण चुनौती देश भक्ति की प्रेरणा का स्रोत बनी।

1.1.4 उपाश्रितवर्गवादी उपागम

उपाश्रितवर्गवादी उपागम एक ऐसा उपागम है जो साम्राज्यवादी, राष्ट्रवादी, मार्क्सवादी को ख़ारिज करता है। यह भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद का अभाव करनेवाला एक नया उपागम है। सुमित सरकार ने इसके संदर्भ में उचित ही लिखा है कि "यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है कि पारंपरिक राष्ट्रवादी, संप्रदायवादी, कैंब्रिज, बल्कि यहाँ तक कि कुछ मार्क्सवादी इतिहासकारों के विरुध्द भी मेरी मूल आपत्ति यह है कि स्पष्टतः एक-दूसरे के विरोधी होने पर भी इन सबों में एक प्रवृत्ति सामान्य है- ये सब सामान्य अभिजातवादी दृष्टिकोण अपनाते हैं।"[3]

---

[2] भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद : एक अध्ययन- पृ. सं. 62-63

[3] भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद : एक अध्ययन- पृ. सं. 11

यह उपागम समाज को दो वर्गों में विभक्त मानता है। यह दो वर्ग हैं- अभिजातवर्ग और जनता। अभिजातवर्ग के हेतु, जनता के हेतु से अलग होते हैं। रणजीत गुहा के अनुसार- अभिजात वर्ग एक विशेषाधिकार प्राप्त समूह है जो सत्य पर एकाधिकार का दावा करता है, ज्ञान पर उसकी पकड़ है एवं अधिकार, स्वतंत्रता और न्याय के मानदंड निश्चित करता है। "जनता के अंतर्गत विभिन्न उपाश्रितवर्ग जैसे किसान, आदिवासी, हरिजन आदि शामिल हैं।"[4]

भारत में देशी अभिजात्य-वर्ग और उपनिवेशवाद के हित एक प्रकार के थे अतः देशी अभिजातवर्ग ने उपनिवेशवादी शासकों से समझौता कर लिया। इस प्रकार विभिन्न उपाश्रितवर्ग को दो स्तरों पर लड़ाई लड़नी पड़ी। पहली लड़ाई उपनिवेशवाद के विरुध्द और दूसरी देशी अभिजात वर्ग के विरुध्द। ब्रिटिश राज केवल एक शासन मात्र नहीं अपितु सरकार, साहूकार और जमींदार की त्रिमूर्ति था।

विदेशी शासकों ने अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए देशी अभिजातवर्ग का प्रयोग किया और देशी अभिजातवर्ग ने अपने फायदे के लिए उनका साथ दिया। उपाश्रित दृष्टिकोण भारत के एक सामान्य राष्ट्रीय आंदोलन के विचार से सहमत नहीं है जैसा कि राष्ट्रवादी मानते हैं। उपाश्रितवर्गवादियों के मतानुसार भारत में उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के दो रूप थे एक ओर अभिजातवर्ग का कृत्रिम आंदोलन था जो कांग्रेस और उसके नेतृत्व के द्वारा चलाया जा रहा था दूसरे ओर जनता का वास्तविक आंदोलन था जो वास्तव में उपनिवेशवाद से प्रेरित था और उसे हटाना चाहता था।

इस प्रकार जिस वास्तविक उपनिवेशवादी संघर्ष की संज्ञा दी जानी चाहिए वह किसानों, महिलाओं, अछूतों, आदिवासियों आदि उपाश्रित समूह का आंदोलन था कांग्रेस के रूप में भारत का अभिजात नेतृत्व केवल उसी सीमा तक उपनिवेशवाद का विरोधी था जिस सीमा तक वह उसके अपने हितों को पूरा करता था। इसका असर यह निकला की जनता को दो स्तरों पर लड़ाई करनी पड़ी। पहला उपनिवेशवाद के विरोध में और दूसरा देशी अभिजातवर्ग के विरोध में उदाहरण के तौर पर एक ओर अंग्रेज शासक किसानों का शोषण करा रहा था, दूसरे ओर जमींदार और महाजन, किसान को इन दोनों शोषकों से मुक्ति हेतु संघर्ष करना पड़ रहा था।

रणजीत गुहा के मतानुसार 'उपनिवेशवादी भारत में राजनीति के दो प्रारूप कार्य कर रहे थे। एक जन राजनीति और अभिजात राजनीति है। यह दोनों अलग-अलग तरीके से काम कर रहे थे। अभिजात राजनीति

---

[4] भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद : एक अध्ययन- पृ. सं. 11

लम्बे रूप से संगठित थी अर्थात् इनमें पदानुक्रम की श्रृंखला थी। दूसरी, जन-राजनीति का संगठन विस्तृत रूप में फैला था।'

उपाश्रितवर्गवादी पर विचार किया जाये तो हम यही कह सकते हैं कि अभिजात्य वर्ग और उपाश्रित वर्ग में प्रत्येक क्षेत्र जैसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक आदि में असमानता थी। इन दोनों वर्गों की संरचना और स्वरुप भिन्न-भिन्न थे।

1.1.5 निम्नवर्गीय उपागम

निम्नवर्गीय उपागम का विकास अभिजात्य वर्गीय उपागम की विरोधी प्रतिक्रिया के रूप में हुआ इसके मतानुसार 1857 ई. का विद्रोह भारत का उच्चवर्गों की नहीं अपितु आमजनता, ग्रामीण किसानों, शिल्पकारों, मजदूरों और सिपाहियों की पहल का असर था। रुद्रांगशु मुखर्जी ने विद्रोह में सहभाग लेनेवाले 'सिपाहियों को वर्दीधारी किसान की संज्ञा से संबोधित किया जो विद्रोह के दौरान सिपाहियों का काम छोड़ कर किसान या मजदूर का काम करने लगे।'

इस नजरिये से 1857 ई. का औपनिवेशिक काल के किसान विद्रोह के पूर्ण लक्षण से संपूर्ण था। वह एक पूर्व नियोजन विद्रोह था जिसके अंतर्गत पंचायतों के माध्यम से निर्णय, निर्माण की प्रक्रिया का स्पष्ट रूप से प्रावधान था।

इसका उद्देश्य वर्चस्व हासिल किये हुए वर्ग और उनकी संपत्ति को नष्ट करना था। अतः विद्रोह के दौरान जन साधारण ने अंग्रेजों के साथ-साथ ईसाई धर्म को माननेवाले भारतीयों तथा अंग्रेजी जीवन पध्दति को ग्रहण करनेवाले बंगाली बाबूओं पर भी आक्रमण किया। इस संदर्भ में कानपुर के सतीचुरा घाट एवं बीबीघुर हत्याकांड उल्लेखनीय है। अंत में हम कह सकते हैं कि निम्नवर्गीय उपागम के अनुसार 1857 ई. का विद्रोह एक जन आंदोलन था। जिसमें सामान्य जनता ने औपनिवेशिक और भारतीय उच्च वर्गीय लोग जो शोषण कर रहे थे उनकी सत्ता के विरुध्द आवाज उठाई।

1.1.6 दलित उपागम

1857 ई. विद्रोह के राष्ट्रवादी स्वरुप को स्वीकार तो करता है किन्तु राष्ट्र के वर्चस्ववादी निर्माण को आह्वान देते हुए दलितों की महत्त्वपूर्ण भूमिका पर बल देते हैं।

चारू गुप्ता एवं बद्री नारायण ने कहा है कि "दलित उपागम क्षेत्रीय मौखिक परंपरा से अपने नायक एवं नायिकाओं जैसे- झलकारी बाई और मातादीन भंगी- का आविष्कार करता है जो न सिर्फ 1857 के

विद्रोह में दलितों का प्रतिनिधित्व करते हैं बल्कि उच्च जाति के सुप्रसिध्द व्यक्तियों के दब्बूपन को भी जगजाहिर करते हैं।"[5]

इस प्रकार दलित उपागम ने यही दार्शनिक प्रयास किया है कि 1857 ई. के विद्रोह में उनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। लेकिन उनके योगदान का अभिजातवर्ग में कहीं उल्लेख नहीं मिलता। उनके योगदान को जान-बूझकर दबाया गया है इसलिए दलित उपागम इस बिंदु के अंतर्गत उनके योगदान पर विचार अवश्यक है।

1.1.7 नारीवादी उपागम

नारीवादी उपागम 1857 ई. के भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में महिलाओं की विशेष भूमिका को उजागर करता है तथा यहाँ स्पष्ट करने का प्रयास है कि विद्रोह के उपरांत पुरुषत्व और स्त्रीतत्व की अवधारणा में बदलाव आया दलित वीरंगनाओं की कहानियाँ और 1857 ई. को इतिहास की कहानियाँ उस अभिजातीय व्याख्या को आह्वान देती है। जिसमें सामान्य महिलाओं को दूर लक्षित किया गया है।

माईकल फिशर ने स्पष्ट किया की- '1857 ई. के विद्रोह के पश्चात् भारतीय पुरुषों की एक धूमिल छवि विकसित हुयी जिसके फलस्वरूप लंदन में भारतीय पुरुषों के साथ अंग्रेजों के सहानुभूति, व्यवहार में बदलाव आया।'

ऐश्वर्या लक्ष्मी ने कहा कि 'भारत के नारीवादी घरेलू स्थान एवं ब्रिटेन के पुरुषवादी, औपनिवेशिक स्वामी के बीच असमान शक्ति के संबंध को उजागर किया है'। इन्द्राणी सेन ने यह बताया की "झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का चित्रण, कुछ अपवादों के बावजूद, लिंग के औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए किया गया है।"[6]

नारीवादी उपागम में केवल लक्ष्मीबाई के अतिरिक्त भी अन्य महिलाओं ने इस विद्रोह में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है लेकिन यह ऐसा हुआ नहीं। जिसमें से एक उदहारण है वीरांगना झलकारी बाई है।

निष्कर्ष के रूप में हम यही कह सकते हैं कि इन विभिन्न उपागमों का अध्ययन करने के उपरांत यही पता चलता है कि 1857 ई. के विद्रोह में निम्नवर्ग के लोगों को स्थान नहीं मिला जो उनकी प्रतिभा के कारण मिलना चाहिए था। इससे ज्ञात यही होता है कि उपनिवेशवाद में 1857 ई. के विद्रोह का स्वरुप और उसकी

---

[5] भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद : एक अध्ययन- पृ. सं. 64

[6] भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद : एक अध्ययन- पृ. सं. 65

व्यापकता को दर्शाया है इस बिंदु के अंतर्गत अनेक विद्वानों ने इस विद्रोह को परिभाषित करने का प्रयास किया है। इस उपागम में उपनिवेशवाद को महत्त्व दिया गया है।

1.2 *भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में आदिवासियों के प्रमुख आंदोलन*

भारत में आदिवासी, आर्यों के आगमन के साथ उनसे संघर्ष करते रहे। आर्य मूलतः बाहर से आये हैं। आर्य यहाँ आये और उन्होंने भारत में पहले से रहनेवाले आदिवासियों के साधन संपत्ति उनसे छिनकर उनको बेदखल किया आदिवासी मूलतः शांतिप्रिय लोग हैं। इसलिए आरंभ में उन्होंने संघर्ष किया और वह दूसरी जगहों पर चले गए वहाँ पर उन्होंने अपने गाँव बसाये। इस प्रकार आर्य फैलते गए और आदिवासी जंगलों और पहाड़ो में सिमटते गए आर्यों के उपरांत आदिवासियों पर हद से ज्यादा जुल्म ढाँए अंग्रेजों ने।

सन् 1765 ई. में अंग्रेजों ने मुगलों से बंगाल, बिहार और उड़ीसा के दीवानी को हस्तगत किया इस घटना के उपरांत अंग्रेजों ने आदिवासियों के क्षेत्र में अधिकार पाने का हस्तक्षेप करने का आरंभ किया 1793 ई. में लार्ड कार्नविलास ने स्थायी बंदोबस्त का अमल किया। राजस्व वसूली के लिए आदिवासियों को पहली बार स्थायी खेती करने के लिए मजबूर किया 'झूम' और 'पडू' विधियों की खेती बंद करवाई गयी और जमीनों पर मालिकाना भत्ते दिए जाने लगे।

एक जगह स्थिर होकर खेती करना एवं सरकार द्वारा तय किया हुआ लगान भरना अब आदिवासियों की व्यवस्था बन गई थी। अंग्रेजों ने उनके क्षेत्रों के उदार राजाओं को कमजोर किया और नये क्रूर राजाओं और जमींदारों को वहाँ पर स्थिर किया। इन नये जमींदारों की सहायता से घने जंगलों में सूदखोर महाजन भी पहुँच गए इन सभी ने मिलकर आदिवासी जनता की अस्मिता, का शोषण शुरू करना आरंभ किया उनकी जमीनें, फसलें, जानवर यहाँ तक उनकी बहू-बेटियाँ भी उनसे छिनी जाने लगी और अपहरण किया जाने लगा पुलिस या तो अंग्रेज सरकार की थी या स्थानीय जमींदारों की।

'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष पुस्तक' में आदिवासियों की स्थिति का जिक्र इस तरह है "औपनिवेशिक राज ने सब-कुछ बदल दिया और जंगली भूमि, वन-उत्पादों व गाँवों की जमीन के इस्तेमाल पर भी तरह-तरह के अंकुश लगा दिए। जगह बदलकर की जाने वाली खेती पर तो पूरी तरह रोक लगा दी गई। पुलिस और अन्य छोटे-मोटे अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों, शोषण और जबरन उगाही ने आदिवासियों का जीना दूभर कर दिया। लगान वसूलने वाले लोग और महाजनों- जैसे सरकारी बिचौलिए और दलाल इन आदिवासियों का शोषण तो करते ही थे, उनसे जबरन बेगार भी करते थे।"[7]

[7] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष- पृ. सं. 16

आदिवासी सभी ओर से समस्याओं से घिरे थे इसलिए अब आदिवासियों के पास विद्रोह करने के सिवाय कोई मार्ग नहीं बचा था। शोषण और अत्याचार से मुक्ति पाने के लिए आदिवासियों ने विद्रोह का आरंभ किया। "आदिवासी एकजुट होकर लड़े। कई बार तो पूरा कबीला और आसपास के सभी गांवों के आदिवासी संगठित हुए। कुछ मौके पर तो पूरा-का पूरा क्षेत्र ही अंग्रेजों के खिलाफ हथियार उठाकर खड़ा हो गया।"[8]

आदिवासियों ने अंग्रेजों का उनके सामंती जमींदार, जागीरदार आदि की व्यवस्था के खिलाफ लड़ाई लड़ी। प्रथमत: तो वे भारत के सभी क्षेत्रों में लड़ी गयी थीं। द्वितीय वे लड़ाई जो अंग्रेजों के आगमन पर अर्थात् सन् 1765-66 में पहाड़िया आदिवासियों ने विरोध किया, 1770-71 पलामू विद्रोह ने , आंध्रप्रदेश के भी 1767 में रंपा पहाड़ियों के क्षेत्रों में कोय्या आदिवासियों ने विद्रोह किया। इस तरह 1818-19 में भील विद्रोह हुआ। यह विद्रोह का सिलसिला वारली आदि संघर्ष 1947 तक चलता रहा। तृतीय वे मूलत: आदिवासी नायकों के द्वारा और आदिवासी जनता द्वारा लड़ी गयी लड़ाईयाँ थीं।

आजादी के उपरांत भी आदिवासी लोगों का शोषण निरंतर जारी रहा। इसलिए उन्हें अपनी ही सरकार के विरोध में आज भी संघर्ष करना पड़ रहा है। आज भी आदिवासियों का संघर्ष किसी-न-किसी रूप में जारी है।

भू-क्षेत्रों के आधार पर प्रमुख आंदोलन जो पूर्वोत्तर भारत, पश्चिम भारत, मध्य भारत और दक्षिण भारत में हुए आदिवासी विद्रोह का संक्षिप रूप में विचार विमर्श कर रहे हैं। इसके अंतर्गत आंदोलन के उदय के कारण और उनका परिणाम को सारणी के द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है-

सारणी : 1857 के पूर्व और बाद में हुए आदिवासी आंदोलन

आंदोलन का नाम	वर्ष	नेतृत्व कर्त्ता	कारण	परिणाम

[8] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष- पृ. सं. 17

1.पहाड़िया विद्रोह (जंगल तराई, झारखण्ड)	1766	करिया पुजहर, चेंगुरु संवरिया और पाचगे डोम्बो	1. ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा 1765 में आदिवासी क्षेत्र में अपने हुकूमत को कायम करने का प्रयास। 2. अंग्रेजों द्वारा आदिवासियों के संसाधनों की लूट। 3. आदिवासियों के नेता रमुना अहड़ी को पकड़कर मारना। 4. उनके जमीनों पर अपना अधिकार स्थापित करना। 5. आदिवासियों के निजी जीवन में हस्तक्षेप करना।	इस आंदोलन में अधिकांश मात्रा में पहाड़ी आदिवासियों को मार डाला और बचे हुए आदिवासियों को बल पूर्वक जंगलों में खदेड़ दिया।
2. चुआड़ विद्रोह (छोटा नागपुर)	1769	दुर्जन सिंह	1. ईस्ट इंडिया कंपनी का विरोध। 2. आदिवासियों पर अंग्रेजों ने अन्याय करना। 3. उनके द्वारा तैयार की गई जमीन छीनी जाने लगी।	चुआड़ विद्रोह को अंग्रेजों ने शस्त्र के बल पर दबा दिया।
3. ढ़ाल विद्रोह (झारखण्ड)	1773	जगन्नाथ ढाल	1. आदिवासियों से जबर्दस्ती से लगान की वसूली। 2. कंपनी सरकार की आर्थिक शोषण करने वाली नीतियाँ। 3. उनके भूमि पर हक जताने का प्रयास। 4. आदिवासियों के अधिकारों का हनन।	इस आंदोलन में ढ़ाल आदिवासियों की हार हो गई।
4. तिलका मांझी-विद्रोह (जंगल तराई, झारखण्ड)	1784	तिलका मांझी	1. ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1757 में प्लासी का युद्ध जीतने के बाद तिलका मांझी के क्षेत्र में प्रवेश किया। 2. इन आदिवासी समुदाय पर अत्याचार किए जाने लगे।	इस विद्रोह का परिणाम देखा जाए तो, अंग्रेज सरकार के पास आधुनिक शस्त्र होने के कारण आदिवासियों की हार हुई।

5. तमाड़ विद्रोह (झारखण्ड)	(1819-1820)	रूगुदेव एवं कोंता मुंडा	3. उनके निजी जीवन में हस्तक्षेप करना और जमीन छीनना । 1. ठेकेदार और अंग्रेजों द्वारा आदिवासियों की जमीनों पर हस्तक्षेप करना । 2. बाहरी लोगों द्वारा आदिवासियों पर अत्याचार । 3. कंपनी सरकार का आदिवासी क्षेत्र पर कब्जा । 4. जमींदार और ठेकेदार द्वारा आदिवासियों का शोषण ।	इसी फैले हुए आंदोलन को ऐ. जे. मैजिस्ट्रेट कोल्विन और मेजर रफसेज के द्वारा आदिवासी विद्रोह को आत्मसमर्पण करने के लिए विवश किया ।
6. खासी विद्रोह (खासी हिल्स, पूर्वोत्तर)	(1829-1832)	तिरथ सिंह	1. खासी विद्रोह का कारण खासी पहाड़ियों से अंग्रेजों द्वारा रास्ता निर्माण करना । 2. अंग्रेजों द्वारा आदिवासियों का अस्तित्व का हनन करना । 3. अंग्रेजों ने उनके अज्ञानता का लाभ उठाकर उनका आर्थिक शोषण करना।	इस आंदोलन के नेतृत्व कर्ता तिरथ सिंह को विद्रोह करने के कारण, गिरफ्तार करने के लिए, हजार रूपया का इनाम घोषित किया जाता है । तिरथ सिंह को पकड़ कर ढ़ाका के जेल में भेज दिया जाता है । जहाँ 1841 में उनका निधन हो जाता है ।
7. कोल विद्रोह (झारखण्ड)	(1831-32)	बुधू भगत-ताना भगत	1. भूमि संबंधी असंतोष और उसके प्रति लोगों में निर्माण । 2. मुंडा मानकी की शासन व्यवस्था और अधिकार पर सरकार द्वारा कटौती करना । आदिवासियों की जमीन पर अन्य लोगों को सरकार द्वारा बसाया जाना । 3. आदिवासियों की स्त्रियों की इज्जत लूटना तथा उनका अपहरण करना ।	इस विद्रोह को बड़ी क्रूरता से अंग्रेजों द्वारा दमन किया गया है । लेकिन इस विद्रोह से, आगे होने वाले विद्रोह ने निश्चित रूप से प्रेरणा ग्रहण की ।

			4. कोलहन के बंदगाँव में मुंडाओं पर अत्याचार करना उनकी पत्नियों का अपहरण कर उनकी इज्जत लूटना।	
8. भूमिज विद्रोह (झारखण्ड)	(1832-33)	गंगा नारायण	1. अंग्रेजों द्वारा भूमिज आदिवासियों पर होने वाले अत्याचार। 2. बड़ा भूम के राजा द्वारा इन आदिवासियों से मकान और अन्य करों कि जबरदस्ती से वसूली। 3. मुंशीफ द्वारा भूमि आदिवासियों पर होने वाले अन्याय। 4. भूमिज आदिवासियों के निजी जीवन में हस्तक्षेप करना और लूटना।	इस आंदोलन के नेतृत्वकर्त्ता गंगा नारायण की हत्या और अंत में भूमिज विद्रोहियों का आत्मसमर्पण।
9. संथाल विद्रोह (छोटा नागपुर, झारखण्ड)	(1855-56)	सिदो, कान्हू, चाँद और भैरव	1. संथाल विद्रोह का कारण स्थानीय जमींदारों और साहूकारों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों का विरुद्ध था। 2. इस क्षेत्र के हजारों संथालों ने गैर-आदिवासियों को खदेड़ना और उनके सत्ता को समाप्त करने के लिए यह आंदोलन छेड़ा। 3. विद्रोह भूमिकर अधिकारों को द्वारा किए जाने वाले दूर्व्यवहार तथा जमींदार और साहूकार आदि द्वारा किए जाने वाले अत्याचार के खिलाफ यहां आंदोलन किया गया था।	अंग्रेज सरकार ने इस विद्रोह को दबाने के लिए कई सिपाही भेजे और इस विद्रोह को दबाने में सफलता पायी। जिसमें दस हजार आदिवासी संथाल वीर शहीद हुए। यह विद्रोह आगे होने वाले विद्रोह की मूल प्रेरणा स्रोत के रूप में उभरकर आया।

10. रोहिल्ला विद्रोह (निर्मल, तेलंगाना प्रदेश)	(1836-60)	रामजी गोंड	1. निज़ाम और ब्रिटिश सरकार द्वारा वहाँ की जनता का निर्मम शोषण और उन पर अत्याचार। 2. उनकी जमीनों पर अधिकार जताना और उनकी फसलों को काटना। 3. उनके निजी जीवन में हस्तक्षेप करना। 4. रोहिल्ला विद्रोह का मूल कारण उस क्षेत्र के आदिवासियों को जबर्दस्ती लाकर गुलाम बनाना।	रोहिल्ला विद्रोह का परिणाम यह हुआ कि निजाम और अंग्रेजों शासकों ने रोहिल्ला विद्रोह के नेता रामजी गोंड को फाँसी दे दी। यह आंदोलन गोंड समाज का प्रथम विद्रोह था जिसको कोमरम् भीम ने विस्तारित किया।
11. भील विद्रोह (पश्चिम भारत)	(1818-1881)	1818 में सेवाराम	1. अंग्रेजो का आदिवासियों के निजी जीवन में हस्तक्षेप। 2. लगान वसूली के लिए दबाव। और इस समाज की स्त्रियों का शारीरिक शोषण करना	इस विद्रोह को अंग्रेजों ने निर्ममता से दबा दिया जिससे भील आदिवासियों में निराशा और आक्रोश घर करने लगे, आगे यह आंदोलन निरंतर रूप से जारी रहा।
12. अर्बेदीन का विद्रोह (पोर्ट ब्लेयर)	1859	सामूहिक आंदोलन	1. अंडमान व निकोबार पर अंग्रेजों का कब्जा 2. अंग्रेजों द्वारा आदिवासियों का शोषण 3. अंग्रेजों द्वारा अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा था। 4. उनके जमीनों को छीना जाने लगा था।	अबेर्दीन के विद्रोह में आदिवासियों की अंग्रेजों के शस्त्र से तैयार सेनाओं से हार हुई। इस विद्रोह में अधिकांश आदिवासी शहीद हुए। जो आदिवासी बचे थे वह जंगल में जाने के लिए मजबूर हुए।
13. नागा विद्रोह (नागालैंड)	1879	सामूहिक आंदोलन	1. खोनमा से बाहर जानेवाले रास्ते को अंग्रेजों द्वारा बंद करना।	अंग्रेजों की फ़ौज तैयार थी, इसलिए नागाओं को पीछे हटना पड़ा इस युद्ध में अंग्रेजों का सेनाओं के

			2. जोटसोमी, मेजोमा और सेशुमा गाँव के पर्याय रास्ता बंद करना। 3. नागा आदिवासियों पर अंग्रेज सैनिकों के द्वारा क्रूरता पूर्वक अन्याय, अत्याचार।	पाँच सौ अधिकारी मारे गए। नागा योध्दाओं में बीस शहीद हुए।
14. उलगुलान (छोटा नागपुर, झारखण्ड)	(1895-1900)	बिरसा मुंडा	1. मुंडा आदिवासियों के जमीन पर अंग्रेजों द्वारा अधिकार प्राप्त करना। 2. अंग्रेजों द्वारा आदिवासियों के पुश्तैनी अधिकारों पर पाबंदी। 3. आदिवासियों के भूमि पर बड़-चढ़ कर लगान लगाना। 4. अंग्रेजों द्वारा आदिवासियों पर होनेवाला असीमित शोषण। 5. अंग्रेजों द्वारा आदिवासियों को गुलाम बनाकर उनका शारीरिक शोषण करना। 6. लगान के बहाने उनका प्रत्येक स्तर पर आर्थिक शोषण करना। 7. उनके अज्ञानता का लाभ उठाकर उनको लूटना। 8. उनकी संस्कृति और धर्म को खतरे में डालना। 9. मुंडा आदिवासी द्वारा सुरक्षित जंगलों को अंग्रेजों द्वारा काटना।	इस आंदोलन के आरंभ कर्त्ता बिरसा मुंडा को अंग्रेजों द्वारा गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया जाता है। वहीं पर उनकी मृत्यु हो जाती है। लेकिन उनका यह उलगुलान रुकता नहीं। वह विचारधारा के रूप में निरंतर जारी है। इसी के आधार पर झारखंड आदिवासी राज्य की स्थापना हुई।
15. मानगढ़ विद्रोह (डूंगरपुर)	1913	गुरु गोविंद	1. वहाँ के स्थानीय आदिवासियों पर अंग्रेजों द्वारा अत्याचार, और उनका शोषण। 2. अंग्रेजों द्वारा भील आदिवासियों के क्षेत्र में हस्तक्षेप करना।	आदिवासियों पर अंग्रेजों के सैनिकों का अचानक हमला। मशीन गन चलाते हैं। जिसमें औरत, बच्चे और पुरुष मारे जाते हैं।

			3. भील आदिवासियों की जमीन पर कब्जा करना।	इस आंदोलन के कर्त्ता गुरु गोविंद को अंत में पकड़ कर उन पर मुकदमा चलाया जाता है। उनको उम्र कैद की सजा दी जाती है।
16. रंपा विद्रोह (रंपा चोड वरम, विशाखा पटनम्)	(1922-24)	अल्लूरी सीताराम राजु	1. आदिवासियों पर किए जाने वाले अत्याचार। 2. उनके अज्ञानता से उठाए गए लाभ अंग्रेज सरकार और निज़ाम सरकार द्वारा उनकी जमीन पर किया गया कब्ज़ा। 3. अंग्रेज सरकार द्वारा आदिवासियों को गुलाम बनाना।	आधुनिक शस्त्र के कारण आदिवासी ब्रिटिश सेनाओं के सामने नहीं टिके। यह आंदोलन गैर आदिवासी नायक के नेतृत्व में हुआ। वह नायक अल्लूरी सीताराम राजु है। उन्होंने वहाँ के आदिवासियों की परिस्थितियों को जानकर सत्ता प्राप्त ब्रिटिश सरकार के खिलाफ आंदोलन किया। अंत में ब्रिटिश सरकार ने कूटनीति से पकड़ कर उन्हें मौत की घाट उतारा।
17. जेलियांगरांग (नागालैंड)	1932	रानी गायदिनलियू	1. नागा आदिवासियों के निजी जीवन में अंग्रेजों का हस्तक्षेप। 2. अंग्रेजों द्वारा उनका समग्र रूपों में शोषण। 3. नागा आदिवासी महिलाओं को प्रताड़ित करना। 4. नागा आदिवासी क्षेत्र पर अंग्रेजों का शासन स्थापित करना।	रानी गायदिनलियू अपने भाई जादोनांग के साथ नागा आदिवासियों के लिए अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन आरंभ की। यह आंदोलन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक शोषण

				के खिलाफ था। इस के लिए रानी गायदिनलियू को आजीवन कारावास की सजा दी जाती है।
18.जोड़ेघाट विद्रोह (आदिलाबाद)	(1935-40)	कोमरम् भीम	1. गोंड आदिवासी समुदाय के क्षेत्रों को निज़ाम सरकार अपने साम्राज्य में सम्मिलित के लिए प्रयास। 2. आदिवासियों के जमीनों को निजाम सरकार ने छीन कर उनको गुलाम बनाना। 3. आदिवासियों की संस्कृति और निजी जीवन में हस्तक्षेप करना। 4. उनके जमीनों पर अधिक मात्रा में लगाना वसूली करना। और जमीनों पर कानून तैयार करना। 5. वन, खनिज पदार्थ के लाभ से आदिवासियों को मजबूरन विस्थापित करना।	गोंड आदिवासियों के अस्तित्व के लिए लड़ने वाले कोमरम् भीम और उनके साथियों ने निजाम सरकार के सैनिकों के विरुध्द भीषण युध्द किया। जिसका परिणाम स्वरुप कोमरम् भीम और उनके साथियों को मार डाला। निज़ाम सरकार वहाँ की परिस्थितियों को अध्ययन करने के लिए, नृतत्व शास्त्र हैंमनडार्फ को भेजा। अध्ययन में यह निष्कर्ष सामने आता है इन आदिवासी समुदायों का मूल समस्या भूमि की है। उसके बाद वह आदिवासियों को भूमि का बँटवारा करते हैं।
19. वारली संघर्ष (थाणे, महाराष्ट्र)	1945-48	सामूहिक आंदोलन	1. वारली आदिवासियों के विद्रोह का मूल कारण भूमि है। जीन पर अधिकार प्राप्त करने के लिए अंग्रेजों ने जमीनों पर कब्ज़ा किया।	आदिवासियों द्वारा अंग्रेजों पर हमला करना। जिसमें उनकी जीत होती है। लेकिन 1947 को अंग्रेजों द्वारा पाँच वारलियों को

			2. उनके निजी जीवन में दखल करना। 3. उनको गुलाम बनाने का प्रयत्न करना । 4. महाजनों द्वारा होने वाला शोषण ।	मारा जाता है और हजारों आदिवासियों को जेल में कैद करना ।

1.2.1. भील विद्रोह (1818-1881)

इतिहास में जितने भी जनजातियों के आंदोलन हुए हैं उनमें भील आंदोलन का महत्त्वपूर्ण स्थान है । राजस्थान क्षेत्र के आदिवासियों ने समय-समय पर अंग्रेजों और उनके समर्थकों के खिलाफ विद्रोह किया है । बनी हुयी संधियों के अनुसार मेवाड़ राज्य का सालाना अंग्रेजों को देना स्वीकार किया इन संधियों के अनुसार अंग्रेजों ने राजस्व वसूली के लिए दबाव डालना शुरू किया उनके समाज के आन्तरिक मामलों में बढ़ता एवं बाहरी हस्तक्षेप पहले भील विद्रोह की वजह बना ।

1818-19 ई. में हुए इस विद्रोह को अंग्रेज सेनाओं स्थानीय राज्य की सेना ने 1823 ई. में क्रूरता पूर्वक दबाया । भीलों को विवश होकर 1825 ई. को अंग्रेजों के साथ एक आत्मसात की संधि करनी पड़ी जिसके तहत वे अपने साथ धनुष-बाण तक नहीं रख सकते थे । भील इस संधि का पालन नहीं कर सकते और वे ऐसा चाहते भी नहीं थे ।

'1880-81 में दक्षिण राजस्थान में भीलों ने विद्रोह कर दिया इस विद्रोह के अनेक कारण थे मेवाड़, भील और उनके खर्च के भार स्थानीय राज्यों के माध्यम से गरीब आदिवासियों पर पड़ रहा था इस अतिरिक्त भार के कारण स्थानीय आदिवासी आर्थिक रूप से दयनीय स्थिति में चले गए ।' 1872 ई. के एक समझौता के अनुसार भीलों के ऊपर 'बराड़' कर अधिक बड़ा दिया गया । उनकी जमीनों पर भारी लगान लगा दिए गए थे । बाहरी लोग भीलों पर अत्याचार करके और महाजन उनसे भारी सूद वसूलते थे । 'वे लोग भीलों को कर्ज देते थे और उसके बदले में उनके बच्चे को गिरवी रख लेते थे । भील लड़कियों को अपनी लौंडियाँ बनाकर उनका हर तरह से शोषण करते थे ।'

पुरुष भीलों को दास बनाकर उनसे प्रत्येक काम बेगार में करवाया जाता था । इन व्यापारियों, महाजनों और इनके समर्थक सरकारी कर्मचारियों से परेशान होकर भीलों ने 1879 में उन पर हमला कर दिया और

कुछेक लोगों को मार डाला। विद्रोह से सरकार परेशान हो गयी सरकार और राज्य ने मिलकर विद्रोह के दमन की तैयारियां शुरू की। '26 मार्च, 1881 को सेनाएँ बारापाल पहुँची। बारापाल की सभी भीलों की झोंपड़ियों को जलाकर राख कर दिया। बारापाल के आसपास के कई गाँवों के भीलों की झोपड़ियाँ को जला डाला। इस दौरान विद्रोह भी सक्रिय था।'

कोटड़ा, पई एवं अलसिगढ़ आदि रियासतों के भील भी विद्रोह में शामिल हो गए। विद्रोह बहुत ही जल्द उदयपुर राज्य के पहाड़ी क्षेत्र में फ़ैल गया, विद्रोहियों ने उदयपुर खेरवाडा मार्ग को बंद कर दिया। 29 मार्च को कोटड़ा क्षेत्रों के भीलों ने कई सिपाहियों कामदार धूलचंद, नागौरी की हत्या कर दी। आदिवासियों की इन कार्यवाही को सेना के द्वारा कुशलता पूर्वक दबाया गया। इससे भील आदिवासियों में घनघोर निराशा एवं आक्रोश का निर्माण हुआ।

1.2.2 गोविंद गुरु : मानगढ़ आंदोलन (1913)

मानगढ़ आंदोलन का नेतृत्व गुरु गोविंद ने किया। इनका जन्म 20 दिसंबर, 1858 में डूंगरपुर रियासत के बंसियाँ गाँव के एक हिन्दू बंजारा परिवार में हुआ था। गुरु गोविंद ने बचपन से ही गाँव के पुजारी से पढ़ाई-लिखाई सीखी उनकी पत्नी की मृत्यु के उपरांत उन्होंने अपनी विधवा भाभी से विवाह किया था।

गुरु गोविंद ने अपने आदिवासी समाज में नयी जागृति की। उन्होंने अपने अंचल में विशेषकर सूँथ, ईडर, बांसवाडा, डूंगरगढ़ आदि रियासतों में आदिवासियों के बीच धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक चेतना फैलायी। उन्होंने इस जागरण अभियान को सुनियोजित एवं संगठित रूप देने के लिए- "1880 में जब दयानंद सरस्वती ने उदयपुर की यात्रा की थी तब गोविंद गिरी उनसे मिला था। वहाँ से लौटने के बाद उसने 'संपा सभा' का गठन किया।"[9]

सन् 1913 में किया सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक अंधविश्वासों के प्रति उन्हें जागृत करते हुए अंत में राजनीतिक, आर्थिक शोषण के विरुध्द आदिवासियों को संगठित करना उनका उद्देश्य था। गुरु गोविंद अपने आदिवासी समुदाय को संबोधित करते हुए कहते हैं कि "शराब मत पियो। मांस मत खाओ। चोरी, डाका, लूटपाट मत करो। मेहनत से काम करो। खेती, मजदूरी करके अपना व परिवार का जीवन गुजारो। गाँव-गाँव में पाठशाला खोलकर बच्चों व बड़ों में ज्ञान का प्रकाश फैलाओ। भगवान में आस्था रखो। रोज स्नान करो। अपने बच्चों को संस्कारित करो। अदालतों में मत जाओ और अपने गाँव के झगड़ों को गाँव

[9] आदिवासी विद्रोह, विद्रोह परंपरा और साहित्यिक अभिव्यक्ति की समस्याएँ- पृ. सं. 44

की पंचायत में ही निबटाओ। स्वदेशी का उपयोग करो। देश से बाहर बनी किसी भी वस्तु का इस्तेमाल मत करो... ।"[10]

एक दिन आदिवासी मानगढ़, धूणी स्थल पर वार्षिक मेले के रूप में एकत्रित हुए थे। गोविंद गुरु ने उन्हें उनके परेशानी जुल्म और जुल्म के कारण से मुक्ति पाने के लिए संगठित होकर प्रतिरोध करने की शिक्षा दे रहे थे। गोविंद गुरु को तुरंत हिंसक विद्रोह करने की घोषणा वह करनी थी अभी तो उन्हें रियासतों के शोषण और अत्याचारों के विरुध्द प्रतिकार करने की भावी रणनीति निश्चित करनी थी लेकिन 'कमांडेंट आई. पी. स्टोक्ले' की नेतृत्व में मेवाड़ भील कोर की दो राजपूत रेजिमेंट एवं जाट रेजिमेंट की एक एक फौज ने पहाड़ों के दक्षिण का उठान पर चुपचाप चलकर बिना किसी चेतावनी के आदिवासियों पर बंदूक और मशीनी गनों से हमला बोल दिया।

आदिवासियों ने भी अपने परंपरागत हथियारों से जमकर मुकाबला किया। लेकिन फौज के आधुनिक हथियारों के सामने वह टिक नहीं सके कुछ ही समय में लाशों का ढ़ेर लग गया। लहू से लथपथ तड़पती देह भोले-भाले औरत, मर्द, और मासूम बच्चे इधर उधर भागते दिखे कुछ अरसा पहले गोविंद गुरु के सहयोगी पुंज ने जंगल में गड़र गाँव के दुराचारी व अत्याचारी थानेदार की हत्या की थी।

उस थानेदार की हत्या के अपराध में गोविंद गुरु पर झूठा मुक़दमा चलाया गया और फाँसी की सजा हुयी। आदिवासी विद्रोह की आशंका को देखते हुए फाँसी की सजा को बीस बरस को कैद में परिवर्तित किया गया कुछ समय के उपरांत इसे भी कम करके अंत में 12 जुलाई सन् 1923 को उन्हें जेल से रिहा कर दिया। कुशलगढ़, बांसवाडा, डूंगरपुर आदि रियासतों में उनके प्रवेश पर पाबंदी लगा दी। इसके उपरांत भी वह भील सेवा सदन झालोद के द्वारा आदिवासी- संघर्ष का बिगुल बजाते रहे। अंत में 30 अक्टूबर, 1931 को लिमडी के निकट कमबोई गाँव में उनका निधन हो गया।

1.2.3 खासी विद्रोह

पूर्वोत्तर के राज्य (8 राज्य) जिनमें असम, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश आदि राज्य आते हैं। उन सब ने ब्रिटिश नीति के विरुध्द प्रतिरोध की आवाज उठाई। आदिवासी राजाओं और सरदारों शासित सभी प्रदेशों पर ब्रिटिशों ने अधिकार पाने के लिए कई बार हमला किया तब उनके विरुध्द आदिवासी वीर योध्दाओं ने उनके प्रति प्रतिरोध किया और आंदोलन करते हुए शहीद भी हुए। जिनमें खासी पहाड़ियों के लिए लड़ने वाले तिरथ सिंह का नाम आदर से लिया जाता है।

---

[10] आदिवासी दुनिया- पृ. सं. 75

खासी आदिवासी अंचल प्रमुख रूप से सिलहट के आसपास के पहाड़ी पर लगभग 3500 वर्ग मिल क्षेत्रों में फैले पहाड़ी इलाके में था। "1765 में ही ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा बंगाल की दीवानी लिए जाने के बाद जब अंग्रेज सिलहट जिला के मालिक बन गए, तभी उनका खासी लोगों से संपर्क शुरू हुआ होगा। उन दिनों सिलहट बंगाल सूबे का हिस्सा था, जिसकी सीमओं के साथ जैंतिया राजा की सीमाएँ जुड़ीं थीं।"[11]

खासी पहाड़ियों में अंग्रेजों के आगमन से पहले खासी आदिवासियों के छोटे-छोटे लगभग बाईस राज्य थे। अंग्रेजों ने जब असम के नीचे के हिस्से में सबसे पहले कब्ज़ा किया तब यहाँ से उनकी दृष्टि खासी क्षेत्र पर गयी। उत्तर-पूर्व के सीमा प्रांत के ईस्ट इंडिया कंपनी के गवर्नर जनरल डेविड स्काट ने खासी पहाड़ियों से होकर असम के निचले क्षेत्र तथा सिलहट के बीच अच्छा मार्ग तैयार किया ताकि अंग्रेजी फौजों को अनेक सुविधा मिल सके। खासी मुखिया पर नियंत्रण किया सके।

अंग्रेजों की यह कार्रवाई 19 वीं शताब्दी की आरंभ में हुई लेकिन इस कार्रवाई का खिरेम के मुखिया ने विरोध किया। सन् 1826 में छत्र सिंह के मृत्यु के उपरांत तिरथ सिंह मुखिया बना जिसने अंग्रेजों से विद्रोह किया। 1827 में नोंगख्लाओ होते हुए चेरापूंजी तक की रोड मंजूर हो गयी और वह 1829 तक बन भी गई। उसी वर्ष तिरथ सिंह ने उनके साथी और कुछ मुखियाओं की सहायता लेकर अंग्रेजों पर हमला किया। इस लड़ाई में कैप्टन बोडिंग फिल्ड तथा बलर्टन को मार डाला और सरकारी बंगलों में आग लगा दी और अंग्रेजों के कैदखाने से क्रान्तिकारियों को मुक्त कर दिया। तिरथ सिंह ने ईस्ट इंडिया कंपनी के खिलाफ अन्य गणराज्य के मुखियाओं को संदेश भेजा।

संघर्ष के लिए आदिवासी संगठित होने लगे। विद्रोह की खबर पहाड़ी इलाके में आग की भाँति फैल गयी विद्रोह को कुचलने के लिए कैप्टन लिस्टर के नेतृत्व में सेना भेजी गयी तिरथ सिंह को कैद करने के लिए हजार रूपए का इनाम घोषित कर दिया गया। विद्रोह को दबाने की अंग्रेजी फौजों की काफी कोशिशें के बावजूद भी विद्रोह बढ़ता गया। चारों तरफ दबाव और कम होती जा रही लड़ाई की क्षमता के रहते अपने साथी की सलाह पर तिरथ सिंह ने अपने परिजन सहित अत्म समर्पण के लिए सहमति दे दी। क्योंकि उन्होंने अपने पास के हथियारों की कमी महसूस की और अंततः उन्होंने अंग्रेजों के शांति प्रस्ताव को मंजूर कर लिया।

लेकिन इसमें शर्त यह रखी गयी की उसे और उसके परिवारवालों को किसी भी प्रकार का कोई कष्ट नहीं पहुँचना चाहिए और न ही उन पर कोई मुकदमा चलेगा। 26 जनवरी, 1833 के दिन तिरथ सिंह ने

[11] आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह (पूर्वोत्तर खण्ड)- पृ.सं. 15

आत्म-समर्पण कर दिया अंग्रेज धोखे बाजी करने में माहिर थे उन्होंने तिरथ सिंह के साथियों को गुवाहाटी भेज दिया और उन पर मुक़दमा चलाया।

झूठे मुकदमों में उसे दोषी ठहराया गया और कलकत्ता कौंसिल के आदेश से ढाका के जेल में भेज दिया गया। जहाँ उन्हें घोर कष्ट दिया गया और तिरथ सिंह को उनके इशारे पर चलने को कहा तब तिरथ सिंह ने अंग्रेजों की इस छद्म मनोवृत्ति की आलोचना करते हुए कहा की "गुलाम होकर सिंहासन पर बैठकर जीने से कहीं अच्छा है एक बंदी बनाकर वीर राजा के रूप में मरना।"[12] इस प्रकार तिरथ सिंह मरते दम तक झुके नहीं तथा अपने आदिवासी समाज के लिए अंतिम दिन तक लड़ते रहे। 17 जुलाई, 1835 में वीर गति को प्राप्त हो गए उनकी यह देश भक्ति की भावना चिरकाल तक जीवित रहेगी।

1.2.4 नागा विद्रोह (1879)

नागा क्षेत्र में प्रवेश करना अंग्रेजों के लिए कठिन काम था लेकिन इसके बावजूद उन्होंने अपना वजूद सिध्द किया। अंग्रेजों का नागा योध्दाओं ने घनघोर रूप से मुकाबला किया। 22 नवंबर, 1879 ई. के लड़े गए इस युध्द को 'आंगलो-खोनमा' विद्रोह के नाम से जाना जाता है। अंग्रेजों का सेनापति दामंट इस लड़ाई में मारा गया। यह नागा-योध्दा की प्रथम जीत थी। इस जीत से उत्साहित होकर उन्होंने कोहिमा की सैनिक छावनी पर आक्रमण बोल दिया अंग्रेजों को भी इसका संदेह था। नागाओं ने अत्यंत साहस और शौर्य का परिचय दिया। जिसे अंग्रेजों को स्वीकारना पड़ा। अंग्रेज अधिकारी इस बात पर तैयार हो गए की छावनी नागाओं के हवाले कर दी जाएगी। लेकिन उन्हें चेमु के डिमा तक आवागमन के लिए रास्ता नागाओं द्वारा दिया जाए।

इस तरह की संधि होने वाली ही थी इतने में इंफाल से कर्नल जानस्टन अनेक सैनिकों के साथ पहुँच गए। इतनी बड़ी फ़ौज को देखकर खोनमा के आदिवासी वहाँ से चले गए। क्योंकि उनकी तैयारी अंग्रेजों के मुकाबले में बहुत कम थी। खोनमा से बाहर जाने वाले रास्तों को अंग्रेजी सेनाओं ने घेर लिया। जोटसोमी, मेजोमा, सेशुमा गाँवों के पर्याय मार्ग को भी अंग्रेजों ने बंद कर दिया। अंग्रेजों ने योजना बध्द तरीके से 22 नवंबर, 1879 को खोनमा पर फिर से हमला कर दिया। इस लड़ाई में सेमोपा और ओनोमा समुदाय के आदिवासी भी शामिल थे। घनघोर लड़ाई हुई जिसमें कुल 9 में से 4 अंग्रेज अफसर मारे गए।

ब्रिटिश रिकार्ड में इस युध्द को "नागा पहाड़ियों पर लड़ा गया भीषण युध्द माना गया।"[13] खोनमा के अतिरिक्त मरहूमा और शेवोमा गाँव पर भी अंग्रेजों ने आक्रमण किया था। अंग्रेजों के सैनिकों की तैयारी

---

[12] आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह (पूर्वोत्तर खण्ड)- पृ. सं. 80

[13] आदिवासी दुनिया- पृ. सं. 56

अच्छी थी इसलिए नागा लड़ाकुओं को पीछे हटना पड़ा। इस युध्द में ब्रिटिश सेना के लगभग 500 से ज्यादा अधिकारी और सैनिक मारे गए जब कि नागा योध्दाओं के 19 ही शहीद हुए थे। धीरे-धीरे अंग्रेज सेना ने अपना कब्ज़ा आरंभ किया। बहुत सारी सैनिकों की टुकड़ियों को बुलाया गया और 27 मार्च, 1880 को बेजोमा में अंग्रेज अधिकार और नागा मुखिया के बीच समझैता हुआ। जिसमें कुछ शर्त के साथ ब्रिटिश आधिपत्य को स्वीकार लिया गया।

1.2.5 जेलियांगरांग आंदोलन : रानी माँ गायदिनलियू

नागा वीरांगना रानी गायदिनलियू का जन्म श्री लोथोनांग पामेई और कलोटलेनिलयू पामेई के परिवार में 26 जनवरी, 1915 को लुआडकाओं गाँव में हुआ। जो अब मणिपुर राज्य में पड़ता है। नागा भूमि से वह एक मात्र लड़की थी जिसने विद्यालय से शिक्षा ग्रहण की थी। तेरह बरस की उम्र से ही वे नागाजनों के कल्याण के लिए कार्यरत थीं और वह अंतिम साँस तक लड़ती रहीं। रानी गायदिनलियू एक जन्मजात नेता थी वह नागा भूमि से अंग्रेजों को बाहर करने लिए उन्होंने स्वतंत्रता सेनानी जादोनांग के साथ मिलकर काम किया। 13 वर्षीय जादोनांग ने खुद को नागा दल का नेता घोषित कर दिया और अंग्रेज सत्ता के विरुध्द स्वतंत्रता का बिगुल बजाया। एक अंग्रेज अफसर को मारने के अपराध में उसे फाँसी पर लटकाया गया।

रानी गायदिनलियू के चचेरे भाई जादोनांग ने नागा लोगों की स्वायत्तता के लिए जेलियांगरांग आंदोलन की शुरुआत की थी। 1920 में शुरू हुआ यह आंदोलन सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलन के रूप में हुआ लेकिन समयानुसार 1930 में राजनीतिक आंदोलन बन गया। उन्होंने नागाओं के एक नये धर्म **'हेराका'** की स्थापना की। भाई के शहीद होने के बाद रानी गायदिनलियू जेलियांगरांग आंदोलन की मुखिया बनी और उसने भाई के संग्राम को आगे बड़ाने का कार्य किया।

रानी गायदिनलियू भी नागा संस्कृति एवं समाज के दु:खों के लिए अंग्रेज और उनके साथी, स्थानीय और बाहरी लोगों को जिम्मेदार मानती थी। उन्होंने 'हेराका संप्रदाय' से आंदोलन को पुनः संगठित कर वे नेमी, लियांग मेई और रेंगमेई तीन नागा आदिवासी समुदाय के साथ एक संयुक्त गुरिल्ला सेना जेलियांगरांग का गठन किया। यह आंदोलन मणिपुर, असम और नागालैंड के क्षेत्रों तक फ़ैल गया। इस प्रकार उसके पास गुरिल्ला युध्द के कुशल 4000 नागा क्रांतिकारी थे। अंग्रेजों की फौज असम राइफल्स की उसके दल के साथ कई बार मुठभेड़ हुयी। रानी गायदिनलियू ने यह संकल्प लिया था की "या तो अंग्रेज मरेंगे या मैं।"

17 अक्टूबर, 1932 की सुबह अंग्रेजी सेनाओं ने रानी के दल पर अचानक आक्रमण किया और उसे गिरफ्तार कर लिया। और उन्हें अंग्रेजों ने कई तरह की जेल में पीड़ाएँ, यातनाएँ दी, खुद रानी गायदिनलियू

के शब्दो में "मैं उनके लिये जंगली जानवर के समान थी। इसलिए एक मजबूत रस्सी मेरी कमर में बांधी गयी। दूसरे दिन कोहिमा में मेरी व मेरे दूसरे छोटे भाई ख्युसीनांग की क्रूरता से पिटाई की गई ? कड़कती ठंड में हमारे कपड़े छीन हमें रात भर ठिठुरने के लिए छोड़ दिया गया। अन्य अनेक यातनाएँ भी दी गयी पर मैंने धीरज नहीं खोया।"[14] रानी को इंफाल जेल में ले जाया गया और उन पर 1932 में झूठा मुक़दमा चलाकर अंग्रेजों के पालिटिकल एजेंट हिगिंस ने आजीवन कैद की सजा सुनाई।

हिंदुस्तान की आजादी के उपरांत इस महान स्वतंत्र सेनानी को 1947 में जेल से रिहा किया गया। रानी गायदिनलियू जीवन भर नागा आदिवासियों के हितों के लिए तत्पर रहीं। उनका जीवन संघर्ष से भरा रहा लेकिन उन्होंने अपना साहस कभी नहीं छोड़ा। वे जीवन पर्यन्त संघर्ष करती रही 17 फरवरी, 1993 को उनकी मृत्यु अपने गाँव में हीं हुयी।

वे एक स्वतंत्र सेनानी, हेराका संप्रदाय की संरक्षक संत, समाज सेविका, जेलियांगरांग जनता की नेता और देशज संस्कृति तथा भारतीय राष्ट्रवाद में अटूट विश्वास रखने वाली उन्हें अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया उनका संगठन आज भी सक्रिय रूप से कार्यरत है।

1.2.6 तिलका-मांझी का विद्रोह (1784)

भारत के प्रथम स्वतंत्रता सेनानी तिलका मांझी का जन्म संथाल परिवार में 11 फरवरी, 1750 ई. में तिलक पुर गाँव में सुल्तानगंज थाना के क्षेत्र में हुआ। जब तिलका मांझी का जन्म हुआ था उस समय देश के कई हिस्सों में मुग़ल शासन था। मुग़ल शासन और सत्ता ढीली होने लगी, तब ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपनी सत्ता कायम करने के लिए सन् 1757 ई. के पलासी युध्द के पश्चात उसने देश के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सत्ता बनायी और शासन करने लगा।

अंग्रेजों का शासन मध्य भारत तक आ पहुँचा। 1770 तक उन्होंने सुल्तानगंज, वीरभूमि, भागलपुर, मुंगेर आदि स्थानों पर अपना हक़ जमाया। उस वक्त भीषण अकाल का दौर था। इस भीषण अकाल के समय तिलका मांझी के नेतृत्व में लोगों तक अनाज और वस्त्र का प्रबंध किया गया। "उन्होंने अपने नेतृत्व में अकालग्रस्त पीड़ित लोगों के जीवन की रक्षा हेतु काफी सहायक कार्य किए। उन्होंने अकाल-पीड़ित गरीब लोगों को अनाज देने के लिए साहूकारों व जागीरदारों को भी बाध्य किया।"[15]

---

[14] आदिवासी दुनिया- पृ. सं. 57

[15] आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह (झारखण्ड)- पृ. सं. 41

इस प्रकार तिलका मांझी सरकार, कर्मचारी और आसपास के गाँवों के स्थानीय जमींदारों को लूटकर गरीब पहाड़ी आदिवासियों की मदद करते थे। कंपनी सरकार को खदेड़ने के लिए वह पहाड़ी आदिवासियों को संगठित करने लगा है। पहाड़ी आदिवासियों के गाँवों में वह उनके साथ रहने लगा और उनकी परिस्थितियों के साथ जुड़कर सहायता करने लगा यही वीर नायकों की खास भूमिका होती है।

तिलका मांझी ने अंग्रेजों के विरोध में 1781 ई. में आंदोलन किया। आंदोलन की ज्वाला समग्र संथाल, परगना, भागलपुर और आसपास के क्षेत्र में फ़ैल गयी अंग्रेजों के आगमन से पहले संथाल परगना पर पहाड़ी आदिवासियों की सत्ता थी। तिलका मांझी के द्वारा आंदोलन में एक ओर से धनुष बाण थे तो दूसरी ओर अंग्रेजों की तोप और बंदूकें थी। आदिवासी के इस स्वतंत्रता संग्राम में 388 आदिवासी वीर शहीद हुए थे। राकेश कुमार सिंह ने तिलका मांझी के जीवन-संघर्ष पर एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखा है- 'हूल पहाड़िया'। इसके क्लैप पर लिखा है कि, "क्रांति के इस प्रथम अग्रदूत ने राजमहल की पहाड़ियों में ईस्ट इंडिया कंपनी के साम्राज्यवादी रुख के विरुध्द नगाड़ा बजाकर एक नयी शुरुआत की थी। इस महानायक तिलका मांझी को इतिहास में वह स्थान नहीं दिया गया जिसके वह हकदार थे।"[16]

अंग्रेजों की नजर में तिलका मांझी एक विद्रोही नेता बन गया। क्योंकि वह पहाड़िया गाँव के मुखिया सरदारों को उसने प्रतिमाह दस रूपया भत्ता देना आरंभ किया, उनके नायक को पांच रुपया प्रति माह भत्ता। इसके विरोध में दक्षिण के पहाड़ी आदिवासियों ने तिलका मांझी के नेतृत्व में आंदोलन कर दिया।

अंग्रेजों ने इस विद्रोह को कुचलने के लिए आगस्टस क्लीवलैंड को भेजा। वह सेना लेकर उपस्थित हुआ और उसके साथी पहाड़िया सेना हिल रेंजर्स की टुकड़ी और उनका सेनापति जाऊराह पहाड़िया इनके अतिरिक्त साथ था दूसरे सेनापति अंग्रेज के प्रधान सेनापति आयरकुट कुछ वक्त के लिए पहाड़िया इस लड़ाई में आगे रहे लेकिन हिल रेंजर्स के प्रशिक्षित पहाड़िया अपने नए क्षेत्रों की सहायता की बल्कि पहाड़िया आदिवासी पर भारी पड़ गए इसका कारण यह था कि हिल रेंजर्स के पहाड़िया अन्य पहाड़िया, आदिवासियों की समग्र गुरिल्ला युध्द पध्दतियों को जानते थे। और दूसरा कारण यह था कि इनके हथियार उनके तीर कमान, कुल्हाड़ियाँ, भालों पर भारी पड़ गए। पहाड़िया विद्रोहियों को जल्दी ही पीछे हटना पड़ा तिलका मांझी अकेले छुपते भागते भागलपुर आये वह ताड़ के एक पेड़ पर बहुत दिनों तक भूखे प्यासे बैठे रहे और एक दिन मौका देखकर उन्होंने क्लीवलैंड की छाती में बाण मारा और अंग्रेजी सैनिकों के साथ महीनों तक लड़ाई करते रहे। उन्हें और संथाल सैनिकों को अन्न का अभाव होने लगा तब तिलका मांझी ने पहाड़ी क्षेत्रों से बाहर आकर अंग्रेजों से लड़ते रहे इस तरह लड़ते लड़ते-तिलका मांझी को पकड़ लिया गया।।

---

[16] आदिवासी विद्रोह, विद्रोह परंपरा और साहित्यिक अभिव्यक्ति की समस्याएँ- पृ. सं. 85

"तिलका मांझी को गिरफ्तार करने के बाद अंग्रेजों के प्रधान सेनापति आयरकूट ने उन्हें चार घोड़ों के बीच हाथ-पैर बाँधकर सुल्तानगंज से पूरे भागलपुर तक घसीटा। इतने लंबे रास्ते तक घसीटने पर भी जब उनकी मृत्यु नहीं हुई, तब उन्होंने बेरहमी से भागलपुर के चौराहे (वर्तमान तिलकामांझी चौक) पर एक बरगद के पेड़ की डाल से लटका कर उन्हें फाँसी दे दी।"[17]

1.2.7 कोल विद्रोह (1831-32)

झारखण्ड के आदिवासियों का एक महत्त्वपूर्ण विद्रोह है- कोल विद्रोह। 'कोल' अर्थात् मुंडा आदिवासियों का यह विद्रोह छोटा नागपुर के क्षेत्र में खास, सिंहभूम, पलामू, आदि इलाके में फ़ैल गया था, आदिवासियों के गाँवों पर जमींदारों के द्वारा बहुत जुल्म हो रहे थे। और उनकी मिली भगत से ईस्ट इंडिया कंपनी से थी। कंपनी जमींदारों के इस सहारे इलाके में अपना प्रभाव डाल रही थी इससे त्रस्त होकर कोल आदिवासियों ने 11 दिसंबर, 1831 को कुमांग के जमींदार पर हमला कर दिया इसके अलावा 20 दिसंबर, 1831 को पुनः एक बड़ा हमला हुआ जिसमें जमींदारों के महलों को नष्ट कर दिया गया। यही विद्रोह आगे चलकर प्रसिध्द कोल विद्रोह के नाम से इतिहास में जाने लगा। कोल विद्रोह के कई प्रमुख कारण है जो निम्न प्रकार है-

1. भूमि संबधी असंतोष और उसके प्रति लोगो में आक्रोश।
2. अंग्रेज द्वारा कोल, हो समुदायों पर अन्याय, अत्याचार और स्वशासन व्यवस्था में बाधा।
3. आदिवासियों के जमीन पर कर या सूद वसूलना।
4. आदिवासियों के नीजि जीवन में हस्तक्षेप करना।
5. आदिवासियों के क्षेत्रों में बाहरी लोगों को सरकार द्वारा बसाया जाना या आदिवासी खेतों पर गैर-आदिवासियों को जबरन अधिकार सौंपना।
6. आदिवासियों की स्त्रियों का हरण करना आदि।

छोटा नागपुर और जंगल पहाड़ी का समग्र क्षेत्र ईस्ट इंडिया कंपनी के अंतर्गत आ गया था। संघर्ष का दूसरा चरण 25 दिसंबर, 1831 क्रिसमस के दिन आरंभ हुआ। करीबन कई आदिवसियों ने गासू जमींदार और रांची के सैफुलाह खां के गाँव पर आक्रमण किया और उनके मकानों के साथ-साथ महलों में भी आग लगादी। इस विद्रोह में कई जमींदार मारे गए। और इसके एक हफ्ते बाद एक हजार आदिवासियों ने संगठित होकर कुमांग और कोरुबरू के जमींदारों पर हमला बोला। इस प्रकार कई जमींदारों के गाँवों पर आक्रमण

---

[17] आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह (झारखण्ड)- पृ. सं. 44

किया और याजर अली को मार डाला। जिसने कई आदिवासियों के गाँव पर अन्याय और महिलाओं को जबर्दस्ती से अपनी रखैल बनाया था।

इस प्रकार आदिवासियों का प्रण था की यहाँ के सभी जमींदारों को मौत के घाट उतारा जाए, एक को भी नहीं छोड़ना है। "कोल विद्रोह का मुख्य नायक बिंदराई मानकी सिंहभूम के पोड़ाहार परगना के गाँव तोपा सूचू का निवासी था। सिंगराई मानकी सोनपुर परगना (छोटानागपुर खास) का था।"[18] सी. आर. माँझी के आलेख में कई कोल नायकों का जिक्र किया है- "पीटो, डीबे, बोका, बोड़ा, पंडुआ, नारा और बोड़ाम।"[19]

इस प्रकार कोल आदिवासियों ने चार हजार सैनिकों के साथ गोविंदपुर पर आक्रमण किया। इस घटना के बाद अंग्रेजी सैनिक पूर्णरूप से क्रोधित हो गए। पटना के आयुक्त लैम्बर्ट के आदेश पर कुथबर्ट के नेतृत्व में रामगढ़ और हजारीबाग से बरकागढ़ परगना से पूरे उत्तर पश्चिम में सभी थाणे, विद्रोहियों के हवाले किये। 26 जनवरी, 1832 तक आदिवासियों ने पालकोट के थोड़े दक्षिण क्षेत्रों को छोड़कर छोटानागपुर को भी आजाद किया था।

ईस्ट इंडिया कंपनी के विरोध करने वाले कोल आदिवासियों की संघर्ष की आग तेजी से फ़ैल गयी। आंदोलन को कुचलने के लिए कलकत्ता से विलकिंसन व रसल और पटना से अतिरिक्त सैनिक भेजे गए। मार्च के समाप्त होने तक अनेक जगहों पर वे मुकाबलों के उपरांत अंग्रेजी सेनाओं ने फिर से इलाके पर कब्ज़ा करना शुरू किया। कर्नल बोबेन के नेतृत्व वाली पलटन ने आदिवासी गाँव में कत्लेआम आरंभ कर भय पैदा किया।

"कोल विद्रोह आदिवासियों की पहली सुनियोजित ढंग से लड़ी गयी बड़ी लड़ाई है। इससे पूर्व हुए विद्रोह में अधिकांशतः बाहरी हस्तक्षेप्र का विरोध ही अधिक नजर आता है, मगर कोल विद्रोह अपने 'मुंडा देश' की स्थापना करने जैसे बड़े उद्देश्य के साथ शुरू किया गया था। कोल विद्रोह सही मायनों में आदिवासियों का एक राष्ट्रीय आंदोलन था।"[20]

1.2.8 संथाल विद्रोह (1855-56)

संथाल का संक्षिप्त इतिहास देखा जाए तो केदार प्रसाद मीणा की 'आदिवासी विद्रोह' पुस्तक में लिखा है कि 'संथाल देश का तीसरा और झारखण्ड का सबसे बड़ा आदिवासी समुदाय है। सन् 2001 की

---

[18] आदिवासी विद्रोह, विद्रोह परंपरा और साहित्यिक अभिव्यक्ति की समस्याएँ- पृ. सं. 98

[19] आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह (झारखण्ड) पृ. सं. 63

[20] आदिवासी विद्रोह, विद्रोह परंपरा और साहित्यिक अभिव्यक्ति की समस्याएँ- पृ. सं. 101

जनगणना के अनुसार झारखण्ड प्रदेश की कुल आदिवासी आबादी के 34 प्रतिशत लोग संथाल है।... ये संथाल परगना के सभी जिलों सहित धनबाद, हजारीबाग, राँची, सिंहभूम, गुमला, सिमडेगा आदि स्थानों में निवास कर रहे हैं। झारखण्ड राज्य के अलावा उड़ीसा, बंगाल, असम और त्रिपुरा में भी संथाल लोग रहते हैं। इसके अतिरिक्त नेपाल और बांग्लादेश में भी संथाल है।'

संथाल परगना का एक भूखंड 'दामिन-ए-कोहा' के नाम से जाना जाता है। अर्थात् पृथ्वी मांझी के आलेख में जब सरदार और तिलका मांझी का दौर था तब क्लीवलैंड ही थे, जिन्होंने आदिवासियों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए कई आदिवासियों को सिपाही के रूप में भर्ती किया था। इन सिपाहियों के माध्यम से अपना नियंत्रण स्थापित किया था। इन आदिवासियों को गुलाम बनाया और उनके लिए एक कॉलोनी स्थापित किया ताकि उन पर सुगमता से शासन किया जा सके और इस इलाके का नाम 'दामिन-ए-कोहा' रखा।

उसी क्षेत्र में भगनाडीह गाँव के देश परगना चुनका मुर्मू के घर में चार महा वीर योध्दा सिदो, कान्हू, चाँद एवं भैरव ने जन्म लिया। ये अपने समाज, बांधवों के लिए आजीवन लड़ते रहे। इन्होंने अपने समाज पर होने वाले अन्याय, अत्याचार, शोषण और अंग्रेजी शासन को इस मुल्क से जड़ से उखाड़ फेंकने हेतु स्वतंत्रता-आंदोलन का नेतृत्व किया।

यह समय था जब दमन के विरुध्द क्रोध धीरे-धीरे पुंज की तरह था जो अन्याय के खिलाफ पूर्ण देश में चिंगारी की भाँति तेज हो रहा था। उसी समय संथाल के जिलों में अंग्रेजों का बोलावाला था जो कि मांझी और कोल विद्रोह को बुरी तरह कुचला था। उसी प्रकार अंग्रेजों ने मध्य भारत के कई क्षेत्रों को अपने अधीन कर लिया था। वह भगीरथी के पश्चिम में राजमहल से लेकर हजारीबाग एवं मुंगेर की सीमा में घने जंगल उत्तरी भागलपुर और दक्षिण वीरभूम, आदि तक फैला था।

इन क्षेत्रों में पहाड़ियों और जंगलों की बहुलता थी। इस इलाके में पूरी स्वतंत्रता के साथ संथाल सदियों से रह रहे थे। इनकी जीविकोपार्जन खेती पर निर्भर थी। साथ-ही-साथ "ये लोग बाघ, हाथी, भालू, शेर आदि जंगली जानवरों के साथ रहते थे और शिकार व खेती के लिए अभी भी पुरानी आदिम तकनीक का ही उपयोग करते थे।"[21]

इस प्रकार उनके जीवन में अंग्रेज और स्थानीय महाजन, सूदखोरों, जमींदार आदि बाहरी लोगों द्वारा उन पर अन्याय होता रहा। वे तीर-कमान, तलवार बांसुरी, मादल के साथ शांतिप्रिय और सीधे सरल संथालों

---

[21] आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह (झारखण्ड)- पृ. सं. 94

ने शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य के विरोध, विद्रोह का आरंभ किया। 30 जून, 1855 के दिन संथाल परगना के भगनाडीह गाँव में लगभग दस हजार संथाल एकित्रत हुए और वहाँ एक विशाल जन सभा हुई। 'ममेकफैल के मतानुसार इसी सभा में सिदो-कान्हू के साथ वीर भूम, भागलपुर, हजारीबाग और मानभूम से हजारों की तादाद में संथालों ने सभा में भाग लिया।

इस सबसे बड़े संथाल विद्रोह का नेतृत्व महान संथाल क्रांतिकारी भाई सिदो-कान्हू-चाँद-भैरव ने किया था। 30 जून, 1856 संथाल और संघर्षरत लोगों के लिए अविस्मरणीय है। इस दिन लगभग दस हजार संथाल आदिवासी धनुष-बाण, तीर-कमान, तलवार, ढंगी, कुठार बांसुरी, मांदल आदि हजारों के साथ तैयार होकर भगनाडीह संगठित हुए और उन्होंने सिदो-कान्हू के नेतृत्व में घोषणा कर दी की इन दोनों को सर्वानुमति से आदिवासियों का नेता चुन लिया गया है। उस सभा में यह निर्णय हुआ की अब हमारे क्षेत्र में किसी का शासन नहीं बल्कि हमारा ही राज्य होगा। नहीं कोई सरकार रहेगी, कोई थानेदार रहेंगे, नहीं कोई हाकिम, संथाल राज्य की स्थापना हो गया है।

संथाल विद्रोह का कुछ महत्त्वपूर्ण कारण है संथाल क्षेत्र में फिर से 'दामिन-ए-कोहा' पर काले बादल मुंडराने लगे। मुनाफाखोर महाजन और साहूकार, इनके इलाके में प्रवेश करने लगे और शोषण की एक नयी प्रकिया की शुरुआत की। अंग्रेजों के द्वारा टैक्स, लगाया गया सूद वसूलने लगे कंपनी के माध्यम से संथालों पर शोषण अत्याचार आदि बढ़ता गया। जब अत्याचार व यातनाएँ बर्दाश्त के बाहर हो गयी तो उनके पास विद्रोह के रास्ते पर चलने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं बचा।

यह टकराव संथाल विद्रोह में परिवर्तित हो गया जो निरंतर व्यापक होता गया। पैलापुर, अंग्रेजों की छावनी थी जिस पर संथाल क्रांतिकारियों ने आक्रमण किया। उस लड़ाई में अनेक संथाल क्रांतिकारी मारे गए। जिनमें उनके मुखिया सिदो-कान्हू भी शामिल थे। विद्रोह को दबाने के लिए क्रांतिकारियों को ढूंढ-ढूंढ कर कैद किया जाने लगा। 15 जुलाई, 1856 को पुनः दोनों पक्षों में भीषण मुठभेड़ हुई यहाँ पर फिर अनेक क्रांतिकारी नायक शहीद हुए और कई गिरफ्तार कर लिए गए।

इसके बावजूद विद्रोह भड़कता ही गया। समग्र संथाल परगने में 30 हजार आदिवासी लड़ाई कर रहे थे। अंग्रेजी हुकूमत ने इस विद्रोह को कुचलने के लिए कई सेनाओं को भेजा जिन्हें संथाल के आंदोलन को दबाने की जिम्मेदारी सौंपी गयी। इस लड़ाई में कुल मिलाकर दस हजार संथाल वीरगति को प्राप्त हुए।

इस विद्रोह के संदर्भ में पृथ्वी मांझी 'आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह' में लिखते हैं कि-"इस युध्द में हजारों संथालों को बलिदान देना पड़ा। ये लोग ब्रिटिश सेना के आधुनिकता, हथियार और शस्त्रों के आगे नहीं टिक सके। लेकिन उन्होंने फरवरी, 1856 तक छिटपुट ही सही, अपना विद्रोह जारी रखा। फरवरी,

1856 के दूसरे सप्ताह में ब्रिटिश फौजों ने सिदो को पकड़ और उसे गोलियों से भून डाला। इसी महीने के तीसरे सप्ताह को कान्हू को वीरभूम में पकड़ लिया गया और उसे फाँसी दे दी गई। इनकी शहादत के साथ ही संथाल विद्रोह मंद पड़ने लगा। बावजूद इसके संथाल विद्रोह की आग लंबे समय तक धधकती रही। संथालों की जिजीविषा और अदम्य संघर्ष क्षमता ने करोड़ों भारतीयों को नई प्रेरणा दी कि संसाधनहीन होकर भी कैसे वे शक्तिशाली ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ाई जारी रख सकते हैं।"[22]

1.2.9 रंपा विद्रोह (1922-24)

दक्षिण भारत में जितने भी आदिवासियों के आंदोलन हुए हैं उनमें से एक महत्त्वपूर्ण आंदोलन है रंपा आंदोलन। इस आंदोलन का नेतृत्व अल्लूरी सीतारामराजु ने किया था। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य सरकारी अधिकारियों द्वारा मलाबार में निवास करनेवाले कोंडदोरा जाति के लोगों पर हो रहे अत्याचार उनके आर्थिक शोषण को रोकना था। यह विद्रोह अल्लूरी सीतारामराजु द्वारा 'मन्यम् विप्लव' के नाम से जाना जाता है।

रंपा विद्रोह ने आंध्र प्रदेश के नवयुवकों को जागृत करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। अल्लूरी सीतारामराजु का जन्म विशाखा पट्नम जिले के पंडूरंगी नामक गाँव में उनके ननिहाल में 4 जुलाई, 1897 को हुआ। उनकी माता का नाम सूर्य नारायणाम्मा और पिता का नाम श्री वेंकट रामराजु था। बचपन में ही उनके पिता का निधन हो गया था जिसके कारण उनको उच्च शिक्षा नहीं मिल पायी।

सीतारामराजु अपने परिवार के साथ टुनी में रहने आये थे। इसी स्थान से वह दो बार तीर्थ यात्रा के लिए निकल गए थे। पहली तीर्थ यात्रा 26 अप्रैल, 1916 में वे हिमालय की ओर चले गए। वह यात्रा "बंबई, ब्रोचि, बड़ौदा, आनंद. ठाकूल उज्जैनी, अमृतसर, काशी, ऋषिकेशम्, नेपाल,... बद्रीनाथ नामक जगहों का भ्रमण किया और उनकी पहचान महान क्रांतिकारी पृथ्वीसिंह आजाद से हुई। इसी मुलाकात के दौरान उनको चटगांव के एक क्रांतिकारी संगठन के बारे में पता चला जो गुप्त रूप से चलाया जाता था।"[23]

सन् 1919-20 के दरम्यान साधू-संन्यासियों के बड़े-बड़े जत्थे लोगों में राष्ट्रीयता की भावना को जगाने के लिए और संघर्ष के लिए समग्र उद्देश्य से भ्रमण कर रहे थे। इसी मौके का फायदा उठाते हुए सीतारामराजु ने बंबई से बनारस होते हुए नेपाल तक की यात्रा की। बाद में उन्होंने आदिलाबाद के इलाके

[22] आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह (झारखण्ड) पृ. सं. 102
[23] अल्लूरी सीतारामराजु- पृ. सं. 88

के भी कुछ यात्रा की । इस दरम्यान उन्होंने घुड़सवारी, योग, ज्योतिष, तीरंदाजी और प्राचीन शस्त्रों का अभ्यास किया। वे काली माता के उपासक भी थे।

तीर्थ यात्रा से लौट आने के बाद विशाखा जिला में 17 जुलाई, 1917 को कृष्णदेवु पेटा गाँव में आश्रम बनाया और उस आश्रम में ध्यान व साधना करते हुए उन्होंने संन्यासी जीवन जीने का निर्णय लिया। दूसरी बार इनकी तीर्थ यात्रा का प्रयाण नासिक की ओर था जो इन्होंने पैदल की। यह वह समय था जब पूरे देश में 'असहयोग आंदोलन' चल रहा था। आंध्र प्रदेश में भी यहाँ आंदोलन अपनी चरम सीमा तक पहुँचा था। इसी आंदोलन को और तेज गति देने के लिए सीतारामराजु ने पंचायतों की स्थापना की और स्थानीय विवादों को आपसी रुप से मिटाने की शुरुआत की।

सीतारामराजु ने लोगों के मन में से ब्रिटिश शासन के भय को निकाला और उन्हें असहयोग आंदोलन के लिए तैयार किया। बाद में सीतारामराजु ने गाँधी के विचारों को त्यागकर-सैन्य संगठन की स्थापना की। और संपूर्ण रंपा क्षेत्रों को क्रांतिकारी आंदोलन का केंद्र बना लिया।

तटीय मलाबार का पर्वतीय क्षेत्र छापामार युध्द के लिए उपर्युक्त था। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय लोगों की सहायता मिल रही थी। आंदोलन के लिए प्राणों की बाजी लगाने के लिए उनके साथ थे। "इसलिए आंदोलन को तेजगति देने के लिए गुडेम में 'गाम मल्लुदोरा' और 'गाम गौतम दोरा' बंधुओं को लेप्टीनेंट बनाया।" आंदोलन को और तेज करने की जरुरत थी। इसके लिए आधुनिक शस्त्रों की आवश्यकता थी।

आधुनिक शस्त्र से युक्त ब्रिटिश सैनिकों के सामने धनुष-बाण लेकर अधिक देर तक टिक पाना असंभव था। यह सीतारामराजु अच्छी तरह जानते थे। इसलिए उन्होंने डाका डालना आरंभ किया। इससे मिलने वाले धन से और पुलिस स्टेशन पर आक्रमण कर शस्त्र प्राप्त करना उनका लक्ष्य था। 22 अगस्त, 1922 को उन्होंने पहला हमला 'चिंतापल्ली' पर किया। अपने 300 सैनिकों के साथ शस्त्र को लूटा इसके उपरांत 23 अगस्त, 1922 को कृष्णदेवु पेटा पुलिस स्टेशन पर आक्रमण कर वीरय्या दोरा को छुड़वाया। इस तरह पुलिस स्टेशन को लूटने का सिलसिला जारी रखा।

सीतारामराजु की बढ़ती गतिविधियों से अंग्रेज सरकार सजग हो गयी अब वह भलीभाँति जान गयी थी कि सीतारामराजु कोई सामान्य शत्रु नहीं है वे संगठित सैन्य-शक्ति के बल पर अंग्रेजों को अपने प्रदेशों से बाहर निकाल कर फेंकना चाहते हैं। "सीतारामराजु को पकड़ने के लिए सरकार ने स्कार्ट और आर्थर नामक दो अधिकारयों को भेजा।" सीतारामराजु ने ओजोरी गाँव के नजदीक अपने 80 अनुयायी के साथ मिलकर 'उन दोनों अंग्रेज अधिकारियों को मार डाला।' इस मुठभेड़ में ब्रिटिशों के अनेक अस्त्र उनके हाथ लग गए

। इस विजय से उत्साहित होकर सीतारामराजु ने अंग्रेजों को आंध्र प्रदेश को छोड़ने की धमकी देनेवाले पोस्टर समग्र-क्षेत्र में लगवाये।

इससे अंग्रेज सरकार और सावधान हो गयी उसने "सीतारामराजु को पकड़वाने के लिए दस हजार रुपय का इनाम रखा। उनकी गतिविधियों पर नियंत्रण रखने के लिए लाखों रुपये खर्च किये गए।" फिर भी सीतारामराजु अपने बलबूते पर सरकार के इस कार्यवाही का विरोध करते रहे। लोगो में फूट डालने का काम सरकार कर रही थी लेकिन इसके बावजूद उनकी सेना में भर्ती होने का सिलसिला बढ़ता ही जा रहा था। उन्होंने रंपा चोडवरम् आदि स्थानों पर हमले किये। उनके जासूसों का गिरोह सशक्त था। जिसे सरकारी योजना का पता पहले ही लग जाता था। उनकी चतुराई का पता इस बात से लग जाता है कि जब पृथ्वी सिंह आजाद को राजा महेंद्र की जेल पर हमला कर क्रांतिकारी पृथ्वी को छुड़ा लिया जायेगा।

सीतारामराजु की शक्ति एवं संकल्प से अंग्रेज सरकार परिचित थी वह पहले से ही भय में थी। इसलिए उसने आसपास के जेलों से पुलिस शक्ति मंगवाकर राजा महेंद्र की जेल के सुरक्षा के लिए तैनात करवा दिया। इधर सीतारामराजु ने अपने सैनिकों को अलग-अलग जेलों पर एक साथ आक्रमण करने की अनुमति दे दी इससे लाभ यह हुआ की उनके भंडार में शस्त्रों की और संख्या बढ़ गयी।

सीतारामराजु के इस बढ़ते हुए कदमों को रोकने के लिए सरकार ने 'असम रायफल्स' नाम से सेना भी तैयार कर ली। जनवरी से अप्रैल तक यह सेना उबड़-खाबड़ पहाड़ी जंगलों में सीतारामराजु को ढूंढती रही। आखिर मई, 1924 को अंग्रेज सरकार को सफलता मिली उस दिन किरब्बू में दोनों सेनाओं के बीच भीषण युध्द हुआ सीतारामराजु विरोधी संगठन के नेता थे और असम रायफल्स का नेतृत्व उपेन्द्र पटनायक कर रहे थे। दोनों ओर की सेना के अनेक सैनिक मारे जा चुके थे अगले दिन 7 मई, 1924 को पुलिस रिकार्ड के मुताबिक सीतारामराजु को पकड़ लिया गया उस समय सीतारामराजु के सैनिकों की संख्या कम थी। फिर भी गोरती नामक एक सैन्य अधिकारी ने सीतारामराजु को पेड़ से बांधकर उन पर गोलियाँ बरसाई।

सीतारामराजु के बलिदान के बाद भी अंग्रेज सरकार को विरोधी अभियान से मुक्ति नहीं मिली। दोनों बंधुओं ने मरते दम तक इस लड़ाई को निरंतर जारी रखा। गौतम दोरा का निधन पुलिस की गोलियाँ लगने से हुआ। मल्लु दोरा को बंदी बना लिया और उन पर मुक़दमा चलाया। 9 जून, 1924 को उनको फाँसी दी गयी। इस प्रकार सीतारामराजु का शुरू हुआ आंदोलन उनके उपरांत भी दो महीने तक निरंतर चलता रहा। इस प्रकार अल्लूरी सीतारामराजु, गैर-आदिवासी होकर भी उन्होंने पीड़ित, शोषित लोगों का पक्ष लिया और उनकी मुक्ति के लिए वह आजीवन लड़ते रहे। वह संन्यासी थे उन्होंने अपना समग्र जीवन समाज हित के लिए अर्पण किया उनके विचार और उनका समाज कार्य प्रासंगिक एवं उल्लेखनीय है।

1.2.10 वारली संघर्ष (1945-48)

महाराष्ट्र में वारली आदिवासी भी देश के अन्य आदिवासियों की तरह अंग्रेज सरकार की नीतियों के कारण दु:खी हो गए थे। एक ज़माने में थाणे जिले के सारी जमीनों के हक़दार हुआ करते थे किन्तु अंग्रेजों के हस्तक्षेप से धीरे-धीरे इस क्षेत्र में बाहरी लोगों की तादाद बढ़ गयी। यह बाहरी लोग वारली आदिवासियों से ज्यादा होशियार थे। इन लोगों ने धीरे-धीरे उनकी जमीनें छीन ली और आदिवासी क्षेत्र के जमींदार बन गए।

इन बाहरी लोगों में हिन्दू, मुसलमान और फारसी लोग प्रमुख थे इनमें से अनेक हिन्दू और मुसलमान जमींदार बन गए। और फारसी लोग मुख्यतः महाजनी का व्यवसाय करके धन संपन्न हो गए। इन सबने मिलकर वारली लोगों को दयनीय अवस्था में लाकर छोड़ दिया। महाजन आवश्यकता के वक्त वारली किसान को कुछ रुपयों की आर्थिक मदद करते थे। ये कुछ रूपए ही कुछ सालों बाद सूद के साथ पहाड़ के बराबर हो जाते थे। वारली इस पैसों के सूद सही चुकता करने में असमर्थ थे। इसके बदले में उनकी बची हुयी जमीन साहूकार पैसों के बदले में छीन लेते थे और वारलियों पर बेगारी करने की नौबत आ जाती थी।

इन आदिवासियों के उन दिनों हो रहे शोषण की सीमा पूरी तरह से पार हो चुकी थी उनको घास कटाई के बदले मजदूरी नहीं मिलती थी अपितु एक या दो आने कीमत की ताड़ी, कुल्हड़ भर दी जाती थी। जबकि मालिक इसका भारी फायदा उठाते थे। किसान सभाओं के कार्यकर्ताओं ने इस शोषण के विरोध में प्रथमतः आंदोलन किया और उनकी मजदूरी बढ़ाई। आदिवासियों की इस विजय से जमींदार क्रोधित हो गए। 10 अक्टूबर, 1945 को उन्होंने यह अफवाह फैलायी की वारलियों की बहन की गोदावरी परुलेकर की जान को खतरा है इस बात को सत्य मानकर वारली अपने परंपरागत हथियार के साथ संगठित हो गए। इस समय जमींदारों की सहायक पुलिस आई और उसने भीड़ में लाल झंडों पर गोलियां चलायी। इस संघर्ष में वारली आदिवासी कॉमरेड जेठा गांगड मारा गया वह संघर्ष जमींदारों से रची गयी साजिश थी।

कॉमरेड दल भी और कम्यूनिस्ट कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर लिये गए। उनके हौसलों को कमजोर करने के अनेक उपाय किये गये। इन झूठी क़ानूनी कार्यवाही को सहना, वहीं से निपटना इन कार्यकर्त्ताओं के संघर्ष का अब दूसरा मोर्चा बन गया था। किन्तु इस घटना के बावजूद भी वारलियों ने अपनी हड़ताल नहीं तोड़ी अंत में उनकी मजदूरी साढ़े चार रूपया तक बढ़ाना स्वीकार किया गया। यह वारली आदिवासियों की एक बड़ी एवं महत्त्वपूर्ण जीत साबित हुयी ऐसी हड़ताल अनेक होती रही। इससे जमींदारों व ठेकेदारों को कई तरह का नुकसान हुआ। इसको पाबंदी करने के लिए आपात स्थिति की घोषणा की गयी लेकिन वारली समाज इनके बताए हुए बातों से हटे नहीं। "हड़ताल तोड़ने के लिए उन्हें तरह-तरह से सताया जाने लगा।

झूठे मुकदमे लगाकर उन्हें जेल में डाला जाने लगा। उनकी जमानत की रकम बढ़ा दी गयी और कम्यूनिस्टों से दूर रहने की शपथ न लेने तक छोड़ा नहीं गया।"[24]

फरवरी, 1947 में कॉमरेड गोदावरी और श्याम राव पर हिंसा भड़काने का जुल्म लगाया। उदार उंबरगाँव और डहानू तहसील में सरकारी अधिकारियों और पुलिस ने वारलियों पर भयानक अत्याचार, आरोप लगाये। उनकी स्त्रियों का मान-मर्दन किया गया। गाँववाले के घर जला दिये गये। पुलिस के साथ संघर्ष करने में 7 जनवरी, 1947 को पांच वारली लोग मारे गए। यह घटना पालघर तहसील के नानिवली गाँव की है। वारलियों का आंदोलन अब उंबरगाँव और डहानू तहसील तक ही सीमित ही नहीं बल्कि वह बाहर तक फैलता गया।

हजारों आदिवासियों को थेरवाडा, थाणे, नासिक और बिजापुर जेल में कैद किया गया। इसके बावजूद वारलियों ने संघर्ष की छापामार-गुरिल्ला पध्दति को अपना लिया। वारली आदिवासी इस संघर्ष में विजय हुए। 5 अप्रैल, 1947 को समग्र वारलियों को कैद से मुक्त करने की घोषणा की गयी और उनको सुविधाएँ भी दी गयीं। यह वारली विद्रोह आदिवासी-संघर्ष की परंपरा में एक अनुकरणीय क्रांतिकारी उदहारण साबित हुआ।

1.3 *बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम का भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में योगदान*

भारतीय इतिहास में 1857 को भारत का प्रथम स्वाधीनता-संग्राम माना जाता है क्योंकि इस संग्राम में भारत के इतिहास में प्रथमत: सभी क्षेत्र के लोग एक होकर अंग्रेजों के विरुध्द लड़े थे। इस संग्राम के अनेक कारण थे लेकिन उनमें जो राष्ट्रीयता की भावना थी वह सब के मन में समान थी। लेकिन अगर हम जनजातीय आंदोलन को दृष्टि में रखकर विचार करेंगे तो यह प्रतीत होता है कि "स्वाधीनता का आंदोलन का आरंभ 1857 ई. से पहले ही हुआ था क्योंकि 18 वीं सदी में अंग्रेजों को साथ यहाँ मूलनिवासी कहे जानेवाले आदिवासियों की अनेक जगहों पर मुठभेड़ हुयी थी" लेकिन इतिहासकारों ने इन्हें अपने इतिहास में कहीं स्थान नहीं दिया क्योंकि "उनके विचार के अनुसार यहाँ आंदोलन या विद्रोह, राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक नहीं था" लेकिन इसी के आधार पर उनके भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में जो योगदान है उसे कम आंकना उचित नहीं है।

'आदिवासी जन नायकों में बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम का नाम अग्रणीय है। उनका भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है जिस पर जैसा अपेक्षित था उस प्रकार का विचार नहीं किया

[24] आदिवासी विद्रोह, विद्रोह परंपरा और साहित्यिक अभिव्यक्ति की समस्याएँ- पृ. सं. 74

गया। उनका अपने हक़ के लिए अपने राज्य के लिए, क्षेत्र के लिए, स्वायत्ता के लिए, और स्वाभिमान के लिए जो लड़ाई थी, वही भारतीय संग्राम की लड़ाई थी।

उन दोनों के इस लड़ाई को दुर्लक्षित करना उनके साथ अन्याय करने जैसा है। **"उनकी लड़ाई भी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित थी।"** बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम ने अपने समाज के स्वाधीनता के लिए आंदोलन करने की प्रेरणा का संचार किया और वह अपने समाज के उन्नायक बन गए।

1.3.1 बिरसा मुंडा का उलगुलान-आंदोलन (1895-1900)

भारत देश के इतिहास में आदिवासियों के आंदोलन में संथाल विद्रोह के बाद दूसरा मुख्य आंदोलन माना जाता है जो बिरसा मुंडा के नेतृत्व में 'उलगुलान' नाम से लड़ा गया था। आदिवासियों के क्षेत्रों पर अंग्रेजों का शासन था। उसी समय 1895 में मुंडा, उराँव, आदिवासी सरदार आदि जनसमुदायों की तमाम कोशिशों के बावजूद अपनी जमीन, अस्मिता को बचा नहीं पा रहे थे तब उस वक्त ही बिरसा मुंडा का उदय हुआ।

बिरसा मुंडा का जन्म 15 नवंबर, सन् 1875 को आज के झारखण्ड राज्य के चलकद के पास 'उलीहातू' में हुआ था। बिरसा मुंडा का पिता सुगना मुंडा और माता करमी। बिरसा मुंडा बचपन से ही बहुत सुंदर बांसुरी बजाया करता था और माँ, बाप स्वयं का पेट भरने में असमर्थ थे यह बिरसा मुंडा की मौसी जानती थी। बिरसा ने अपने मौसा-मौसी के पास खटांग रहकर वही प्राथमिक शिक्षा ली। मौसी ने बकरियां चराने की जिम्मेदारी बिरसा पर सौंपी। फिर वहाँ से बिरसा अपने गाँव आये। बिरसा मुंडा की घर की हालत दयनीय थी। बिरसा के पिता को ईसाई धर्म को अपनाना पड़ा और वहीं पर बिरसा का चाईबासा के मिशन स्कूल में दाखिल हुआ। बिरसा पढ़ने-लिखने में तेज थे। वह पादरी की आलोचना से सहमत नहीं थे। इसलिए उन्होंने स्कूल में जिन पादारी ने उनकी निंदा की। इस मुद्दे पर बिरसा ने उनसे तीखी बहस की। बहस के दौरान बिरसा को मिशनरी स्कूल से निकाला गया। और वहाँ से अपने बड़े भाई कोम्ता मुंडा के पास रहते हिन्दू धर्म के ज्ञानी ब्राह्मण आनंद पांडे के संपर्क में 'रामायण' 'महाभारत' आदि को जाना।

बिरसा रोटी की तलाश में इधर-उधर भटकता रहा। उसने अपने दरिद्रता की वजह को और उसके कारण को जानने की कोशिश की। उनके कारण थे जंगलों पर आदिवासियों के पारंपरिक अधिकार पर पाबंदी, कृषि भूमि के उत्पाद पर लगान और टैक्स और इन सबके पीछे साजिश अंग्रेजों और उनके देशी कारिंदे सामंतों जमींदार और ठेकेदार की थी।

बिरसा के समय अंग्रेजों के आने के बाद बाहरी लोगों का आगमन तेज हो गया है और उनके जमीन ही नहीं बल्कि उन पर जबरन त्यौहार एवं संस्कृति को भी थोपा तथा मिशनरी लोग गरीब की सहायता करने की आड़ में धर्म परिवर्तन कराने में जुट गए थे। इससे "वे अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक पहचान खोते जा रहे थे। उनकी जमीनें छिनी जा रही थीं, उनसे बेगार करायी जा रही थी और उनकी बहन-बेटियों की इज्जत लूटी जा रही थी। ईसाई मिशनरी सहायता का प्रलोभन देकर उनका धर्म परिवर्तन तो करवा रहे थे, पर उनकी कोई ठोस सहायता नहीं कर रहे थे। सरकार उनकी शिकायतों को लगातार नजरअंदाज कर महाजनों-जमींदारों को ही सहायता पहुँचा रही थी। उनका सारा जोर केवल राजस्व वसूली पर था। आदिवासी रैयत की बेहतरी के सारे दावों की पोल खुल चुकी थी। आदिवासी बेसहारा थे। ऐसे समय में इतिहास की जरुरत पूरी करने के लिए ही मानो बिरसा मुंडा का उदय हुआ।"[25]

बिरसा ने आगे चलकर अपने समाज के हितों का कार्य किया इसके अनेक उदहारण है। उन्हीं दिनों मुंडा गाँवों में चेचक की महामारी फैली थी कई लोगों ने इस घटना के लिए बिरसा मुंडा को जिम्मेदार ठहराया क्योंकि उसने बोंगा के पूजा करने का विरोध किया था। इस प्रकार बिरसा मुंडा ने प्रथमतः बेगारी का विरोध किया और उसके बाद जंगल और जमीन के अधिकारों के लिए आवाज उठाई। बिरसा के पास दूर-दूर से लोग बीमारियों से छुटकारा पाने के लिए बिरसा से मिलने आने लगे। वे अपने बंधुओं को हर तरह से जागृत करने लगे वे लोगों से कहने लगे कि अंधविश्वास में मत भरोसा कीजिये, ओझा को मत मानिये उनसे दूर रहे, और हडियाँ- शराब-नशा से बचने की बात करते थे शिक्षित होने पर बल देते थे।

अंग्रेज सरकार बिरसा मुंडा के आंदोलन को शंका के साथ देखने लगी थी यह जानकर छोटानागपुर कमिश्नर डब्लू. एच. ग्रीमाले ने बिरसा मुंडा को गिरफ्तार करने का आयोजन शुरू किया सरकार ने अंत में बिरसा मुंडा को पकड़ने का निर्णय लिया। 22 अगस्त, 1895 को पुलिस सुपरिटेंडेट जे. आर. के मेयर्स को भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 355 व 505 के अनुसार बिरसा मुंडा को कैद करने की जिम्मेदारी दी गयी।

वह, बंदगाँव के जमींदार बाबू जगनमोहन सिंह, कई सिपाही और मिशन के फादरी रेवरेंड लस्टी के साथ 26 अगस्त, 1895 के रात को तीन बजे बिरसा मुंडा तक पहुँचे और झोपड़ी के अंदर सो रहे बिरसा मुंडा को उनके साथियों के साथ कैद कर, बिरसा मुंडा को राँची जेल ले गए। इस मामले में बिरसा मुंडा को दो साल की सजा हुयी। बिरसा मुंडा के आंदोलन का यहाँ प्रथम चरण था। यहाँ विद्रोह नहीं वरना एक राजनीतिक एवं उग्र आंदोलन की शुरुआत मात्र थी।

---

[25] आदिवासी विद्रोह, विद्रोह परंपरा और साहित्यिक अभिव्यक्ति की समस्याएँ - पृ. सं. 112

बिरसा मुंडा की गिरफ़्तारी के उपरांत आसपास के भयभीत जमींदारों ने कुछ समय के लिए साँस ली अनेक जमींदारों की सुरक्षा हेतु पुलिस का बंदोबस्त, किया गया। जब मुंडा आदिवासी अकाल के चक्कर में पीस रहे थे उस समय ब्रिटेन की महारानी की हीरक उत्सव का उस्तव मनाया जा रहा था। यह इंग्लैंड के साथ-साथ भारत में भी मनाया गया। इस समय देश भर के अनेक गिरफ्तार किये हुए कैदियों को रिहा किया गया। 30 नवंबर, 1897 को उनके साथियों के साथ बिरसा मुंडा को भी रिहा किया गया।

फरवरी, 1898 में बिरसा मुंडा ने डोंबारी पहाड़ी में जागरी मुंडा के घर में सभा बुलाई। इस प्रकार ऐसी राजनीतिक सभाओं का सिलसिला आरंभ हुआ। मार्च, 1898 में सिंबुआ नामक पहाड़ियों पर इसी प्रकार की सभा हुई। बिरसा मुंडा ने इस सभा में कहा कि "इसी तरह हमें राजाओं व सरकारी अधिकारियों को काटना है। दो साल तक इस तरह बिरसा ने कई गुप्त बैठकें कीं। उसने मुंडा जनमानस को टटोला। किसी पर अपनी बातें आरोपित नहीं कीं। अकसर उसने लोगों की इच्छा को स्वीकार किया। रणजीत गुहा के अनुसार यह एक विद्रोही का लोगों को लामबंद करने का उचित तरीका था।"[26]

यह सभा संथाल विद्रोह की भगनाडीह वाली सभा की भांति विद्रोह आगाज की सभा प्रमाणित हुई। बिरसा ने अपने समर्थकों को आदेश दिया की वे दुश्मनों के घर जलाये और तीर चलाये। 23 दिसंबर, भगनाडीह की सभा के उपरांत शत्रु को मारने, काटने और जला देने वाली युध्द की तैयारियाँ आरंभ हुई। विद्रोह के उद्घाटन के दिन भी निश्चित किया 25 दिसंबर यह बड़ा दिन था। 24 दिसंबर 1899 आग जलते तीरों की बारिसें जगमगा उठी। एक साथ कई जगह विद्रोह की आग फ़ैल गयी सरवदा, बुर्जू, मुहू के मिशन जल उठे। राँची जिले के खूंटी, कर्रा, तोरपा, तमाड़ एवं बासिया थाना क्षेत्र भी जल गए। कई पादारी घायल हुए सोनपुर परगना में अंग्रेज व्यापारियों की मौत हो गयी। आंदोलन का मुख्य केंद्र डोंबारी, सईल रकाब पहाड़, राँची का खूंटी, कस्बा बना दुश्मनों पर आग बरसाने का यह सिलसिला चलता रहा।

इस तरह कई चर्च जलाये गये। मुंडाओं के असली दुश्मन जमीनों के लुटेरे जमींदार एवं महाजन थे। पर उनको सुरक्षा अंग्रेज सरकर करती थी। अंग्रेजों ने मुंडा आंदोलन के कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार करना शुरू किया लगभग कई मुंडा लोगों को मुंडा गाँव से कैद किया गया। जिसमें गया मुंडा और उसके परिवार तथा पुत्र सानरे को फाँसी दी गयी। गया मुंडा की पत्नी को दो साल की, पुत्रियों एवं पुत्र वधूओं को तीन-तीन महीने की सजा दी गयी।

मुंडाओं के गाँव-गाँव में कहर मच गया। लोग भयभीत होकर मिशनरियो के शरण में जाने के लिए विवश हो गए। उसके बावजूद बिरसा मुंडा को पुलिस, सेना नहीं कैद कर पाई। पर बिरसा के ही साथियों ने

[26]आदिवासी विद्रोह, विद्रोह परंपरा और साहित्यिक अभिव्यक्ति की समस्याएँ - पृ. सं. 116

केवल पांच सौ रुपया के नगद के लिए पकड़वा दिया । वह थे मानमारू एवं जरिकेला गाँव के सात व्यक्तियों ने । 3 फरवरी, 1900 की रात को बिरसा को पकड़ा दिया और बंदगाँवओं में रुके हुए डिप्टी कमिश्नर के हवाले कर दिया । उन धोखे बाजों को 500 रूपए इनाम दिया गया । 8 जून ,1900 को हजारीबाग जेल में उनके भोजन में विष मिला दिया और अगले दिन सुबह लगभग नौ बजे के आसपास बिरसा मुंडा की मृत्यु हो गयी ।

बिरसा मुंडा के मृत्यु का पता आज तक नहीं चला उन्हें जहर सरदारों ने दिया या जेल के प्रशासनों ने, खैर बिरसा मुंडा अमर हो गए। उनके द्वारा चलाया गया 'उलगुलान' आंदोलन से आज भी प्रेरणा मिलती है। केदार प्रसाद मीणा 'आदिवासी विद्रोह' में लिखते हैं कि " बिरसा मुंडा का 'उलगुलान' दबा दिया गया । पर इसने अंग्रेज सरकार को यह सोचने पर मजबूर कर दिया की मुंडाओं को उनकी जमीन सबसे अधिक प्रिय है। उसकी रक्षा के लिए वे बार-बार आंदोलन करते हैं। इसलिए जमीन की सुरक्षा के लिए कानून बनाए जाने चाहिए। इसलिए विद्रोह के उपरांत भूमि बंदोबस्त कार्यक्रम चलाये गए ताकि मुंडाओं को जमींदारों की लूट व शोषण से बचाया जा सके।"

1.3.2 कोमरम् भीम का जोड़ेघाट-आंदोलन (1935-40)

आदिलाबाद क्षेत्र के घने जंगल में कोमरम् भीम (असिफाबाद) जिला, केरामेरी मंडल में गोंड, कोलाम आदि जनजातियाँ इस क्षेत्र में निवास करती है। केरामेरी के इर्द-गिर्द कई जनजातियाँ फैली हुयी हैं उनमें से एक गोंड, कोलाम आदि के गुडेम (गाँव) बसे हुए हैं उनमें से एक गाँव जोड़ेघाट है जो निज़ाम सरकार के विरुध्द लड़ने का केंद्र स्थान रहा। जोड़ेघाट विद्रोह का नेतृत्व गोंड वीर कोमरम् भीम ने किया था।

गोंड समुदाय की आज जो दयनीय स्थिति है वह पहले नहीं थी। वह पहले बहुत समृध्द और सुखी जीवन व्यतीत करते थे । आज के समय मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, तेलंगाना और आंध्र प्रदेश, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ आदि जो राज्य है पहले उनमें इन गोंड समाज उनको जीविकोपार्जन हेतु साधन सामग्री आसानी से मिल जाती थी। लेकिन समयानुसार उनकी परिस्थितियाँ बदलती गयी भारत में अनेक विदेशी लोग आये राज्य करने लगे और आदिवासियों के जीवन में हस्तक्षेप करने लगे इसी कारण उनकी स्थिति दिनोंदिन दयनीय होती गयी।

"किसी समय गोंड समाज के बीस राजाओं ने इस क्षेत्र पर राज्य किया इसका उल्लेख लुसी स्मिथ ने 'गजिटियर ऑफ इंडिया' नामक पुस्तक में इस संदर्भ में लिखा है कि उन्होंने सन 870 ई. से लेकर 1750 ई. तक गोंड राजाओं ने राज्य किया। उन राजाओं की सूची और उनका कार्यकाल निम्न प्रकार है।

सारिणी : 1 सी. बी. लुसी स्मिथ के अनुसार चंदा साम्राज्य के राजाओं का शासन काल

राजा का नाम	ईसवी सन्
1. कोमरम् भीम बलाल सिंह	870
2. खुर्जा बलाल सिंह	895
3. हीर सिंह	935
4. अंदिया बलाल सिंह	970
5. तुल्वार सिंह	995
6. केशुर सिंह	1027
7. दिनकुर सिंह	1072
8. राम सिंह	1142
9. सुरजा बुलाल सिंह (शेर शाह बलाल शाह)	1207
10 खंडकिया बलाल शाह	1242
11 हीर शाह	1282
12 भूमा और लोकबा (दोनों भाई)	1342
13 कुंडिया शाह के साथ कुर्न शाह	1402
14 बाबजी बलाल शाह	1442
15 धून्दिया राम शाह	1522
16 कृष्णा शाह	1597
17 बीर शाह	1647
18 राम शाह	1672
19 नीलकंठ शाह	1735-51

स्रोत : स्मिथ, लैंड रेवेन्यू सेटिलमेंट ऑफ दी चंदा जिला।"[27]

भारत में अनेक बाहरी और स्वदेशी शासक आये उनमें मुग़ल, मराठा, अंग्रेज, और निज़ाम प्रमुख थे। गोंड के समृध्द राज्य को प्रथमतः मुग़ल और मराठा ने आक्रमण करके उनको लूट लिया इस लूट में गोंडों की हार हो गयी। इसके बाद अंग्रेजों ने बची हुयी शक्ति को नष्ट किया उन्होंने खजाना लूटा कई लोगों को गुलाम बनाया। अब ये समाप्ति की कगार पर थे इसी समय अंग्रेजों ने हमला करके उनकी अस्मिता को

[27] The roots of the periphery, bhangya bhukya – p. no 28

ही धोखा दे दिया। इस प्रकार गोंड समाज समृध्द आवश्यकता से दयनीय अवस्था में पहुँच गया। आज भी वह दयनीय अवस्था में जीने के लिए विवश है।

अंतिम गोंड राजा नीलकंठ शाह के समय उनकी राजधानी चंद्रपुर थी उसमें एक भाग था आदिलाबाद जिला। आदिलाबाद जंगल-बहुल इलाका है इसलिए इस क्षेत्र में आरंभ से ही अदिवासियों की संख्या अधिक है। जिनमें गोंड, कोल्लाम, कोय्या, नायक पोड, बिलुल्लू, चेंचू, और लम्बाड़ी आदि प्रमुख है। इसमें से गोंडो की संख्या सर्वाधिक है।

अंग्रेजों के आने के पहले ये सुख और शांति से अपना जीवन व्यतीत करते थे लेकिन अंग्रेजों के आने के बाद उन्होंने इन पर अनेक पाबंदियां लगायी। इनके जीवन पर अपना नियंत्रण लागू किया उनको जंगलो में प्रवेश करने से मनाई की। उन पर अनेक प्रकार से जुल्म किये जाने लगे। इस तरह का अन्याय को न सहते हुए इनके विरोध में सर्व प्रथम उट्नूर के गोंड राजा रामजी गोंड (1836-60) ने विद्रोह किया। अंग्रेजों ने इनके इस विद्रोह को कुचलने के लिए अनेक प्रयास किये।

लेकिन रामजी गोंड निरंतर आंदोलन करते रहे अपने समाज, बांधवों को भी प्रेरित करते रहे। लेकिन इस विद्रोह को दबाने के लिए अंग्रेजों ने कई कूटनीति अपनाई और अंत में उन्हें सफलता मिली। 'रामजी गोंड और अंग्रेजों के बीच कई दिनों तक भीषण युध्द चलता रहा।' रामजी गोंड और उनके साथियों को इस युध्द में पकड़ लिया गया और उन्हें उट्नूर से निर्मल जिला ले जाया गया। और उन्हें कई यातनाएँ दीं और उन्हें और उनके अनेक साथियों (1000) को बरगद के पेड़ पर लटका कर गोलियों से भून डाला। "इस प्रकार मार्सिकोल्ला रामजी गोंड रोहिला विद्रोह (1836-60) अंग्रेजों के खिलाफ लड़ते रहे।"[28] अपने सामाजिक हित के लिए किया गया गोंड जाति का यह प्रथम विद्रोह है।

अंग्रेजों के खिलाफ 1860 में रामजी गोंड ने जो विद्रोह किया था उनका नाम 'रोहिला विद्रोह' के नाम से जाना जाता है लेकिन यह प्रथम प्रयास था उसी का प्रभाव आगे चलकर कोमरम् भीम पर पड़ा। कोमरम् भीम ने निज़ाम सरकार से अपने समग्र समाज, बंधुओं के लिए स्वतंत्र राज्य की मांग की थी। इस प्रकार कोमरम् भीम ने रामजी गोंड से प्रेरणा लेकर गोंड समाज के लिए आंदोलन शुरू किया।

"असिफाबाद (जन गाँव) क्षेत्र हैदराबाद राज्य का हिस्सा था। इस क्षेत्र में असफ़जाही की वंशज मुहम्मद अलीखान का सातवां पुत्र 'निज़ाम उस्मान अलीखान (1911-1948)' का राज्य था। इनकी इस राज सत्ता का विरोध आदिवासियों के नायक कोमरम् भीम ने किया।

---

[28] आदियोधुलु.. अजरामरुलु- पृ. सं. 44

कोमरम् भीम का जन्म 27 सितंबर, 1900 में चिन्नु और सोमबाई के परिवार में आदिलाबाद जिला केरामेरी मंडल, संकेपल्ली नामक गाँव में हुआ। कोमरम् भीम के पिता को जंगल के अधिकारियों ने मार डाला था। इस घटना के बाद वे सर्दापुर गाँव में निवास करने लगे। वहीं पर अपनी आजीविका के लिए खेती पर निर्भर रहते थे इनकी खेती करने की पध्दति 'झूम' थी। लेकिन यहाँ पर भी उनको सुख और शांति से नहीं जीने दिये जाता था। निज़ाम सरकार के सैनिक तथा स्थानीय जमींदार उनको परेशान करते थे तथा उनके द्वारा बनाये हुए खेती पर अपना हक़ जताते थे।

ऐसे ही, एक समय निज़ाम का सहायक पट्टेदार आकर उस जमीन पर अपना हक़ जताने लगता है। वह पट्टेदार था सिध्दिक। उसने सोचा की इन भोले-भाले आदिवासियों को कागज़ दिखाकर जमीनों पर अपने हक़ का दावा किया। इससे कोमरम् भीम बहुत क्रोधित होकर सिध्दिक को जान से मार देता है।

इस घटना के उपरांत कोमरम् भीम लगभग पांच साल तक भ्रमण करते हैं। वह पहले बल्लारशाह से होते हुए अपने दोस्त कोंडल के साथ रेल से चंदा पहुँचता है। वह उन्हें विटोबा नामक व्यक्ति के पास रहता है। विटोबा का एक प्रिंटिंग प्रेस था जो गुप्त रूप से पत्रिका निकालता था जो सरकार के खिलाफ थी। कोमरम् भीम उनके पास रहकर हिंदी, उर्दू, मराठी, बोलना और पढ़ना, सीखता है। और उन्हीं के माध्यम से उन्हें कई वीर योध्दाओं के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

वहाँ से कोमरम् भीम 'चायपत्ता(असम) देश' जाता है वहाँ पर कोमरम् भीम चाय के बागानों में काम करते हैं। वहाँ उनकी मन्नेम दोरा नामक व्यक्ति से मुलाकात होती है। उनके द्वारा अल्लूरी सीतारामराजु के नेतृत्व में किया गया आंदोलन की जानकारी मिलती है। जिससे कोमरम् भीम प्रेरित होकर अपने समाज को जागृत करने के लिए वहाँ से भाग निकलता है।

उसी प्रकार कोमरम् भीम अपने दादा मोतीराम, भाभी कुकूबाई और अनेक क्रांतिकारी भगतसिंह, अल्लूरी सीतारामराजु, रामजी गोंड और अनेक महान योध्दाओं के द्वारा चलाया गया आंदोलन से परिचित होता है। फिर वह समग्र देश का भ्रमण करके अपने गाँव वापस लौटते हैं।

कोमरम् भीम के वापस आने के बाद 'देवडम' के पटेल लच्चु नामक व्यक्ति के पास काम करता है। वह कोमरम् भीम की ईमानदारी को देखकर उनके गाँव की एक लड़की से शादी करवाता है। वह अंबटी राव की लड़की सोमबाई थी।

कोमरम् भीम के पलायन के बाद निज़ाम सरकार उनके समाज, बंधुओं पर अनेक जुल्म करते हैं यह जुल्म का सिलसिला निरंतर जारी रहा। इसलिए इन जुल्मों के विरोध में कोमरम् भीम ने आंदोलन करने का

निर्णय कर लिया। "इस काम के लिए उन्होंने अपने साथियों से बातचीत की और उस बातचीत से एक निष्कर्ष निकाला कि आंदोलन करने से पहले निजाम सरकार से मिलकर अपने हकों की माँग की जाय।"

"इसलिए वह निज़ाम सरकार के नाम पत्र लिखकर और उनके साथियों के साथ कोमरम् भीम, मडावी महादु और रघु निज़ाम सरकार से मिलने हैदराबाद जाते हैं।" लेकिन निज़ाम सरकार से उनकी मुलाकात नहीं होती वह हताश होकर वापस लौट जाते हैं। और अपना आंदोलन निरंतर जारी रखने के लिए निर्णय ले लेते हैं।

वह बारह गाँव के अपने समाज बांधवों को लड़ने के लिए तैयार करते हैं। उनकी सभा का केंद्र जोड़ेघाट था। जब उनकी तैयारियों की भनक निज़ाम सरकार को लग जाती है तब वह उन्हें समझाने के लिए असिफाबाद के कलेक्टर नाजर साहब को भेज देते हैं। कलेक्टर उनको उनकी माँगों के अनुसार बारह गाँवों को जमीन देने के लिए राजी हो जाता है। उन बारह गाँवों का नाम इस प्रकार है कि "जोड़ेघाट, पाट्नापुर, बाबेझरी, चलबरिडी, गोगिन वाडा, बोईन वाडा, भीमन गोंदि, कल्लेगाँव, मुरिकी लोंका, अंकुसापुर, नर्सापुर और देम्दीगुडा।

लेकिन कोमरम् भीम समग्र स्वराज्य की मांग करते हैं। उनमें कोई समझैता नहीं होता है और कोमरम् भीम अपने आंदोलन के निर्णय पर अटल रहते हैं। कोमरम् भीम पर आक्रमण करने के लिए निज़ाम सरकार तैयारी में लग जाती है निज़ाम सरकार कोमरम् भीम के आंदोलन को दबाने के लिए वरंगल के सूबेदार अजर हसन, तहसीलदार आब्दुल सत्तार डी. एस. पी. हिदायत अली और सैनिकों को भेज देती है।

कोमरम् भीम ने बाबेझरी से जोड़ेघाट को अपने आंदोलन का केंद्र बनाया था क्योंकि जोड़ेघाट उस बारह गांवों में सबसे ज्यादा ऊँचा टीला था। उस पर चढ़ना इतना आसान काम नहीं था। इसलिए सुरक्षा की दृष्टि से कोमरम् भीम ने आंदोलन का स्थान जोड़ेघाट को रखा। लेकिन उन्हीं के गुडेम का एक व्यक्ति कुर्दु के सहारे निज़ाम सेना ऊपर चढ़कर कोमरम् भीम और उनकी साथियों पर आक्रमण करती है। और उनमें भीषण मुठभेड़ होती है।

इस प्रकार कोमरम् भीम और उनके साथियों को गोलियों से मार देते हैं। और वे वहीं वीर गति को प्राप्त हो जाते हैं। उन साथियों में सरकार के आंकडे के साथ 15 लोगो के नाम दिया गया है। वह निम्न प्रकार है- "कोमरम् भीम जोड़ेघाट, कोमरम् भीम देवुडपल्ली, एड्ला कोंडल, कोमरम् मानकु, सिडाम भीम, सिडाम राजु, आतरम् भीमु, कोवा अर्जु, मडावी मोहापत मोकासी, चाहकटि बादी, आतरम् भीमु, कोमरम् रघु, नैतम् गंगु, पुरका मानकु और आतरम् सुंगु।"

कोमरम् भीम के शहीद दिवस पर अश्वयुज शुक्ल पूर्णिमा को उनकी श्रद्धांजलि हर वर्ष सरकार और गोंड समुदाय के लोग देते हैं। इस तरह कोमरम् भीम आजीवन अपने हकों के लिए लड़ते रहे उनका आंदोलन अपने समाज की उन्नति के लिए और अस्मिता के लिए था। वह अपने समाज का हित चाहते थे। वह आजीवन नि:स्वार्थ भाव से समाज का कार्य करते रहे। अगर वह चाहते तो जमींदार भी बन सकते थे लेकिन उन्होंने संपत्ति को त्यागकर अपने समाज हित को प्रथम प्रधानता दी।

"जब तेलंगाना और आंध्र प्रदेश दो राज्य संयुक्त थे तब कोमरम् भीम के महत्त्व को दुर्लक्षित किया जाता था। लेकिन जैसे ही तेलंगाना राज्य का विभाजन हुआ तब तेलंगाना सरकार ने कोमरम् भीम के द्वारा चलाया गया आंदोलन के स्थान को अर्थात् जोड़ेघाट को पर्यटन स्थल का दर्जा दे दिया गया। वहाँ उनके वस्तुओं का संग्रहालय बनाया और उनका स्मारक भी उभारा। और कोमरम् भीम के नाम से एक जिले का नाम भी किया गया है। वह नाम है- **कोमरम् भीम असिफाबाद जिला**।"

1.3.3 बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के आंदोलन का महत्त्व

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम आदिवासी समाज के महानायक हैं। उनकी आज भी प्रासंगिकता और महत्ता बनी हुयी है क्योंकि इन दोनों वीर नायकों का कार्य ही इस प्रकार का है कि उनको भुलाया नहीं जा सकता "उन्होंने अपने समाज को पहचान दी, उन्हें अपने अस्मिता का एहसास दिलाया। जुल्मों का विरोध करने की प्रेरणा उनको इन दोनों से प्राप्त हुई है।"

महावीर बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम ने भारत के इतिहास में जुल्म का विरोध कर तथा न्याय एवं क्षमता को स्वीकार किया है। यही इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका मानी जा सकती है। इन दोनों ने अपने हक़ के लिए लड़ाई लड़ी, अपने समाज को संगठित किया और अंग्रेज और निज़ाम के खिलाफ युध्द-संग्राम जारी रखा।

'बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम की विशेषता यह है कि यह कुशल संगठक थे। उन्होंने अपने-अपने समाज का विश्वास, अर्जित किया था।' उनके समाज को भी इनके ऊपर विश्वास था क्योंकि वह भली भांति जानते थे कि ये नायक समाज हित के लिए कुछ भी कर सकते हैं इसलिए उनका समाज, उनके साथ "लड़ मरने को तैयार हुआ था।" महानायक बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम को अपने समाज का बहुत आधार मिला। इन दोनों ने जितने भी आंदोलन किये हैं उनकी सफलता में इन दोनों की कुशल नीति के साथ-साथ उनके समाज बंधुओं की आंदोलन में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

'उन्होंने इसलिए प्रथमतः अपने समाज को जागृत कर उनको गुलामी का एहसास दिलाकर उनके मन में विद्रोह की चिंगारी सुलगाई।' इसी कारण दोनों के पीछे मनुष्य बल की कमी नहीं थी। यह वीर नायक उन जन समूहों का सफलता पूर्वक नेतृत्त्व करते रहे। और अंत तक "अपने समाजहित और उद्देश्यों के लिए लड़ते रहे। इन दोनों का उद्देश्य, एक ही था पराधीनता से मुक्ति।"

वीर नायक बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के समय में भारत पर अंग्रेज और निज़ाम का राज था। इसके बावजूद तथाकथित सवर्ण एवं स्थानीय जमींदार ने उन पर जुल्म करके उनका हर एक रूप से शोषण करते थे क्योंकि "आदिवासी समुदाय में अज्ञानता के कारण चेतना, अस्मिता का एहसास नहीं था इसलिए वह भी उन पर होने वाली यातनाओं को, जुल्म को, चुपचाप सहते रहते थे। लेकिन बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम ने अपने समाज को उनके अस्मिता का एहसास दिलाया और उनको संगठित कर इस पराधीनता से मुक्त होने का मार्ग दिखाया।"

इन दोनों वीर नायकों की मृत्यु के उपरांत भी अनेक विचार तथा उनका संग्राम आदिवासी समाज में निरंतर जारी है। उनके संग्राम का मुख्य उद्देश्य 'अंग्रेजों की सत्ता से मुक्ति था' क्योंकि यह अंग्रेज शासक उन्हें अनेक यातनाएँ देते थे। आदिवासी समाज अंग्रेज शासन आने के पहले मुक्त रूप से अपना जीवन यापन करता था वह पूर्णतः जंगल पर निर्भर था।

वह बिना किसी के रोकटोक के अपना जीवन यापन का कार्य करते थे 'जल-जंगल-जमीन' उनके जीने का सहारा थी उसको उन्हीं का एकमात्र अधिकार था लेकिन जैसे ही अंग्रेजों का भारत में आगमन होता है तब वह आदिवासियों के निजी जीवन में हस्तक्षेप करते हैं। उन पर अनेक बंधन लादे जाते हैं उनके अधिकार को छीना जाता है यहाँ तक की उनको जंगल में प्रवेश करने के लिए भी उनकी अनुमति मांगनी पड़ती है। वह निसहाय एवं बेसहारा हो गये।

वह जंगल में बगैर अनुमति के प्रवेश कर गए तो उनको सजा मिल जाती थी। "वह जैसे अपने ही घर में बेसहारा हो गए थे।" अंग्रेजों ने चालाकी एवं दमन नीति के बल पर समग्र भारत को अपने कब्जे में कर लिए। लेकिन आगे चलकर "मध्य भारत में बिरसा मुंडा ने अंग्रेजों के खिलाफ और दक्षिण भारत में कोमरम् भीम ने निज़ाम सरकार के खिलाफ आंदोलन आरंभ किया।"

इनका इस आंदोलन को आरंभ करने का मुख्य उद्देश्य **"इन दमनकरी शासनों से मुक्ति पाना था वह अपना खुद का स्वराज स्थापित करना चाहते थे। ऐसा स्वराज जिसमें सब समान हों, सब को समान हक़ मिले, कोई किसी से प्रताड़ित न हो, सब एक-दूसरे से प्रति आदर रखे, कोई अपनी शक्ति का दुरुपयोग न करता हो इस प्रकार उनके स्वराज की संकल्पना थी।"**

अंग्रेजों ने समग्र भारत को अपने अधीन बना लिया उन्होंने विशेष रूप से आदिवासी जनजातियों पर ध्यान दिया उनके लिए अधिक सख्त कानून लाये उनको अनेक बन्धनों में जकड़ा गया। उनको एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने के लिए अनुमति की जरुरत पड़ती थी क्योंकि अंग्रेजों को इन जनजातियों से बहुत भय था। अंग्रेज इनके विद्रोह से डरते थे इसलिए उनको अनेक बन्धनों में जकड़ दिया था। इन्हीं बन्धनों से मुक्ति के लिए महानायक बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम आजीवन लड़ते रहे।

इस प्रकार इन दोनों महानायक जन सामान्य की चेतना के रूप में नेतृत्व करने लगे और उन्होंने बलशाली अंग्रेज और निज़ाम सत्ता को चुनौती दी। और उसकी नींव को हिला डाला। बिरसा मुंडा का उलगुलान आंदोलन का समय 1895 से 1900 ई. तक की अवधि रहा जो उन्होंने अपनों के द्वारा अपने समाज में नव चेतना का संचार किया। उसी तरह आदिलाबाद के गोंड वीर कोमरम् भीम ने भी 1935 से 1940 तक आंदोलन चलाया। उन्होंने अपने आंदोलन के प्रति अपने समाज को एहसास दिलाया उनके आंदोलन केवल **"आदिवासी हितों के लिए नहीं था अपितु समग्र मानव जाति के कल्याण के लिए था।"** और उनकी लड़ाई अन्याय, अत्याचार, शोषण, असत्य और आदिवासियों के साथ किये जानेवाले अमानवीय व्यवहारों के विरुध्द थी।

लेकिन दुर्भाग्य यह है कि भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास में इन जनजातियों के महानायकों को इतिहास में कहीं भी स्थान नहीं मिला। 1857 के पहले भी आदिवासी अंग्रेजों से लड़ते रहे, इसके कई कारण हैं। चाहे प्रत्यक्ष रूप से हो, या अप्रत्यक्ष रूप से जनजातियों के आंदोलन का योगदान भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। आज भी उनके विचार प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण है इन दोनों महानायकों का भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में जो योगदान है वह अविस्मरणीय है।

*****

द्वितीय अध्याय

'बिरसा मुंडा' और 'कोमरम् भीम' के जीवन पर आधारित साहित्य का परिचयात्मक विवेचन

द्वितीय अध्याय

'बिरसा मुंडा' और 'कोमरम् भीम' के जीवन पर आधारित साहित्य का परिचयात्मक विवेचन

2.1 'बिरसा मुंडा' का परिवेश एवं आंदोलन

किसी भी महान रचनाकार के परिवेश के बारे में जान लेना बहुत महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि वह लेखक या रचनाकार जिस परिवेश अथवा माहौल में पला-बड़ा होता है उसी की अभिव्यक्ति वह अपनी विचारधारा या रचनाओं में करता है। उसकी रचनाओं की कथावस्तु उनके परिवेश में घटित वास्तविक घटनाएँ होती हैं। हिंदी में अधिकांश लेखकों ने अपने परिवेश में घटित घटनाओं को आधार बनाकर अमर साहित्यिक-कृतियों का सृजन किया है। जैसे कि- प्रेमचंद द्वारा लिखित **'गोदान'** भी केवल कोरी कल्पना नहीं है अपितु वह उस समय का यथार्थ है वह उस समय की सच्चाई है जिसे प्रेमचंद ने पाठकों के सामने प्रस्तुत किया।

उसी प्रकार फणीश्वरनाथ रेणु तथा नागार्जुन भी प्रेमचंद की श्रेणी में आते हैं क्योंकि उनके उपन्यास एवं कहानियाँ इस बात को साबित करते हैं कि खासकर नागार्जुन के उपन्यास तो आँखों देखा हाल लगते हैं। यहाँ तीनों लेखक ग्रामीण-परिवेश में पले-बड़े हैं। इन्होंने गाँवों की समस्या को स्वयं भोगा है। इसलिए उनकी रचनाओं का मूलाधार ग्रामीण-परिवेश एवं उसकी समस्या है। उसी प्रकार हिंदी के कुछ ऐसे भी लेखक हैं जो नगर के परिवेश में पले-बड़े हैं उन लेखको में महत्त्वपूर्ण है निर्मल वर्मा, अज्ञेय आदि। इन लेखकों के रचनाओं का मूलाधार नगर की समस्याएँ हैं कहने का तात्पर्य यह है कि किसी भी रचनाकार की विचारधारा को उसका परिवेश निर्मित करता है। जो जिस रचना परिवेश में पलता-बढ़ता उसी परिवेश को वह अपने विचारों एवं कृतियों के माध्यम से प्रस्तुत करता है। यह निर्विवाद कह सकते हैं।

इसलिए बिरसा मुंडा के परिवेश को जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है। उनके परिवेश को जानने का प्रयोजन यह है कि वह जिस परिवेश में पले-बड़े हैं वह परिवेश किस प्रकार था और उसका कितना असर बिरसा मुंडा के जीवन पर पड़ा था।

2.1.1 परिवेश : बिरसा मुंडा के जन्म-तिथि के संदर्भ के विद्वानों में एक मत नहीं है। इनके जन्म के बारे में अनेक विद्वान् अपनी अलग-अलग राय देते हैं। बिरसा मुंडा की शहादत के बाद उनके जीवन से जुड़े हुए घटनाओं एवं इतिहास लिखने के लिए जब कुछ भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वान या इतिहासकार आगे आये उस समय उनके जन्म स्थिति का प्रश्न उपस्थित हुआ लेकिन किसी के पास बिरसा मुंडा की निश्चित एवं

विश्वनीय जन्म-तिथि का संदर्भ नहीं था। उनकी माता केवल इतना ही बता पाई थी की बिरसा का जन्म भादो के महीने (बृहस्पतिवार) गुरुवार को हुआ था पर इसी कारण उनका नाम बिरसा रखा गया था। यह मुंडा आदिवासियों में परंपरा ही प्रचलित थी की जन्म-दिवस के आधार पर बच्चों का नामकरण किया जाय।

जन्म-तिथि के संदर्भ में अब हम सोचें तो अंग्रेजी कैलेंडर के अनुसार बिरसा की अनेक जन्म तिथियाँ हमारे सामने अती हैं। किन्तु अनेक विद्वानों ने सर्व सम्मत्ति से 15 नवंबर, 1875 ई. इस तिथि को ही उनकी जन्म-तिथि के रूप में निश्चित कर स्वीकार कर लिया है। लेकिन कुछ विद्वान् उनके जन्म तिथि 22 जुलाई, 1872 मानते हैं तो कुछ विद्वान् 11 अगस्त, 1872 मानते हैं। बहुत परंपरावादी एवं उपेक्षित समाज में जन्म होने के कारण बिरसा मुंडा के जन्म-तिथि के बारे में कोई निश्चित राय नहीं हैं।

बिरसा मुंडा के माता-पिता का नाम क्रमशः सुगना मुंडा तथा करमी मुंडा था। करमी मुंडा ने पांच संतानों को जन्म दिया था उनमें से तीन लड़के थे और दो लडकियां। लडको में कोम्ता मुंडा, बिरसा मुंडा और कानू मुंडा तथा लड़कियों में दसकीर, और चंपा। जिस प्रकार बिरसा मुंडा के जन्म तिथि के संदर्भ में इतिहासकारों में संदेह एवं विवाद है उसी प्रकार उनके जन्म-स्थान के बारे में भी विवाद है विद्वानों एवं इतिहासकारों में बिरसा के जन्म-स्थान को खोजने के लिए उन से जुड़े अनेक क्षेत्रों का भ्रमण किया है इसी संदर्भ में वे 'उलीहातू' स्थान पर गए। उस जगह पर बिरसा के पिता तथा उनके बड़े नाम के पत्थर लगे हैं। मुंडा आदिवासियों में यह परंपरा है कि मरने के उपरांत मृतक के नाम के पत्थर पैतृक जगह पर लगाये जाते हैं। इस प्रथा के आधार पर यह प्रमाणित हो जाता है कि बिरसा मुंडा का जन्म स्थान उलीहातू ही है। बाद में इसका नाम खुटखट्टी पड़ गया। कुछ विद्वान् बिरसा का जन्म-स्थान चलकद गाँव को मानते हैं लेकिन उनकी इस बात में कोई तथ्य नहीं तो कुछ विद्वान् बाम्बा को उनका जन्म-स्थान मानते हैं ।

बिरसा मुंडा के जन्म-स्थान एवं देश की गहराई से खोजबीन करते हुए कुमार सुरेश सिंह ने अपनी पुस्तक 'बिरसा मुंडा और उनका आन्दोलन' में लिखा है "बिरसा के पूर्वज पूर्ति वंश के थे। वे सदियों पहले अपनी लिए एक वासस्थान की खोज में डोमदागाड़ा नदी के समीप पहुँचे। संभवतः यही नदी आधुनिक राँची के उपनगर चुटिया के निकट बहती है। उन लोगों ने नदी की धार में बहता हुआ एक लकड़ी का कुंदा देखा। वे उसे पकड़ने के लिए नदी में कूद गए, उसे पकड़ा और उसके साथ तैरते हुए नदी के उस पार पहुँचे। वहाँ जब उन्होंने उसे ठीक से देखा तो पाया कि उसके भीतर एक छेद में एक चूहा (चुटु) था। इसे उन्होंने एक शुभ लक्षण समझा और इसे ही अपनी सुरक्षा और सौभाग्य का कारण माना। फिर वे उस जगह ही रुके और वहीं बस गए। वह स्थान चुटिया कहलाया और इसी के अनुसार बिरसा के पूर्वज पूर्ति वंश की जिस शाखा के थे, उसका नाम चुटिया पूर्ति पड़ा। उन लोगों को अपने इस नए स्वदेश तक लाने में दो भाइयों का मुख्य

रूप से हाथ था, चुटू हरम और नागू। इस उपख्यान के इर्द-गिर्द एक उपवंश फला-फूला और बड़ा हुआ, जिसके साथ-ही-साथ किंवदंतियाँ और इतिहास भी बनता गया। बाद में चुटू शब्द बदलकर चुटिया हो गया। फिर और समय बीतने पर चुटिया छोटा में और नागू नाग में बदल गया। इस तरह मुंडाओं के अनुसार छोटा नागपुर का नाम इन दोनों भाइयों पर पड़ा।"[1]

2.1.2 बिरसा मुंडा का बचपन : आदिवासी समाज बहुत ही गरीबी एवं यातनाओं में जीने वाला समाज है। बिरसा का बचपन भी इसी गरीबी एवं परेशानी में गुजरा। बिरसा मुंडा की माँ का बिरसा के प्रति अधिक लगाव था। उनकी माँ बिरसा को पढ़ा-लिखाकर एक अच्छा व्यक्ति बनाना चाहती थी। आदिवासियों की नारकीय यातनाओं एवं अभाव से वह अपनी अगली पीढ़ी को बचाना चाहती थी। यही कारण है कि उसने जी-तोड़ मेहनत कर बेटा बिरसा की पढ़ाई-लिखाई के लिए कुछ पैसा बचाकर रखने की कोशिश की। लेकिन गरीबी ने उसे अपने ही सृजन से सफल नहीं होने दिया। उस समय हर गाँव पर सवर्ण और ईसाई मिशनरियों की दृष्टि गिद्ध की भांति थी। तथाकथित सवर्ण कहलाने वाले नहीं चाहते थे की यहाँ पिछड़े आदिवासी पढ़ना-लिखना जाने और सभ्य कहलाने वाले समाज का हिस्सा बनकर सवर्णों की बराबरी करे। उनको यह भय था कि यदि आदिवासी समाज के लोग पढ़-लिख गए तो सवर्णों की चाकरी कौन करेगा ? सवर्णों को आदिवासियों की अज्ञानता का लाभ उठाने की आदत बनी हुयी थी। वह उनसे बेगारी करवाते थे तथा उनके साथ गुलामों की भांति व्यवहार करते थे। इसी आदत ने तथाकथित सवर्णों को क्रूर एवं आलसी बना दिया था। वे चाहते थे कि उनके हिस्से के काम आदिवासी स्त्री-पुरुष करें ।

सवर्ण अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए किसी भी स्तर तक गिरने के लिए तैयार थे। इन्हीं दिनों देश पर अंग्रेजों की हुकूमत थी अंग्रेज भारतीय लोगों को गुलाम बनाकर उनकी संपत्ति लूट रहे थे तो दूसरी ओर और सवर्ण आदिवासियों को गुलाम बनाकर उनकी हक़ की रोजी-रोटी तथा सुख-संपंदा को लूट रहे थे।

इसी समय ईसाई मिशनरियों का भारत में आगमन हुआ और उन्होंने आदिवासी समाज के दु:खों को पहचान कर उनके सामने धर्मपरिवर्तन का प्रस्ताव रखा और उनको बहुत सारी सुविधाएँ एवं सुरक्षा की गारंटी देने का वचन दिया। यही कारण है कि आदिवासी समुदाय ने ईसाई मिशनरियों के बातो में आकर ईसाई धर्म अपना लिया। इसी समय बिरसा मुंडा के माता-पिता ने भी ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि बिरसा मुंडा की पढ़ाई पर प्रभाव पड़ा। क्योंकि यह सवर्णों के स्कूल में पढ़ते थे लेकिन ईसाई धर्म को स्वीकार करने के कारण उनको स्कूल में आने के लिए मना किया।

[1] बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन- पृ. सं. 55

इसीलिए “बिरसा की सबसे छोटी मौसी,(जोनी)”[2] के पास प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की और आगे की पढ़ाई के लिए बुर्जू मिशन के पादरियों से संपर्क किया। इन पादरियों के साथ बिरसा ने उच्च प्राथमिक स्तर की शिक्षा ग्रहण की। इसी बुर्जू गाँव में उनका ‘बपतिस्मा’ संस्कार हुआ और वह ‘दाउद बिरसा’ इस नयी पहचान के साथ जाने जाने लगे।

बिरसा के पिता ने बिरसा को उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए स्कूल में भेजा। एक प्रसिध्द जर्मन स्कूल चाईबासा में था जो अच्छी पढ़ाई के लिए प्रसिध्द था। बिरसा पढ़ने-लिखने में बहुत बुध्दिमान छात्र थे इसी कारण बिरसा के पिता ने उनको पढ़ने की इच्छा ठान ली थी। लेकिन समस्या यह थी की चाईबासा का स्कूल इतनी लंबी दूरी पर था की पैदल चलकर बिरसा के पैरों में छाले पड़ जाते थे। एक दिन यह हुआ की बिरसा की यह हालत देखकर उनके पिता ने स्कूल के अधिकारियों से विनती की थी वे उनके बेटे बिरसा पर दया करें। क्योंकि जहाँ वह एक तेज छात्र था वह चाहते थे की अधिकारी बिरसा को छात्रावास में रखे और उनके इन बातों का परिणाम भी सकारात्मक ही हुआ और छात्रावास के अधिकारी ने बिरसा मुंडा पर दया दिखाकर उन्हें छात्रावास में रखने की अनुमति दे दी। “बिरसा चाईबासा में एक लंबी अवधि, यानि 1886 ई. से 1890 ई. तक रहा।”[3] और वहीं रहकर लगभग पूरे पाँच साल जर्मन मिशनरी स्कूल के छात्रावास में पढ़े।

बिरसा को बाँसुरी और तुमड़ी बजाने में विशेष रस था। बाँसुरी की कला तो मानो उनके लिए वरदान था जंगल में अकेले बैठकर बिरसा बाँसुरी बजाता था। तब वन्यजीवों के कान-तृष्टि से भर जाते थे और पेड़-पौधे भी ख़ुशी से लहराने लगते थे बिरसा मुंडा बाँसुरी बजाने के साथ-साथ ही लोकगीत भी गाने लगते थे। वह ख़ुशी में भी रहते थे और गंभीर भी हो जाते थे। गंभीर इसलिए हो जाते थे मेरे आदिवासी समाज को कितना दबाव झेलना पड़ता है ? तथाकथित सवर्ण लोग उन्हें अपना गुलाम समझते थे। वे कभी आदिवासी समाज को सम्मान नहीं देते थे। वे कभी नहीं चाहते थे कि आदिवासी समाज पढ़-लिख कर ऊपर उठे क्योंकि उसमें उनका स्वार्थ निहित था अगर आदिवासी समाज पढ़-लिखकर ऊपर उठेगा तो उनकी सेवा-चाकरी कौन करेगा ?

बिरसा मुंडा जन्मजात ही प्रतिरोधी स्वर के थे। वे अन्याय और अत्याचार को चुपचाप सहने के पक्ष में नहीं थे। बल्कि वह उसका प्रतिरोध करते थे। वह अपने समाज पर होने वाले अन्याय, अत्याचार को

[2] बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन- पृ. सं. 58
[3] बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन- पृ. सं. 59

देखकर तड़प उठते थे और उसके प्रतिकार की बात करते थे। उनके अंदर जो प्रतिकार की चेतना भरी हुई थी वह बचपन से ही अनेकों प्रसंगों में दिखाई देती थी।

"बिरसा के व्यक्तित्व के निर्माण में तीन बातों का मुख्य रूप से प्रभाव पड़ा। ईसाई धर्म ने, जो उसके चारों ओर एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभर रहा था, उसके बचपन को एक विशेष सांचे में ढाला और इसके कारण ही उसे अच्छी स्कूल मिल पाई। बाद में वह जब वैष्णव धर्म के प्रभाव में आया तो ईसाई और वैष्णव धर्म, दोनों के मिश्रित प्रभाव ने उसके धार्मिक आंदोलन को प्रेरित किया। सरदारों के भूमि-संबंधी आंदोलन के अदम्य प्रभाव ने बिरसा को उच्च मिशनरियों से भिड़ जाने को मजबूर किया और उसने स्कूल छोड़ दिया। सरदारों का आंदोलन रोमन कैथोलिक आंदोलन के अंतर्गत टेढ़े-मेढ़े रास्ते से आगे बढ़ रहा था। बिरसा ने सरदार-आंदोलन का अनुसरण किया और फिर अपने पुराने धर्म की ओर लौट गया तथा आनंद पांडे से संबंध विच्छेद कर लिया। फिर वह सरदार-आंदोलन में, जो जनता के वन-संबंधी अधिकारों की माँगों को लेकर चलाया जा रहा था, कूद पड़ा।"[4] इस तरह बिरसा मुंडा के आंदोलन को समझा जाना आसान होगा।

2.1.3 बिरसा मुंडा का आंदोलन : मिशनरियों और मुंडा सरदारों का 1886-87 में विरोध शुरू हो गया मिशनरी वाले बहुत दिनों से मुंडा सरदारों को बहुत सारी बातों का लालच दिखा के बहला-फुसला रहे थे। वे उनसे वादा करते थे की हम तुम्हें जमींदारों के अत्याचारों से मुक्ति दिलायेंगे। लेकिन वास्तविकता यह थी कि वह मिशनरी वाले और जमींदार दोनों मिलकर उन पर अत्याचार, अन्याय कर उनका शोषण करते थे। जब उनकी वास्तविकता मुंडा सरदारों के सामने आयी तो उन्होंने मिशनरियों के साथ आंदोलन आरंभ किया था। ईसाई मिशनरी आदिवासियों का प्रायः अपमान करते थे। आदिवासी उनकी यह करतूत समझ गए और वह मिशनरियों का खुला विरोध करने लगे। एक घटना यह है कि मिशनरियों ने मुंडा आदिवासियों पर अनेक प्रकार के अत्याचार करके उन्हें बेईमान एवं झूठा साबित कर जलील किया। '16 वर्षीय बिरसा को अपनी जाति का अपमान सहन न हुआ। उनका जातीय स्वाभिमान जाग उठा उन्होंने आक्रोश में आकर पादरी को खरी-खोटी सुना दी। बिरसा ने कहा मुंडा बेईमान नहीं है। बेईमान तुम हो, तुम लुटेरे हो, धोखेबाज हो। तुम हमारा धर्म बदल ने आये हो। हमें झूठे सपने दिखाने आये हो। कहते हो तुम हमारी जमीन दिला देंगे पर अब हम यह जान गए हैं कि तुम हमारी जमीन नहीं दिला सकते। तुम सूद खोर हो और जमींदारों से मिले हुए हो। तुम सब मिलकर हमें ठग रहे हो। अब तुम्हारा भंडाफोड़ हो चूका है। हम आदिवासी बहुत सीधे भी हैं और अपनी पर आ जाए तो बहुत टेढ़े भी बन सकते हैं। हमारी गरीबी का तुमने मजाक बनाया है। अब हम तुम्हें नहीं छोड़ेंगे।'

---

[4] बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन- पृ. सं. 63

उपर्युक्त कथन से बिरसा मुंडा की प्रतिरोधी शक्ति एवं अपने समाज के हित का पक्ष दिखाई देता है। 16 वर्षीय किशोर बिरसा के मुँह से इस प्रकार की तीखी और सटीक बात सुनकर पादरी को बहुत बुरा लगा और दौड़ता हुआ मिशन के अध्यक्ष लूथरन के पास जा पहुंचा और उसने बिरसा की शिकायत कर दी। इसका नतीजा यह हुआ की अगले दिन बिरसा को मिशनरी स्कूल से निकाल दिया गया। अब वह इस सच्चाई को जान चुके थे की मिशनरी आदिवासियों का शत्रु है। सवर्ण सूदखोर, महाजन, यह सब मिलकर आदिवासियों को हमेशा के लिए गुलाम बनाकर रखना चाहते हैं। जमींदार आदिवासियों से बेगारी करवाते हैं उनका अपमान करते हैं और उनकी मेहनत के बदले पैसे भी नहीं देते हैं। महाजन कर्ज देकर ऐसा दबाव बनाता है कि आदिवासियों के पास जमीन का जो टुकड़ा होता है वही उनके जीवन का एक मात्र सहारा होता है उसे भी वह धूर्त महाजन छीन लेता है। आदिवासियों का अपनी ही जमीन पर अपने ही देश में इतनी दयनीय स्थिति है और उसे देखने और सुनने वाला कोई भी नहीं है। अनेक आदिवासी सरदार जो प्रलोभन दिखाने के कारण ईसाई धर्म को स्वीकार कर चुके थे वही सरदार अब ईसाइयों के खिलाफ खड़े हुए थे। बिरसा का स्कूल से निकाला जाना एक दृष्टि से अच्छा ही था। आदिवासी सरदारों को एक ऐसे युवक की जरुरत थी जो आदिवासी युवा पीढ़ी का नेतृत्व करे और उनमें प्रतिरोध की शक्ति का संचार करे और अपने दुश्मनों खात्मा करे। बिरसा इस स्थिति के लिए तैयार थे उनका स्कूल छूट जाने के बाद बिरसा ने अपना समग्र लक्ष्य अपनी जाति के हितों पर केंद्रित करना शुरू किया।

16 वर्ष की उम्र में ही बिरसा ने अपनी जाति एवं समाज का उध्दार करने का प्रण लिया था और उनके लिए विशेष तैयारी में लगे हुए थे। बिरसा के सामने इस समय दो महत्त्वपूर्ण काम थे। उनमें से पहला काम यह था की भूतकाल के सौ वर्ष में हुए आदिवसी आंदोलन की जानकारी लेना और दूसरा काम यह था समग्र आदिवासियों को संघर्ष हेतु संघठित कर उनमें चेतना भरना।

बिरसा मुंडा की एक पुकार पर समग्र आदिवासी समुदाय उनकी सहायता के लिए दौड़ आता था। उनकी निस्वार्थ सेवा, परोपकार ने लोगों के दिल जीत लिए थे। अब वह बिरसा को केवल अपना सरदार ही नहीं अपितु भगवान मानने लगे थे। बिरसा द्वारा शुरू किया हुआ आंदोलन सर्व प्रथम धर्म के लिए था। इस आंदोलन का सर्व प्रथम उद्देश्य ईसाई मिशनरियों के खिलाफ लोगों को एक करना और हिंदू-धर्म की रक्षा करना था। इस आंदोलन में स्वार्थ, लोभ एवं हिंसा को बिल्कुल स्थान नहीं था। लेकिन आंदोलन का यह धार्मिक स्वरूप लंबे समय तक नहीं रहा बहुत ही जल्दी यह धार्मिक आंदोलन, राजनीतिक आंदोलन के रूप में परिवर्तित हुआ। बिरसा का आंदोलन आदिवासी समाज की उन्नति और अधिकारों के लिए था। आदिवासियों की सामाजिक एवं आर्थिक दयनीयता का कारण भूमिहीनता है। उन्होंने जंगल काटकर जो खेती लायक भूमि तैयार की थी उस पर भी जमींदारों ने सरकार से मिलकर अपने अधिकार में ले ली।

आदिवासी उस भूमि पर जी-तोड़ मेहनत करते लेकिन उससे प्राप्त होने वाली आय जमींदारों से वापस नहीं मिलती। तब तक उनकी विकास की संकल्पना संभव नहीं थी। इसलिए सभी मुंडा आदिवासियों ने बिरसा के साथ इस आंदोलन में कदम-से-कदम मिलाकर लड़ने का निश्चय किया।

आदिवासी समाज अब तक केवल निर्धनता, भुखमरी एवं अशिक्षा के गहन अंधकार में खोया हुआ था। लेकिन बिरसा के रूप में अब उस भटके हुए समाज को एक ऐसा सशक्त नेता मिल गया था जो उनके हित एवं उन्नति के लिए खुद को पूरी तरह से समर्पित करने एवं सब कुछ त्यागने के लिए तैयार था। यही कारण है कि आदिवासी समाज भी बिरसा मुंडा के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार था।

बिरसा द्वारा आरंभित इस आंदोलन की कुछ माँगें थीं। आदिवासियों को जमींदारों के जुर्म और ब्रिटिश सरकार की नीतियों से मुक्ति चाहिए थी। यही कारण है कि दूर समाज के अनेक आदिवासी इस आंदोलन में शामिल हो गए। और देखते-देखते बिरसा मुंडा के आंदोलन ने एक बड़ा रूप धारण कर लिया। बिरसा के इस आंदोलन का प्रमुख उद्देश्य आदिवासियों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को सुधारना था।

जैसे उनकी मांगों में सर्व प्रमुख मांग यह थी की प्राचीन समय से जमींदार तथा उच्च वर्गीय समुदाय निर्धन एवं असहाय आदिवासियों को बेगार करने के लिए मजबूर करते थे यह सब बंद किया जाय। उनकी दूसरी मांग यह थी की जमींदारों के अत्याचारों से पीड़ित आदिवासी के लिए सरकार कानून बनाए इस कानून के अंतर्गत आदिवासियों पर अत्याचार करने वाले जमींदार को दण्डित किया जाए। तीसरी- माँगों में प्रमुख माँग यह थी की आदिवासियों का एक स्वतंत्र राज्य हो जिसमें अन्य कोई हस्तक्षेप न करे, आदि।

बिरसा आदिवासियों के भूमि-संबंधी आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे। खेती-बाड़ी को त्याग कर आदिवासी समाज बिरसा मुंडा के पास ही रहने लगा था। इसलिए सरकार ने बिरसा के इस आंदोलन का दमन करने का प्रयास किया। इसमें जमींदार भी शामिल थे। जमींदार और सरकार की चाल सफल हो गयी। तत्काल सरकार ने बिरसा को बंदी बनाने का आदेश दे दिया डिप्टी कमिश्नर ने बिरसा को पकड़ने के लिए सैनिकों की एक टुकड़ी भेज दी। इस बात की खबर बिरसा को हो चुकी थी उन्होंने तुरंत एक सभा बुलायी। मुंडा सरदारों और अपने अनुयायी को संबोधित करते हुए परिपूर्ण भाषण दिया।

"भाईयो! आदिवासी सदियों से जुल्म सहते आए हैं। कभी जमींदारों ने उनका शोषण किया तो कभी सरकारी अधिकारियों ने उनके मुँह का निवाला छीना। इन जंगलों पर आदिवासियों का अधिकार है। हमारे पूर्वजों ने इन जंगलों को साफ करके खेती योग्य भूमि तैयार की, लेकिन जमींदारों ने बलपूर्वक इसे अपने अधीन करके हमें गुलामों का जीवन जीने के लिए विवश कर दिया। हमारी न तो कोई पहचान है और न ही

कोई अधिकार प्राप्त है। अथक परिश्रम करने के बाद भी हमारे बच्चे भूख से बिलखते हैं, हमारी स्त्रियों पर उच्च वर्ग के लोग बुरी नजर रखते हैं। हमने इन अत्याचारों को बहुत सह लिया, लेकिन अब ईंट का जवाब पत्थर से देने का समय आ गया है। हमें मिल-जुलकर जमींदारों और ब्रिटिश सरकार का सामना करना है।"[5] इस भाषण ने आदिवासियों में उत्साह एवं जोश का संचार कर दिया। वे अपने शस्त्र उठाकर बिरसा मुंडा का जय गान करने लगे।

सरकार की टुकड़ियों ने बिरसा मुंडा की टुकड़ियों पर आक्रमण कर दिया। देखते-देखते दोनों ओर के सैनिक परस्पर युद्ध करने लगे। बिरसा मुंडा के सैनिकों के धनुष से निकले बाण शत्रुओं का सीना पार करने लगे। बिरसा मुंडा के सैनिकों की तलवारें शत्रुओं के मस्तक अलग करने लगी। जमींदार और सरकारी अधिकारी आदिवासियों को असहाय, कमजोर और कायर समझते थे लेकिन आज युध्द भूमि में बिरसा के आंदोलनकारियों ने उनको पराभूत किया था। विशाल आदिवासी जनसमूह के आगे सरकारी सेना अधिक देर तक नहीं टिक सकी और कुछ ही देर में वह वहाँ से भाग निकली।

इस पराजय ने ब्रिटिश सरकार को विचलित कर दिया। इसलिए उन्होंने एक बैठक बुलाई इस में यह सूचना दी गयी कि बिरसा को बंदी कैसे बनाया जाय ? इस बैठक की अध्यक्षता डिप्टी सुपरिडेंटेड जे. आर. के. मेयर्स कर रहे थे। बिरसा के विरुध्द संपत्ति को हानि पहुँचाने, सरकारी अधिकारियों के कार्य में बाधा डालने, पुलिस पर हमला करने तथा सार्वजनिक स्थल पर शांति को भंग करने से संबंधी आपराधिक मामले दर्ज किये गए। "धारा 303 और धारा 505"[6] के अंतर्गत मेयर्स ने बिरसा और उनके आंदोलनकारियों को बंदी बनाने का वारंट निकाला। इधर बिरसा को भी अपने जासूसों द्वारा अपने बंदी की खबर मिली थी लेकिन उन्होंने इस बात की तनिक भी आशंका नहीं थी की अंग्रेज सिपाही उनको रात में ही बंदी बना लेंगे। इसलिए वह आराम रुप से सो गए। उसी समय सैनिकों ने उस घर को (चारों ओर से) घेर लिया। इस समय उन्होंने प्रतिरोध किया। लेकिन सैनिकों के पास बंदूक थीं। इसलिए वह कुछ न कर सके और कुछ ही देर में बिरसा को बंदी बना लिया गया।

उन्हें रांची की जेल में ले गए। वहाँ पर उन्होंने लगभग दो साल गुजारे। मेयर्स रिपोर्ट के मुताबिक बिरसा मुंडा को बहुत सारे अपराध किये जाने का आरोप लगाया था और उन्हें दो साल की सजा काटकर "बिरसा को 30 नवंबर, 1897 को जेल से रिहा किया गया।"[7]

---

[5] बिरसा मुंडा, गोपी कृष्ण कुंवर- पृ. सं. 64-65

[6] बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन- पृ. सं. 86

[7] बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन- पृ. सं. 102

बिरसा मुंडा जेल से रिहाई के बाद फिर अपने आदिवासी समुदाय को इकट्ठा करने के काम में लग गये। उन्होंने आदिवासियों को अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए प्रेरित किया। उनके मन में 'उलगुलान' की आग धधक रही थी। वह तनिक भी कम ना हुयी अपितु वह अधिक ही प्रवाहित हो गयी और उनकी चिंगारियाँ आदिवासी समाज में बिखरने लगी। इसी सन्दर्भ में बिरसा मुंडा 1898 में डोंबारी क्षेत्र के जगारी मुंडा के घर मुंडा आदिवासी समुदायों का आयोजन नियोजित किया। इसमें बिरसा मुंडा के विश्वनीय साथी शामिल थे। इस सभा में बिरसा ने अपने आदिवासी समाज को शांति एवं अहिंसा के मार्ग से अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए संदेश दिया लेकिन मुंडा सरदारों ने उनकी शांति और अहिंसा की संकल्पना का विरोध किया। वह शस्त्र के साथ लड़ना चाहते थे जो कि बिरसा इसके लिए तैयार नहीं थे। बिरसा ने उन्हें समझाते हुए कहा "मैं तुम लोगों पर कुछ थोपना नहीं चाहता। जो भी ठीक समझो, करो। पर पहले अपनी ताकत का अंदाज कर लो और फिर मैदान में कूदो।... अपनी रोजी कमाने,जिन्दा रहने और अपनी जमीन के लिए, जिसे तुम इतना प्यार करते हो, तुम घास काटना, उपजे हुए बैंगनों, टमाटरों को उखाड़कर खाना और बेचना तथा आम और कटहल के पेड़ों की रखवाली जारी रखना। पर याद रखो कि अभी तीर और कुल्हाड़ी निकालने का वक्त नहीं। हाँ, जब ठीक मौका आएगा तो तुम खुद समझ जाओगे कि तुम्हें कब कार्रवाई करनी है।"[8]

फिर "अगली बैठक मार्च, 1898 में सिंबुआ पहाड़ी में हुई।"[9] आदिवासी समुदायों के कई बिरसा सरदार शामिल हुए। जिसमें स्वयं बिरसा मुंडा भी उपस्थित थे। उस बैठक में करीबन 300 अनुयायियों ने भाग लिया था जो सशस्त्र थे। उनके पास धनुष-तीर, तलवार तथा कुल्हाड़ियाँ थीं। इस बैठक में भी बिरसा ने अहिंसा एवं शांति के माध्यम से अपनी लड़ाई जारी रखने की बात की लेकिन मुंडा आदिवासी सशस्त्र विद्रोह पर अड़े रहे।

22 दिसंबर, 1899 को बिरसा मुंडा के नेतृत्व में अंतिम सभा होती है। इस सभा में बिरसा मुंडा सशस्त्र क्रांति का दिन निर्धारित करते हैं। इसी सभा में बिरसा सरदारों को कहते है कि अब हमें अपनी अधिकारों की लड़ाई लड़नी है। हमें अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़नी है, यह लड़ाई निस्वार्थ लड़ाई है। अब सभी लोग अपने-अपने हथियार तैयार रखिए और अपने बांधवों को भी इस 'उलगुलान' में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित करें। यह लड़ाई किसी अकेले की लड़ाई नहीं बल्कि यह लड़ाई हम सभी आदिवासी समुदायों की है। इसी सूचना के साथ सभा समाप्त होती है। और साथ-साथ क्रांति की चाह में गीत गाते है।

---

[8] बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन- पृ. सं. 109

[9] बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन- पृ. सं. 110

"विशाल नदी में बाढ़ आई है, आसमान में धूल-भरी
आंधी उमड़-घुमड़ रही है,
ओ मैना, भाग जा, भाग जा।
जंगल में आग और धुँआ जोरों से उठ रहा है,
ओ मैना....
तेरी माँ झुलस रही है,
ओ मैना....
तेरा बाप बाढ़ में असहाय बहा जा रहा है,
ओ मैना...."[10]

बिरसा मुंडा ने इस क्रांति के लिए 24 दिसंबर दिन निश्चित किया। क्योंकि यह क्रिसमस के पहले का दिन था और अंग्रेज अधिकारी क्रिसमस की तैयारी में लगे हुए थे। बिरसा मुंडा उनकी व्यवस्था का लाभ उठाना चाहते थे लेकिन अंग्रेजों को उनकी इस योजना का पता चल गया और वह सजग हो गये। निश्चित किये हुए दिन आदिवासियों ने सशस्त्र अंग्रेजों के ऊपर हमला बोल दिया। एक साथ अनेक जगहों पर क्रांति की चिंगारियाँ जल पड़ी। उन्होंने क्रिसमस के अवसरों पर चर्च में इकट्ठा हुए ईसाइयों की भीड़ पर हमला किया। यह हमले की खबर जैसे सरकार को मिल गई उन्होंने आदिवासियों से निपटने के लिए डिप्टी कमिश्नर स्ट्रीटफील्ड और एक सिपाहियों की छोटी टुकड़ी भेजी। लेकिन आदिवासियों का कुछ भी नहीं कर सकी। इस समय बिरसा ने अपनी साथियों को संबोधित करते हुए कहा "ब्रिटिश सरकार विद्रोहियों की प्रबल शत्रु है। उसकी अन्यायपूर्ण नीतियों के कारण ही मुंडा शस्त्र उठाने के लिए विवश हुए हैं। अन्य मुंडाओं से उनकी कोई शत्रुता नहीं है, बल्कि वे उनके भूमि-संबंधी अधिकारों के लिए ही सरकार के साथ संघर्ष कर रहे हैं। इसलिए इस धर्मयुध्द में सभी मुंडाओं को उनका साथ देना चाहिए। तभी वे अपने अधिकार प्राप्त कर पाएँगे।"[11]

ब्रिटिश सरकार ने आदिवासी क्रांतिकारियों से परेशान होकर उसको पकड़ने के लिए इनाम का प्रलोभन दिखाया। उनको पकड़ने की सभी तैयारियाँ की गयी। बिरसा मुंडा पर 500 रक्म की घोषणा और उनके साथियों पर 100 रुपये का इनाम लगाया गया ।

बिरसा की गिरफ्तारी के लिए	...500 रूपए
डोंका मुंडा... की गिरफ़्तारी के लिए	...100 रूपए

[10] बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन- पृ. सं. 110
[11] बिरसा मुंडा, गोपी कृष्ण कुँवर- पृ. सं. 107

माझिया मुंडा... की गिरफ़्तारी के लिए ...100 रूपए

बुध्दू मुंडा... की गिरफ़्तारी के लिए ...100 रूपए

परान पहान... की गिरफ़्तारी के लिए ...100 रूपए"[12]

10 जनवरी, 1900 को बिरसा के समर्थकों को गिरफ्तार करने का काम किया गया । बिरसा के साथियों के सभी मार्ग बंद कर दिए गए । उन्हें मुसीबतों में फँसा दिया । बिरसा अभी तक पुलिस की गिरफ्तारी से दूर थे । ब्रिटिश सरकार ने दमन नीतियों के द्वारा बहुत सारे क्षेत्र में विद्रोह को पूरी तरह से कुचल दिया । अनेक विद्रोहियों को बंदी बनाया गया । उनकी जायदाद जब्त कर ली गयी । इतना होने के बावजूद भी वे उनके हाथ नहीं लगे थे । लेकिन वह भी समय जल्दी आ गया जिस दिन बिरसा मुंडा अंग्रेज के हाथ लगे । एक दिन भोजन करने के उपरांत वे पत्नी के साथ गहरी नींद में सोये हुए थे उसी समय उन लोगों ने बिरसा को घेर कर उनकी तलवारें जब्त की इस अचानक हमले के लिए बिरसा तैयार नहीं थे ।

बिरसा मुंडा ने इनका सामना करने की बहुत कोशिश की लेकिन निशस्त्र होने के कारण वह कुछ न कर सके । इसी का फायदा उठाकर उन्हें बंदी बना लिया और रातों-रात में जंगल के इस शेर को बंदगाँव में डिप्टी कमिश्नर के कैद में पहुँचा दिया । उन्हें जेल में बहुत अमानवीय तरीके से यातनाएँ दी गयीं । उन्हें बहुत तड़पाया गया । उनको बहुत अपमानित किया । बीमारी की हालत में भी उनको हाथ में "भारी-भारी हथकड़ियाँ और पाँवों में बेड़ियाँ तथा कमर में जंजीरों"[13] से मुक्त नहीं किया था वह क्रूरता की सभी सीमाएँ पार कर गए थे । '8 जून को बिरसा की हालत अचानक बिगड़ गयी उस दिन शाम को उन्हें दस्त लगे और वह सारी रात बंद नहीं हुए थोड़ी देर बाद अचानक वह कराहने लगे ।' '9 जून को उनकी तकलीफ अधिक बड़ गयी । थोड़ी देरी के बाद उनको एकाएक खून की उल्टियाँ हुयी और सुबह ठीक 9 बजे इन्होंने इस दुनिया से विदा ली ।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि बिरसा मुंडा का 'उलगुलान' केवल आदिवासी समाज का विद्रोह नहीं था । लेकिन वह समग्र मानवजाति का विद्रोह था । बिरसा मुंडा आजीवन अपने हकों के लिए लड़े । उन्होंने अत्याचारों, अन्याय को चुपचाप सहा नहीं बल्कि उसका प्रतिकार किया । बिरसा मुंडा का 'उलगुलान' एवं उनकी विचारधारा आज के संदर्भों में प्रासंगिक एवं अनुकरणीय है ।

---

[12] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 234

[13] बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन- पृ. सं. 168

2.2 'बिरसा मुंडा' के जीवन पर आधारित साहित्यिक कृतियाँ: एक विवेचन

2.2.1 जंगल के दावेदार :

इतिहास साक्षी है कि जब भी किसी देश, जाति या धर्म पर बाहरी आक्रमण हुआ उनका कोई न कोई व्यक्ति मसीहा के रूप में आगे आया और अपने ऊपर होने वाले दमन और शोषण के विरुद्ध जन आंदोलन का नेतृत्व किया। हमारे सभ्य और शिक्षित समाज का इतिहास तो सहजता से सुलभ है, परन्तु हमारे इस सभ्य समाज के समानांतर एक और समाज सांसें ले रहा है, जो प्राचीनकाल से ही हमसे संपूर्णता से अपरिचित रहा है, तिरस्कृत रहा है, तथा अपने अस्तित्व रक्षा के लिए लंबे समय से जीवन-संघर्ष करता आ रहा है। जिनको पड़ोसी होने के बावजूद भी हमने उसे सहारे देने के बजाय सदा उनसे मुंह फेरा हैं। उनका भी अपना एक गौरवमय इतिहास है। यहाँ हम आदिवासी, वनवासी जनक्रांतियों की बात कर रहे हैं, जिनके दुःख, दर्द, पीड़ा वंचना को हराने हेतु मानो स्वयं ईश्वर इस धरती पर महज पांच फुट चार इंच के मानव शरीर के साथ, साइज में हिमालय-सा अदम्य साहस एवं दृढ़ता लिए अवतरित हुए और इसी अवतार का नाम था- वीर बिरसा मुंडा।

भारतीय भूखंड प्रागैतिहासिक काल से ही कोल, भील, मुंडा, संथाल आदि जनजातियों का निवास स्थान रहा है। एक समय ऐसा था जब पूरा छोटा नागपुर क्षेत्र घने वनों से आच्छादित था। छोटा नागपुर नाम भी इन्हीं लोगों की देन है यह इस उद्धरण से स्पष्ट होता है "वे दो भाई आए थे- चुटिया हरम और नागु। तब श्रवण मॉस था। डोम-डागरा नदी में दोनों किनारों को डुबाकर बाढ़ आई थी। वहाँ, उसी नदी के किनारे उन लोगों ने चुटिया गाँव बसाया। उन दोनों भाईयों के नाम से क्रम से उस आँचल का नाम हो गया- छोटा नागपुर।"[14]

सर्व प्रथम कोल जनजाति के लोगों ने इन वनों को साफ़ किया और यहाँ गाँव बसाया। कोल जाति कई गोत्रों में बँटी हुयी थी, इन्हीं में से एक गोत्र था 'मुंडा'। वास्तव में कोल जाति का जो गोत्र गाँव बसाया था, उसके बाद आने वाले कोल इसके अधीन हो जाते थे और इस तरह से पहला गोत्र मुंडा अर्थात् शीर्ष स्थानीय की पदवी से सम्मानित होता था। मुंडाओं द्वारा बसाये गए गाँव खुटकट्टी के लोग जमीन से जुड़े थे, वे खुद ही उस जमीन के मालिक थे और इन्हें किसी प्रकार का लगान नहीं देना पड़ता था। परंतु कालांतर में इन आदिवासी जनजातियों के सुखी-जीवन पर ग्रहण लग गया। उनके जमीन पर लालची मनुष्यों ने आक्रमण

---

[14] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 30

कर लिया। इन आदिवासियों की खेती-बाड़ी और ग्रामीण-व्यवस्था बिखरने लगी। जंगलों को काट-काट कर आदिवासियों ने जिन खुटकट्टी गाँव की स्थापना की थी। अब वह उनका नहीं रहा। जेल में बैठकर धानी मुंडा, भरमि मुंडा से उनकी पुरानी-व्यवस्था के संदर्भ में कहते हैं "तब सब सहज था। वे जंगल में शिकार खेलते। जंगल में गाय चराते। जंगल से काठ-पत्ते लाते; जंगल काटकर जमीन आबाद कर लेते। वे सब देवताओं से बड़े देवता सिंबोड़ा को जानते थे। सारे बोंडाओं पर उन्हीं देवता का राज था। पहान उन सिंबोड़ाओं का पुरोहित था।... सब कुछ बदल गया है।"[15]

उपन्यासकार महाश्वेता देवी के अनुसार छोटा नागपुर के राजा ने अपने निकट स्वजनों को जमीन एवं गाँवों को देकर जब जागीरदार बना दिया तब मुंडा लोग दक्षिण खुटकट्टी एवं पश्चिम तमाड़ के पर्वतीय जंगली क्षेत्रों की तरफ चले गए। 1831-32 में कोल-विद्रोह के बाद इन सब जगहों पर भी जमींदार और जागीरदार चले आए। ये लोग राजा और अदालतों के समकक्ष दखल का कागज या पत्ते के कागजात दिखाकर मुंडाओं की जमीन पर दखल करने लगे। 1863 तक अंग्रेज सरकार ने जमींदारों को पुलिस कार्रवाही करने की छूट दे रखी थी। जिसके चलते मुंडा अपनी स्वाधीनता खो बैठे। उनके ग्राम एवं समाज-व्यवस्था बिखर गयी, जमीन के ऊपर उनका अधिकार ख़त्म हुआ। जमींदार उनके पास से खजाने के रूप में फसल देते थे। जोर-जबर्दस्ती बिना मजदूरी के बेगारी भी करवाते थे। ये सभी बाहरी अत्याचारी लोग ही मुंडा, संथाल एवं उराँव जातियों के समक्ष दिकू नाम से परिचित हो उठे। गाँव-गाँव में बेगारी चलती थी। साल भर में बिना मजदूरी के मालिकों के खेतो में काम करना पड़ता था। इसकी जानकारी हमें धानी के गाने से दृष्टिगोचार होती है-

"बेठबेगारी दिते मोर माँधे झरे लौ गो ।
जमिंदारेर पेयादा ओइ राते दिने ।
ताड़ाय मोरे, काँदि आमि राते दिने ।
बेठबेगारी दिये मोर एइ हाल गो-
घर नाइ, सुख मोरे के दिवे गो ।
काँदि आमि राते दिने ।
चोखेर ललेर मतइ लूनपारा मोर लौ गो।"[16]

उन्नीसवीं सदी के शुरू के दिनों में जब छोटा नागपुर में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन आया तब 12500 वर्ग मील इलाके में एक अंग्रेज शासक था। हिन्दू और मुस्लिम कर्मचारियों को तो आदिवासियों

[15] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 30-31
[16] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 33

पर तनिक भी दया नहीं आती थी। इस लिए शोषण एवं अत्याचार बढ़ गए। साहब लोगों की आँखों में आदिवासी चोर एवं डकैत थे।

अंग्रेजों की न्याय-व्यवस्था से आदिवासी का और ज्यादा नुकसान हुआ। अदालती भाषा अंग्रेजी एवं उर्दू थी। इसे वे एकदम नहीं जानते थे और न समझते थे। उन्हें ठगने के लिए वकील तो थे ही, यह निम्न बातों से स्पष्ट है "बेचन का घर-द्वार सब जब जगदीश साऊ ने ले लिया तो बेचन ने एक वकील को खड़ा किया। हाकिम अंग्रेज था। दुभाषित और वकील ने उसे जो कुछ समझाया, उसने वहीं समझा। बेचन की बात, किसी मुंडा की बात वह समझते नहीं थे। अंग्रेजी के अलावा कुछ समझते नहीं थे, और मुकदमा करते थे मुंडा, संथाल, ओराँव, हो, कोल आदि लोगों का। वकील जो कहता, दुभाषिया जो कहता, वही सुनकर फैसले लिखते। मुकदमे में बेचन का सबकुछ चला गया। बकरा-बकरी, भेड़, हल बेचकर वकील को रूपए दिए थे। हार हुई। बेचन को... जमीन पर गायें चराने के अपराध में उस पर जुर्माना अलग से पड़ा।"[17]

फलस्वरूप आदिवासियों के मन में दिकू, ब्रिटिश शासन और सभी के प्रति अविश्वास की भावना ने जन्म ले लिया। सुविधा देकर असम के चाय बागानों में काम करवाने के लिए दलाल लोग भी वहाँ आ पहुँचे। दल के दल आदिवासी घर-द्वार छोड़कर जाने लगे। यह धानी के कथन से स्पष्ट है दिकू लोग "बुद्धू मुंडा लोगों को कुली बनाकर कहीं भी ले जाएँगे ! मेरे बहन-बहनोई को वे कहीं ले गए। एक बार देश छोड़ने के बाद मुंडा लौटकर नहीं आते हैं। उन्हें राह की पहचान नहीं रहती। विदेश में भूख से परेशान होकर मर जाते हैं। कोई भी मुंडा बाहर जाकर अच्छा खाता नहीं। अच्छी तरह रहता नहीं।"[18]

1864-67 के बीच कुल मिलाकर 6590 आदिवासी इसी तरह चले गए। आदिवासी चावल से हंडियाँ बनाके पीते थे, उससे उतना नुकसान नहीं होता था। लेकिन तभी ब्रिटिश शासन ने आबकारी लाइसेंस देकर पांच-दस मिल की दूरी पर शराब की दुकानें खोल दी। हंडियाँ आदिवासियों का पेय था, जो पूजा जैसे धार्मिक कार्यों में लगता था। किन्तु तब उनके बीच शराब का नशा नहीं पहुँचा था। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें नशेड़ी बना डाला। इसी बीच हिन्दू राजा एवं जमींदारों की बदौलत असंख्य साधू, संन्यासी आदिवासियों के बीच पहुँच गए। उन्होंने मुंडाओं की टूट चुके धर्म, विश्वास में विभिन्न तरह से प्रभाव का विस्तार किया। इसी बीच 1844 में विभिन्न मिशनरी दल भी अनेक समाजों में आ पहुँचे। वे जैसे ही स्कूल चलते, लोगों की सेवा कराते वैसे ही आदिवासियों को ईसाई बनाने लगे। इस तरह मुंडाओं की धर्म-संस्कृति सभी विपन्न होने लगी। सभी तरह के प्रलय के आने से पहले का घोर अंधकार दिखाई पड़ने लगा।

---

[17] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 37

[18] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 32

सरकारी नीतियों के कारण जंगल के वास्तविक अधिकारी अपने जमीन से पराधीन हो गए। अब उन्हें अपनी ही जमीन के लिए लगान देना पड़ रहा था। और इस लगान का भार वहन न करने के कारण उन्हें कर्ज़ लेना पड़ रहा था और कर्ज न चुका पाने के वजह से वे अपनी ही जमीन से बेदखल होते गए। इस प्रकार आदिवासी, मालिक के दमन एवं शोषण का शिकार हो गए। इतना ही नहीं उनकी संस्कृति एवं धर्म पर भी प्रहार हुआ। ईसाई मिशनरी मुंडाओं को ईसाई बना रहे थे। उनका धर्म नष्ट हो गया; बिरसा मुंडा की माँ करमी उनके पूर्व धर्म तथा देवताओं के संबंध में कहती है "कैसे थे वे दिन ! कितने सहज में देवता खुश होते थे। अब करमिया क्रिस्तान होकर, फिर बोड़ा-बोड़ी की पूजा करता है। किंतु रक्षक-देवता फिर मुंडाओं के बीचों बीच अब मृत मुंडाओं के समाधि के पत्थर की तरह बड़ी-बड़ी बाधाएँ हैं। वैष्णव-धर्म, संन्यासी-धर्म, गोसाई धर्म, क्रिस्तान धर्म, दिकू-कोर्ट-कचहरी-अदालत, महाजन-सूद, बेगार-सेवक-पट्टा-सैकड़ों बाधाएँ हैं। इतनी बधाएँ हैं कि देवता लोग भी अब मुंडाओं का भला नहीं कर सकते ! ।"[19]

ईसाई मिशनरी मुंडाओं की संस्कृति को तुच्छ दृष्टि से देखते थे, इस प्रकार मुंडाओं के समक्ष अस्तित्व का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। अपने अस्तित्व को संकट में देखकर यह तिरस्कृत जनजाति विचार करने लगी की अपने हक की रक्षा के लिए कहाँ जाए ? उन्हें सहारे की जरुरत थी परन्तु कहीं से भी उन्हें सहारा न मिला और थक हार कर अपने किसी आदमी की आवश्यकता जान पड़ी। इसी संकट की घडी में उनका अपना आदमी बना बिरसा मुंडा। आदिवासियों का आबा यानी भगवान। इस उपन्यास में दर्शाया गया है "बिरसा अब धरती का आबा है। कितने दिनों से आदिवासी बिरसा की तरह पता नहीं किसको चाहते थे- सिंबोड़ा के साथ, मिशन के धर्म के साथ जो एक साथ युद्ध में उतर सके-उसी धरती आबा को चाहते थे। ओराँव, कोल, खारिया आदि की रक्षा सिंबोड़ा अब नहीं कर पा रहे थे। उन्हें यीशु की शरण का आसरा नहीं रहा गया था। वे नया भगवान चाह रहे थे, जो भगवान केवल जादू और भूत-प्रेत और अभिशाप के प्रपंच दिखाकर उन्हें भुलावे में न रखे। जो देवता भूखे लोगों से किंगडम ऑफ हेवन की बात न कहे ! जो देवता कहे : भूत-प्रेतों को नहीं, दिकू और सरकार को समाप्त करो ! अपने अधिकार खुद छीनो ! जो देवता कहे : जरुरत हो तो मर जाओ, मरने के लिए तैयार रहो।"[20]

जिसके हुनकर ने टूट चुके आदिवासियों में एक नया जोश, चेतना एवं प्राण शक्ति फूंक दी। उन्नीसवीं सदी अंत में हुए विद्रोह 'उलगुलान' का नेतृत्व बिरसा मुंडा ने किया था।

---

[19] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 49-50

[20] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 93-94

बिरसा मुंडा के जीवन-संघर्ष का प्रभाव महाश्वेता देवी के ऊपर इस कदर पड़ा की उन्होंने यह उपन्यास 'जंगल के दावेदार' उपन्यास ही लिख डाला। यह बांग्ला उपन्यास 'अरण्येर अधिकार' का अनुवाद है । इस उपन्यास द्वारा उपन्यासकार ने लोगों के हृदय में अन्याय, दमन एवं शोषण के खिलाफ अग्निरूपी चेतना को प्रज्वलित करने की चेष्टा की है। महाश्वेता देवी ने इस उपन्यास में 1897 और 1899-1900 ई. में हुए इस विद्रोह की प्रासंगिकता दिखाई है। भले ही मुंडाओं की यह जनक्रांति विफल हो गयी, परंतु इसका मूल्य हमेशा-हमेशा के लिए बना रहेगा।

'जंगल के दावेदार' उपन्यास एक साहित्यिक आख्यान ही नहीं बल्कि ऐतिहासिक मूल्य के दृष्टि से भी इसका अपना एक अलग महत्त्व है। उन्हीं दिनों एक पादरी डॉ. नैट्रेट ने लोगों को लालच दिया कि अगर वह ईसाई बने और उनके अनुदेशों का पालन करते रहे तो वे मुंडा सरदारों की छिनी हुयी, भूमि को वापस कर देंगे। सरदार और मिशनरी मुंडाओं को रोकथाम कर रखना चाहते थे। जेकब उन्हें सिखाते थे की अधिकार के लिए की सहायता से ही लड़ना चाहिए। इसलिए फादर नैट्रेट डर रहे थे। उन्होंने सब लड़कों को बुलाकर विश्वास दिलाया "तुम किंगडम ऑफ हेवन में विश्वास न खोना। मिशन पर विश्वास करो। सब जमीन तुमको वापस मिलेंगी।"[21]

वर्ष 1887-88 में सरदार और मिशनरियों के बीच परस्पर आपत्ति आने लगी। तब पादरी ने कहा की " सरदार धोखेबाज है, वे ठग हैं।"[22] इससे बिरसा के मन को बड़ी चोट लगी। उन्होंने आक्रोश में आकर कहा कि "फादर लोग बदमाश हैं। वे सरदारों को अब धोखेबाज कहते हैं। सरदार मिशन छोड़ गए, इसलिए साहबों में गुस्सा भर आया।...सरदारों ने क्या धोखेबाजी की ? वे मुंडाओं के अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं; कैद हुए; जानें दीं। वे धोखेबाज हैं ? नहीं-नहीं-नहीं।"[23]

जब बिरसा को फादर मिशन से निकालते हैं , तब उनको मिशन को छोड़ते हुए कहना पड़ा की "सब साहब-साहब एक बराबर हैं। सरकार जैसी, वैसा ही मिशन है- सब एक-से हैं।"[24]

फलतः 1890 ई. में बिरसा तथा उनके परिवार चाईबासा से वापस आ गए। 1886-1890 तक बिरसा का चाईबासा मिशन के साथ रहना उनके व्यक्तित्व का निर्माण काल था। यही वह दौर था जिसने बिरसा मुंडा के अंदर बदले और स्वाभिमान की ज्वाला पैदा कर दी। बिरसा मुंडा पर संथाल विद्रोह, कोल-विद्रोह का भी व्यापक प्रभाव पड़ा। अपनी जाति की दुर्दशा, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक अस्तित्व

[21] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 75
[22] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 75
[23] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 76
[24] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 76

को खतरे में देख उनके मन में क्रांति की भावना जाग उठी। उन्होंने मन ही मन यह संकल्प लिया की मुंडाओं का शासन वापस लाएंगे तथा अपने लोगों में जागृति पैदा करेंगे।

भारतभूमि पर ऐसे कई क्रांतिकारियों ने जन्म लिया है, जिन्होंने अपने बल पर ही अंग्रेजी हुकूमत के दांत खट्टे कर दिए थे। ऐसे ही एक वीर थे, बिरसा मुंडा बिहार और झारखण्ड की धरती पर बिरसा मुंडा को भगवान का दर्जा अगर दिया जाता है तो उसके पीछे एक बहुत बड़ी वजह भी है। मात्र 25 साल की उम्र में उन्होंने लोगों को एकत्रित कर एक ऐसे आंदोलन का संचालन किया जिसने देश की स्वतंत्रता में अहम् योगदान दिया। आदिवासी समाज में एकता लाकर उन्होंने देश में धर्मांतरण को रोका और दमन के खिलाफ आवाज उठाई। खेती करने पर बरस भर आसमान की ओर मुंह उठाकर, आसमान की दया पर खेती करने पर भी जिन्हें दो जून की रोटी नहीं जुटती-उनके दिलों में हिम्मत दिलाने का काम बिरसा मुंडा ने ही किया। महाश्वेता देवी ने अपने उपन्यास में डोंका नामक पात्र का संवाद स्पष्ट है कि "उसे देखकर, उसकी बातें सुनकर लगता है कि मेरी छाती में बाढ़ आ गई है साली, जैसे पहाड़ टूटता हैं। उसके पास जाकर ही मुझे पता चला की मुंडा होने में कितना गर्व हैं ! ।"[25]

बिरसा मुंडा का संघर्ष था सामंतवाद के विरुद्ध, साम्राज्यवाद के विरुद्ध, अत्यधिक शोषित, लक्षित गरीब मुंडाओं के समक्ष बिरसा मुंडा ने आजादी के सपने को जीवित किया तथा अपने पूर्व धर्म को त्यागकर एक नए धर्म की नींव रखी वह इससे स्पष्ट होता है कि "मुंडा के जीवन में केवल दुःख हैं। इतने बोड़ा-बोड़ी पूजकर, नाच-गाकर वह दुःख क्या कुछ भी कम हुआ ? 'करम' उनकी पूजा नहीं हैं। हँड़ियाँ वे बिलकुल नहीं पीते। हमारा नया धर्म दूसरी तरह का है, माँ। हम उन्हें न तो झुलाते हैं, न भूलते हैं। उन्हें जिन्दा रहना सिखाएँगे, उन्हें मरना भी सिखाएँगे। और मारना भी सिखाएँगे। तभी मेरे धर्म में नए रीति-रिवाज चलेंगे।"[26]

'जंगल के दावेदार' उपन्यास का प्रारंभ 9 जून, 1900 की सुबह मुंडा विद्रोह के मुखिया बिरसा की मौत से होता है। वैसे तो उसकी मौत का कारण हैज़ा बताया जाता है, लेकिन लेखिका इस भ्रांति का विश्लेषण कर स्पष्ट कर देती है कि किस तरह सहबंदियों से दूर कर भोजन में ज़हर मिलाकर उसे हमेशा-हमेशा के लिए मौत की नींद सुला दिया जाता है। अपने जमीनी हक के लिए मुंडा लोगों के संघर्ष के विरुद्ध ब्रिटिश हुकूमत का कुटिल अभियान, मुंडाओं के सहज स्वभाव का सुयोग लेकर उन्हें युद्ध में हराना, उनमें अत्याचार आतंक का संचार कर एक सच्चे, सरल, मेहनत आदिम जनजाति के चेतनायुक्त संग्राम को विनष्ट कर देने का औपनिवेशिक, कौशल, सत्तर के दशक के भारत तथा पश्चिम बंगाल के यथार्थ चित्र को मानस-पटल पर

[25] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 139

[26] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 167

उकेर देता है। इन सभी कुचक्रों के चलते भी बिरसा मुंडा ने तथा अन्य बिरसाइतों ने अशिक्षित रहते हुए भी ब्रिटिश सरकार को हिला दिया “केवल आतंक पैदा करनेवाली हरकतों से डर दिखाकर अगर बिरसा जन-साधारण के बड़े हिस्से को अपनी ओर खींच लेने में समर्थ हो तो आक्रमण का कार्यक्रम बढ़ता ही रहेगा- यह आंदोलन एक व्यापक विद्रोह में परिणत होने तक बढ़ता ही जाएगा- इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है।”[27]

बिरसा मुंडा की गणना महान देश भक्तों में की जाती है। उन्होंने वनवासियों और आदिवासियों को एकजुट कर उन्हें अंग्रेजी शासन के खिलाफ संघर्ष करने के लिए तैयार किया। बिरसा के स्वर में गंभीरता तथा आजादी की उमंग दिखाई देती है। “हमारा युग आ गया है। तुम लोगों को मैं देश लौटा दूँगा। हमारे राज में खेत-खेत के बीच में मेड़ें नहीं होंगी। पूरी धरती सबकी है। पूरी खेती एक साथ होगी। सारी खेती सबकी होगी। अगर उठाकर हाथ में कोई फसल दे भी तो भी मेरे राज में कोई मुंडा अकेले मालिक न होगा। मेरे राज में लड़ाई न रहेगी। धर्म का राज होगा। हमारे पुरखों ने जिस तरह धर्म के अनुसार राज किया, अपने राज में हम वैसे ही राज करेंगे। लाठियों और हथियारों से राज नहीं चलाएँगे।”[28]

बिरसा मुंडा ने असुर पूजा, देओरा और पहान की अलौकिक क्षमताओं में विश्वास, हजारों संस्कार और उनके बँधनों को तो निष्काषित कर दिया ही साथ ही प्राचीन जड़ता और अंध संस्कारों से मनुष्यों को मुक्त कर दिया। बिरसा मुंडा लोगों को लाखों-बरसों के अंधकार को एकाएक दूर करके आधुनिक काल में ले आना चाहता है, किन्तु ऐसे आधुनिक काल में जहाँ पहुँचकर मुंडा लोग अपनी आदिम सरलता, न्यायबोध, सभी की नीति को अटूट रख सके एक नए मानव धर्म में आश्रय पा सकें ।

बिरसा जानता था कि तीर-धनुष-बरछा-कुल्हाड़ी लेकर बंदूक से लड़ना मुश्किल हैं। लेकिन उसे यह भी मालूम था की मुंडा लोगों की एकता अस्त्र-शस्त्रों के कुल अभाव को मिटा सकती थी। “संथाल, कोल, खरुआ, सरदार जीते क्योंकि हर पराजय ने प्रमाणित कर दिया की जीतनेवाले के नाम का रिकॉर्ड रहता है- पराजित का नाम मनुष्य के रक्त में, बेगारी में, अभाव में, भूख में, शोषण में,... हर गान में, स्मृति में, घाटों के फीको, नीरस स्वाद में, नंगे मुंडा शिशु की विवर्ण चमड़ी में, मुंडा-माता के फूले पेट में और महाजन के धान के बोरे को एक बार ढोने की मेहनत में... ।”[29]

बिरसा मुंडा ने केवल राजनीतिक जागृति के बारे में ही संकल्प नहीं लिया बल्कि अपने लोगों में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक जागृति के साथ प्राकृतिक जागृति पैदा करने का भी संकल्प लिया था।

---

[27] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 209

[28] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 159

[29] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 223-224

बिरसा से प्रभावित तथा भगवान बनाने के पीछे जंगल माँ की विवशता है। जंगल माँ वह कह रही थी, "मुझे बचा, बिरसा! मैं फिर शुद्ध, पवित्र, निष्कलंक बनूँगी।" तब बिरसा ने जंगल माँ को कुछ न समझे कुछ न जानते हुए अपने साहस के साथ वचन देते हुए कहता है कि "करूँगा, करूँगा, तुम्हें शुद्ध करूँगा। हाय, तुम मेरी माँ तो हो ही, तुम सारे मुंडाओं की माँ हो; तुम्हारे होते घर की छत, घर की दीवारें, भूख के लिए कंद-फल-मूल-खरगोश-सुअर-साही-हिरन-चिडियों वगैरह का मांस है, माँ।"[30] इस प्रकार एक महापुरुष को ही सौभाग्य मिलता है। उनके 'उलगुलान' की केवल तीन शर्तें थी ।

"जमींदार को लगान नहीं देंगे !

बिना कर के जमीन चाहिए!

जंगलों पर फिर से आदि-जातियों का अधिकार होना चाहिए!" [31]

सन् 1897 से 1900 के बीच मुंडाओं और सिपाहियों के बीच युद्ध होते रहे और बिरसा और उसके चाहने वाले लोगों ने अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया। अगस्त, 1897 में बिरसा और उसके चार सौ सिपाहियों ने तीर-कमानों से लैस होकर खुट्टी थाने पर धावा बोला। 1898 में तांगा नदी के किनारे मुंडाओं की भिड़ंत अंग्रेज सेनाओं से हुई जिसमें पहले तो अंग्रेज सेना हार गयी लेकिन बाद में इसके बदले उस इलाके के बहुत से आदिवासी नेताओं की गिरफ्तारियाँ हुई।

जनवरी, 1900 में जहां बिरसा अपनी जनसभा को संबोधित कर रहे थे, डोम्बारी पहाड़ी पर एक और संघर्ष हुआ था, जिसमें बहुत सी औरतें और बच्चे मारे गए थे। बाद में बिरसा के कुछ शिष्यों की गिरफ़्तारी भी हुई थी। अंत में स्वयं बिरसा 3 फरवरी, 1900 को चक्रधरपुर में गिरफ्तार हुए। अंग्रेज तथा जमींदारों के खिलाफ, उनके शोषण के खिलाफ तथा अपने अधिकार की माँग करते हुए बिरसा ने 25 वर्ष की अल्पायु में ही प्राण निछावर कर दिया। परंतु आंदोलन, क्रांति, उलगुलान की चिंगारियाँ बुझी नहीं, नष्ट नहीं हुई, जैसे-जैसे दिन बितते गए, उन्होंने ज्वालाओं; शोलों का रूप धारण किया अंत में प्रचंड आग बनकर अंग्रेजी कुटिल राजनीति से स्वतंत्रता प्राप्त की। इस उलगुलान में जैकब, सुरेन बैनर्जी, डॉक्टर अमूल्य, भरमी, धानी,गया मुंडा, साली आदि का विशेष योगदान रहा है।

अतः भारतवर्ष के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में बिरसा मुंडा का नाम और विद्रोह अनेक दृष्टियों से स्मरणीय और सार्थक है। इस उलगुलान को जन-मन में भरने का काम महाश्वेता देवी ने अपने उपन्यास

---

[30] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 87

[31] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 194

'जंगल के दावेदार' आदिवासी-संघर्ष की महागाथा के रूप में किया है। धरती, पत्थर, पहाड़, वन, नदी, ऋतु के बाद ऋतु का आगमन संघर्ष भी समाप्त नहीं होता। इसका अंत हो ही नहीं सकता। पराजय से संघर्ष का अंत नहीं होता। वह बना रह जाता है आदि, क्योंकि मानुष रह जाता है, हम रह जाते हैं, उलगुलान रह जाता है।

2.2.2 'धरती आबा'

बिरसा मुंडा आदिवासी समाज के अधिनायक एवं एक कुशल योद्धा थे। दिकूओं के खिलाफ उलगुलान आरंभ करने का समग्र श्रेय 'धरती आबा' बिरसा मुंडा को ही दिया जाता है। बिरसा मुंडा प्रथम ऐसे व्यक्ति है जिन्होंने अपने आदिवासी बांधवों के मन में स्वाभिमान एवं उलगुलान की शक्ति का संचार कर उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागृत किया था। इस महापुरुष के समाज कार्य तथा जीवन पर हिंदी में अनेक विद्वानों एवं रचनाकारों ने महत्त्वपूर्ण कृतियाँ रची हैं। उन्हीं में से एक महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय कृति हैं 'हृषीकेश सुलभ' की 'धरती आबा'। प्रस्तुत रचना नाटक है। इस पुस्तक में बिरसा मुंडा का लगभग समग्र जीवन काल को बहुत ही रोचकता से दर्शाया है। और बिरसा मुंडा का समग्र जीवन ही रचनाकारों ने उनके महत्त्वपूर्ण प्रसंगों के माध्यम से पाठकों के सामने रखा हैं। प्रस्तुत रचना की विशेषता यह है कि इसमें बिरसा मुंडा की विचारधारा अपने आदिवासी समाज के हितों की रक्षा तथा अंग्रेजों के साथ टक्कर आदि को अनेक सजीव प्रसंगों के माध्यम से उजागार किया गया है। यही कारण है कि यह रचना 'धरती आबा' बिरसा मुंडा के जीवन एवं संघर्ष को समझने में बहुत ही सहायक सिध्द होती है।

आज भी बिरसा मुंडा की विचारधारा एवं उनका उलगुलान प्रासंगिक है। उनकी आवश्यकता को नाटककार ने बिरसा मुंडा के स्वकथन के माध्यम से ही स्पष्ट किया है। नाटककार तत्कालीन परिवेश की निर्मिति में भी विशेष रूप से सफल रहे हैं। बिरसा अपनी सहयोगी धानी से कहते हैं कि "लौटकर आऊँगा मैं... जल्दी ही लौटूँगा मैं अपने जंगलों में, अपने पहाडों पर।... मुंडा लोगों के बीच फिर आऊँगा मैं।... तुम्हें मेरे कारण दुख न सहना पड़े, इसलिए माटी बदल रहा हूँ मैं।... उलगुलान खत्म नहीं होगा। आदिम खून है हमारा।... काले लोगों का ख़ून है यह। भूख...लांछन... अपमान... दुःख...पीड़ा ने मिल-जुलकर बनाया है इस ख़ून को। इसी ख़ून से जली है उलगुलान की आग। यह आग कभी नहीं बुझेगी...कभी नहीं।...जल्दी ही लौटकर आऊँगा मैं।"[32]

[32] धरती आबा- पृ. सं. 19-20

जब उनके साथी धानी उनसे पूछते है कि तू मिशन छोडकर क्यों चला आया तब स्वाभिमानी बिरसा मुंडा कहते हैं "वे मुंडाओं को गाली देते हैं।... उन्होंने मुंडा को भिखारी कहा था।... भिखारी की तरह मिशन में आते हैं और भीतर सरदारों का साथ देते हैं। विश्वासघात करते हैं।"[33]

बिरसा मुंडा के अनुसार अपने समाज बांधवों पर लगाये गए झूठे आरोपों को सह नहीं सके और उन्होंने मिशन छोड़ दिया। इस प्रसंग में बिरसा मुंडा का स्वाभिमानी रूप दिखाई पड़ता है। प्रस्तुत नाटक में अनेक ऐसे प्रसंग तथा दृश्य हैं जिससे बिरसा मुंडा का प्रगतिशील रूप पाठकों के सामने उभर कर आता है। आदिवासियों की जमीन कब्ज़ा करने की प्रक्रिया निरंतर रूप से आज भी जारी है। उसके बिना, उनको बिना सूचित किये ही उनकी जमीन अधिग्रहण की जाती है या जोर-जबर्दस्ती से छीन ली जाती है। वह समस्या तब भी थी और आज भी है। नाटक के एक प्रसंग में भी वह दिखाया है जब बिरसा मुंडा जमीन पर अपना दावा करने के लिए एक सरकारी बाबू के पास अर्जी लेकर जाता है तो वह बिरसा मुंडा का मजाक बनाते हुए उसे अपमानित करता है। इस पर बिरसा क्रोधित होकर उस बापू से कहते हैं " साहब को आप...महाजन को तुम... और मुंडा को तू...। नीच समझता है मुंडा को ? सुन रे दिकू, मेरा नाम है बिरसा। बिरसा मुंडा।... ठीक से बात कर। मैं सरकार से नहीं डरता... हाँ रे दिकू, मार डालूँगा। कुचला के विषवाले तीर से मार डालूँगा तुझे।... मार डालूँगा...।"[34]

इसी प्रकार बिरसा सरकार तथा सरकारी बाबुओं का विरोध करता है। वह उनकी समग्र नीतियों का विरोध करता है। वह शासन-व्यवस्था को चुनौती ही देता है। इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में लेखक ने बिरसा मुंडा के क्रांतिकारी एवं आक्रामक रूप को इन संवादों एवं प्रसंगों के माध्यम से दर्शाया है। बिरसा मुंडा के अनेक महत्त्वपूर्ण रूपों को प्रस्तुत नाटक में उजागर किया गया है उन्हीं में से एक महत्त्वपूर्ण है अंधविश्वास एवं मानव विरोधी मान्यताओं का विरोध। बिरसा मुंडा तर्कवादी थे। समाज या आदिवासी समाज में बहुत सारी अनिष्ट परंपराएँ एवं मान्यताएँ प्रचलित थीं। इन सबका बिरसा मुंडा ने विरोध किया था। वह मूर्ति पूजा का विरोध करते हैं। इस संदर्भ में नाटक का एक प्रसंग उल्लेखनीय है। बिरसा कहते हैं "नहीं पुजूँगा अब किसी को।... किरस्तान बनकर देख लिया। यीशु की प्रार्थनाओं में अब नहीं उलझनेवाला मैं। तुलसी की पूजा नहीं... उस काले कृष्ण की भी पूजा नहीं।... वह काला ज़रुर है पर काले मुंडाओं का खून नहीं बहता उसकी नसों में।... और तुम्हें भी नहीं पुजूंगा सिंबोड़ा। तुम्हारे प्रेतों से नहीं डरना अब मुझे। तुम सबों ने मिलकर अँधेरा किया है चारों तरफ़। नहीं डरनेवाला अब मैं।...तुम्हारे सारे प्रेत झूठे हैं सिंबोड़ा,... झूठे।... यहीं गाड़ गए हैं लोग चाल्की को।... बच्चा जनते हुए मर गई चाल्की। जनमते ही मर गया चाल्की का

---

[33] धरती आबा- पृ. सं. 21-22

[34] धरती आबा- पृ. सं. 29

बच्चा। भूखे पेट गरभ ढोती रही चाल्की और मरी तो चाँदी की अँगूठी और पैसे के साथ उसे कबर में सुलाया कि परलोक में उसे बेचकर खाएगी।... वाह रे परलोक ! (विक्षिप्त की तरह हँसता हैं)... परलोक के लिए गाड़े गए धन पर मेरा अधिकार है।... उसका अधिकार है जो भूखा है। मैं इस कबर को खोद कर चाल्की की अँगूठी और पैसे निकालूँगा।... नहीं डरनेवाला मैं आत्मा से... सिंबोड़ा के प्रेतों से ... सिंबोड़ा से ।"[35]

बिरसा मुंडा के अनुसार जीते जी वह चाल्की को भरपेट खाना नहीं मिला अपना तन ढंकने के लिए कपड़ा नहीं मिला। सारा जीवन गरीबी एवं दयनीय स्थिति में गुजरा इसे मरने के बाद अँगूठी और पैसों के साथ कब्र में सुलाने का कोई मतलब नहीं है। मरने के उपरांत के लिए जानेवाले सभी कर्मकांड दिखावा एवं व्यर्थ है। बिरसा मुंडा भी इन्हीं दिखावे और कर्मकांड का विरोध करते हैं। बिरसा मुंडा का मानना है कि भूख सबसे ताकतवर होती है भगवान से भी। वह आगे कहता है "यही है अँगूठी...चाल्की की चाँदी की अँगूठी। मैं इसे बेचकर चावल खरीदूँगा। अपने बाबा और माँ को भात खिलाऊँगा।... भूख... भूख...सबसे ताकतवर होती है भूख। इस ताकत के आगे कोई नहीं टिक सकता। सिंबोड़ा के प्रेत भी नहीं टिक सकते ।"[36]

बिरसा मुंडा कहते हैं- "मैं बनूँगा आबा। मैं इस धरती का आबा बनूँगा।... मुंडाओं के सुख के लिए मैं मरने को तैयार हूँ।"[37] उनका समाज सेवक का रुप चेचक के प्रसंग में उभरकर आता है। चेचक की दहशत से सभी मुंडाओं में घबराहट के माहौल का निर्माण होता है। लेकिन उस समय धरती आबा बिरसा मुंडा बहुत ही धैर्य से काम लेते हैं। वह चेचक पर इलाज की खोज करते हैं। वह भयभीत मुंडाओं को चेचक से बचने का रास्ता निकालते हुए सूचना देते हैं कि "जिसको चेचक नहीं निकली है, वे सब नीम के पत्ते सिंझाकर पानी पी लें। उसी पानी से देह भी पोंछे। जिसको चेचक हुआ है पर दाने नहीं निकले हैं, वे सफेद तुलसी का रस अदरख में मिलकर पी लें। दाने निकलेंगे और उसे आराम मिल जाएगा। फिर उसे करेले के पत्ते और हल्दी का रस पिलाओ। जो रोगी की सेवा करे, वह दूसरों से अलग रहे। जिसको चेचक नहीं हुई है, वे सब साथ रहें।"[38] वह अपने अदिवासी समाज को किस प्रकार सजग या सचेत करते हैं इस नाटक के एक प्रसंग के माध्यम से देखा जा सकता है। बिरसा का उध्दरण है कि- "सुनो, बनिया, महाजन, दिकू और जमींदारों पर नज़र रखो।...ये सब मुंडाओं के बैरी हैं। इन लोगों को अपनी सभा-संगत में मत आने दो। मैं आज से किसी जमींदार, महाजन, बनिया और दिकू से बात नहीं करूँगा।" [39]

---

[35] धरती आबा- पृ. सं. 30-31
[36] धरती आबा- पृ. सं. 31-32
[37] धरती आबा- पृ. सं. 35
[38] धरती आबा- पृ. सं. 39
[39] धरती आबा- पृ. सं. 44

इस प्रकार बिरसा मुंडा अपने आदिवासी समाज को अपने दुश्मनों से दूर रहने के लिए कहते हैं। क्योंकि उनको पता है कि वह धोखेबाज है और वह आदिवासी समाज का अहित चाहते हैं। प्रस्तुत नाटक में बिरसा अपने समाज का कदम-कदम पर नेतृत्व करते हुए दिखाई पड़ते हैं। वह अपने समाज को मुक्ति एवं विकास का रास्ता दिखाते हैं। वह अन्याय, अत्याचार का प्रतिरोध करने की शक्ति का संचार अपने समाज, बांधवों में करते हैं। वह जमीन हथियारवाले दिकूओं से लड़ने के लिए तैयार हैं। वह कहते हैं "सुनो, अब सुनो मेरी बात। सारे मुंडा गरदन तक मुसीबत में धँसे हुए हैं। दिकूओं ने मुंडाओं को उधार-करजा-जेहल-कचहरी के चक्कर में फाँसकर रखा है। अब इस हर फाँस को अपने गले से निकालकर बाहर फेंकना होगा। अब हम किसी को कोई लगान नहीं देंगे... कोई सूद नहीं भरेंगे... खेती गिरवी रखकर कोई मुंडा अनाज उधार नहीं लेगा। उधार-करज एकदम बन्द। कुली बनने के लिए जंगल छोड़कर कोई चायबगान नहीं जाएगा। अब मुंडा कोयला के खानों में घुसकर कोयला निकालते हुए जान नहीं देगा। सारे बाहरी लोगों को, अंग्रेज़ हों या दिकू-महाजन, हम जंगल से भगा देंगे। सारे जंगल ले लेंगे। ये जंगल हमारा है।"[40]

इसी तरह बिरसा मुंडा जंगलों पर अपना अधिकार जताते हैं। वह जंगल को अपनी माता मानते हैं तथा अपनी माता की रक्षा करने के लिए हर हाल में तत्पर रहते हैं। आदिवासी समाज का जीवन बहुत सुसंपन्न एवं समृद्ध था। वह अपने ही मस्ती, धुन में जीते थे। खुश रहते थे अपने जंगलों में। लेकिन अंग्रेजों के आगमन पर उनके जीवन में बहुत जल्दी ही परिवर्तन आया। उनको अपने ही जंगलों में प्रवेश निषिध्द हुआ। वह अपने ही घरों में निराधार हुए एवं उन पर भूखे रहने तक की नौबत आ गई। इसी दयनीय स्थिति को नाटककार ने करमी नामक पात्र के संवाद के माध्यम से उजागार किया है। करमी बिरसा मुंडा की माँ है। वह अपने बेटे बिरसा मुंडा को अपनी स्वर्ण भूत-काल की परिस्थिति को बताते हुए कहती है कि- "पहले नहीं था रे। पहले मुंडाओं के पास इतना दुःख नहीं था।... सब कुछ था हमारे पास। हमारे मंदिर थे... हमारे देवता थे... हमारी धरती थी, पर जब से दिकू आए हम भिखमंगे होते गए।... अब इसी धरती को भगवान की, तेरी जरूरत है।... तू भगवान है तभी तो तेरी पुकार पर सारे मुंडा दौड़े चले आए।... मुझे बहुत डर लगता है मेरे आबा।"[41]

इस प्रकार दिकूओं ने आदिवासी समाज का जल-जंगल-जमीन पर कब्ज़ा कर उन्हें कंगाल किया है। प्रस्तुत नाटक में युद्ध के भी प्रसंग है। इसे बिरसा मुंडा का उलगुलान कहा जाता है। यह लड़ाई अपने हकों को लिए लड़ी जा रही थी। अपने सम्मान के लिए लड़ी जा रही थी। बिरसा मुंडा इस उलगुलान में शामिल होने के लिए किसी पर दबाव नहीं डालते हैं वह कहते हैं "यह उलगुलान हँसी-खेल नहीं है। मैं नहीं चाहता

[40] धरती आबा- पृ. सं. 45-46

[41] धरती आबा- पृ. सं. 61

कि कोई मेरे साथ आँख मूँदकर उलगुलान में शामिल हो ।"[42] वह अपने समाज, बांधव के हितों एवं "दूसरी हथियारों से की लड़ाई की राह है ।... पर यह भी कम कठिन नहीं है । सब कुछ छूट सकता है... घर-परिवार, औरत बच्चे । बिन पानी और बिन अनाज के रहना पड़ेगा । जेहल जाना पड़ सकता है । जान जा सकती है ।"[43] बिरसा मुंडा की इन बातों में उनकी उलगुलान के प्रति जो त्याग की प्रवृत्ति है वह दृष्टिगोचर होती है ।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि यह नाटक 'धरती आबा' ऐतिहासिक नाटक है । जिसका आधार बिरसा मुंडा का जीवन है । इसमें उनके जीवन की समग्र घटनाओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है । इनके व्यक्तित्व पर मुख्य रूप से प्रकाश डाला गया है । उनके अपने समाज के प्रति जो समर्पण निष्ठा है । वह उन्हें भगवान का स्थान दिलाती है । इसलिए आज भी आदिवासी समाज में बिरसा मुंडा भगवान की भाँति पूजनीय है । बिरसा मुंडा के जीवन एवं कार्य पर अनेक रचनाकारों ने प्रकाश डाला है । उन्हीं में से एक है हृषीकेश सुलभ जिन्होंने 'धरती आबा' नामक नाटक के माध्यम से बिरसा मुंडा के चरित्र को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है ।

2.2.3 'ओ मेरे बिरसा' (कविता)

भुजंग मेश्राम द्वारा लिखित 'ओ मेरे बिरसा' यह कविता 'समकालीन आदिवासी कविता' संग्रह से ली गयी है । जिसका संपादन 'हरिराम मीणा' ने किया है । इस संग्रह में इसके अतिरिक्त अन्य आदिवासी कवियों की कविताएँ प्रकाशित हैं ।

भुजंग मेश्राम आदिवासी रचनाकार के रूप में ख्यात है । वे मूलतः मराठी के लेखक हैं उन्होंने मराठी में भी आदिवासियों के जीवन-संग्राम पर उनके रचनाएँ लिपिबध्द की हैं । उनके लेखन का मूल उद्देश्य आदिवासी समाज में जागृति तथा आत्म स्वाभिमान की ज्योत जलाना है ।

'ओ मेरे बिरसा' इस कविता में वह बिरसा मुंडा के उलगुलान के महत्त्व को उजागार करते हुए लिखते हैं "जिस दुश्कर राह पर तू चला है वह आज राजमार्ग बन कर बसा है ।[44]" अर्थात् आपके उलगुलान को आधार बनाकर लोग आज अपनी अस्मिता तथा अधिकार की मांग हेतु संगठित हुए हैं । उनका उलगुलान व्यापक स्तर पर फैल चूका है । इस उलगुलान के मूल्य के आधार के रुप में वे बिरसा को ही मानते हैं ।

आज लोग इतने सारे होते हुए भी केवल आपकी प्रतीक्षा में वे ही व्यथित होकर आपकी राह देख रहे हैं । लेखक कहते हैं वे जब आश्रम की शाला में जाते हैं तब उन्हें नन्हें बच्चे पूछते हैं "काका बिरसा मुंडा

[42] धरती आबा- पृ. सं. 76-77

[43] धरती आबा- पृ. सं. 77

[44] समकालीन आदिवासी कविता- पृ. सं. 32

कहाँ रहता है ?"[45] तब वे उनकी स्वप्नभरी बातों को सुनकर स्तब्ध होकर अपना बयान बदलने के लिए मजबूर होते हैं।

अर्थात् छोटे-नन्हें बच्चो से लेकर तमाम लोग आपकी प्रतीक्षा में हैं जहाँ तक की माँ सवेरे सवेरे चक्की चलाते समय आपका ही स्मरण करती है, पहाड़ों से उतरती औरत भी, मजदूर, खेतों की रखवाली करनेवाले, जानवर चरानेवाले आदि सभी की जुबान पर आपका ही नाम होता है।

2.2.4 बिरसा मुंडा की याद में.... (कविता)

'बिरसा मुंडा की याद में' कविता के कवि 'हरिराम मीणा' हैं। यह कविता 'सुबह के इंतजार में' कविता-संग्रह से ली गयी है। प्रस्तुत कविता में बिरसा मुंडा के जीवन कार्य को रेखांकित किया है। इस कविता में बिरसा मुंडा की कैद से लेकर मृत्यु तक के काल को दर्शाया है। कवि कहता है कि बिरसा मुंडा केवल व्यक्ति नहीं वह एक आंधी है जो दिकूओं के अन्याय, अत्याचार को नष्ट करने की क्षमता रखती है।

कवि लिखता है कि बिरसा मुंडा केवल एक मानवी देह नहीं है अपितु वह इस जंगल का पुश्तैनी दावेदार है। बिरसा मुंडा को उनके सामाजिक हित के कारण 'धरती आबा' कहा जाता है फिर कवि कविता में बिरसा मुंडा के कैद की तारीख बताकर उनकी जेल में क्या स्थिति थी ? उसे बताते हैं-

"नौ जून, सन्....उन्नीस सौ
सुबह नौ बजे-
वह राँची की आतताई जेल
जल्लादों का बर्बर खेल
अन्ततः....
बिरसा की शान्त देह ! ।"[46]

बिरसा की जीवित देह और मृत देह दोनों ही अंग्रेज के लिए भय का कारण बनी रही थी। आगे कवि बिरसा मुंडा की जेल में हुयी दयनीय स्थिति का वर्णन करता है-

"कुछ देर पहले ही तो हुई थी खून की कै
जेल कोठरी के मनहूस फर्श पर
उसी के ताजा थक्के....

---

[45] समकालीन आदिवासी कविता- पृ. सं. 32

[46] सुबह के इंतजार में- पृ. सं. 10

नहीं !

वे लग रहे थे-

हाल ही कुचले पलाश के फूल

या

खौलते लावा की थोड़ी-सी बानगी ।"[47]

बिरसा मुंडा की जब जेल में मृत्यु होती है तब अंग्रेज ऑफिसर परेशान हो जाते हैं क्योंकि बिरसा के नाम का भय इतना था की वह मृत्यु के बाद भी उनको दफ़नाने के लिए रात का भी इंतजार नहीं करते हैं।

मानव बिरसा मुंडा उनके लिए जहरीले साँप से भी खतरनाक था। कवि आगे लिखते हैं कि इस कविता में बिरसा मुंडा को दफनाया नहीं बल्कि रात के अँधेरे में जलाया था। कवि आगे कहते हैं कि बिरसा केवल आदमी नहीं थे वह आबा थे भगवान थे और थे जंगल के दावेदार। उनकी आवाज आज भी जंगल में गूंजती है बिरसा मुंडा मरे नहीं वह आज भी जन-जन में मन-मन में जीवित है ।

2.3 कोमरम् भीम का परिवेश एवं आंदोलन

आदिवासी समाज में वीरों की एक लंबी परंपरा चली आयी है। उनमें से एक महत्त्वपूर्ण कोमरम् भीम, गोंड आदिवासी समाज के वीर नायक हैं। कोमरम् भीम, बिरसा मुंडा, सिदो-कान्हू, टंट्या भील और गोविंद गुरु आदिवासी नायकों के भांति अपने आदिवासी समाज के लिए, उनके हक़ के लिए, उनकी अस्मिता के लिए, अंग्रेजों से लड़े थे। उनको यह बिल्कुल मान्य नहीं था की परंपरा से जल-जंगल-जमीन के सहारे फलते आये आदिवासियों को अचानक निष्कासित किया जाय। क्योंकि उनकी समग्र आजीविका का आधार जंगल ही था। और वे उसका रक्षण करते आए थे। लेकिन तत्कालीन सत्ता, निज़ाम सरकार ने आदिवासियों को वहाँ से हटा दिया और जल, जंगल और जमीन पर अपना कब्ज़ा कर लिया। एक लंबे समय से स्वंतत्र रूप से जंगल में भ्रमण करने वाला आदिवासी समुदाय अब उसे निज़ाम की आज्ञा लिए बिना प्रवेश की अनुमति भी नहीं थी। इससे आदिवासियों को भूखा रहने की नौबत आ गयी। वह अपने जंगल में असहाय एवं निराधार महसूस करने लगे। निज़ाम के सैनिक उन पर अमानवीय अत्याचार करने लगे।

इसमें केवल निज़ाम के सैनिक ही नहीं वे अपितु जमींदार, साहूकार आदि लोग भी उनकी अज्ञानता का लाभ उठाकर उन पर अत्याचार करते थे। उनसे अपने खेतो में काम तो करवा लेते थे लेकिन उसकी मजदूरी नहीं देते थे। इन सब की मिली भगत थी। इनके अन्याय, अत्याचारों के बोझ से दबा हुआ आदिवासी

---

[47] सुबह के इंतजार में- पृ. सं. 11

समुदाय कुछ नहीं कर सकता था। लेकिन जिस तरह धरती आबा बिरसा मुंडा ने अपने मुंडा आदिवासी समाज को अधिकार, अस्मिता का अहसास दिलाया और जंगल में क्रांति की चेतना सुलगाई थी उसी प्रकार तेलंगाना में कोमरम् भीम का कार्य रहा। कोमरम् भीम का यह कार्य उनके समय में एक महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक क्रांति थी। उन्होंने निज़ाम सैनिकों का एवं जमींदारों के जुल्म का विरोध किया। गोंडों में एक नयी शक्ति का संचार कर दिया। उनका यही कार्य आज के समय में भी प्रासंगिक है।

2.3.1 कोमरम् भीम का जन्म एवं परिवार

कोमरम् भीम का जन्म 27 सितंबर, 1900 में आदिलाबाद जिला के असिफाबाद (असिफाबाद-कोमरम् भीम नया जिला) में संकेपल्ली गाँव में हुआ था। कोमरम् भीम के जन्म तिथि को लेकर विद्वानों में मतभेद है। विकिपीडिया में कोमरम् भीम की जन्म तिथि 22 अक्टूबर, 1901 बताई गयी है। तो अन्य किताबों में अलग-अलग तिथियाँ बताई गयी है।

कोमरम् भीम के पिता का नाम चिन्नु और माता का सोम बाई था। कोमरम् भीम के परिवार की आर्थिक परिस्थिति बहुत ही ख़राब थी। इन्हें दो जून की रोटी के लिए दर-दर भटक कर काम करना पड़ता था। कभी-कभी भूखे पेट रहना पड़ता था। ऐसी स्थिति में कोमरम् भीम के पिता बीमार पड़ गये और उसी कारण उनका निधन हो गया। इसके बाद इनके परिवार का भरण-पोषण का काम इनके चाचा ने किया।

कोमरम् भीम की माँ हमेशा खेतों के कामो में व्यस्त रहती थी। उनको दूसरी बातों का खयाल तक नहीं रहता था। पिताजी "गूडेम (गाँव)" में पटेल होने के नाते कुछ तो काम करते थे। "भीम के पिता चिन्नु को दो भाई थे। एक कोमरम् कुर्दु था तो, दूसरा कोमरम् यशवंत। यशवंत को सभी लोग 'येसू' कहकर पुकारते थे। बड़े भाई चिन्नु के साथ खेतो में काम करते हुए उसी गुडेम में रहते थे। वह गुडेम में कब बस गए इनके बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं थी।

कोमरम् कुर्दु को पांच बेटे थे। उसमें दोनों सुद्दु, जंगु भीम से बड़े थे। और रघु, सोमु उन्हीं के हम उम्र थे। और बादु छोटा था। उसकी तरह कोमरम् येसु को तीन बच्चे थे। लच्चु, रामु, राजु, भीम के साथ खेलने वाले रामु, राजु थे।"[48]

2.3.2 परिवेश

कोमरम् भीम की आजीविका जंगलों पर निर्भर थी। उनको अपनी आजीविका के लिए हर दिन सुबह उठकर महुआ इकट्ठा करने के लिए अपनी भाभी (कुकू) के साथ जाना पड़ता था। उनको जंगल का

[48] आदिवासी वीरुडु कोमरम् भीम- पृ. सं. 25

कोना-कोना पता था। उनकी वह दूसरी माँ ही थी क्योंकि वह ही उनका जीने का आधार थी। उनको जन्म भले ही उनकी माँ ने दिया हो लेकिन यह जंगल रूपी माँ उनका पेट भरती थी। केवल कोमरम् भीम का परिवार नहीं अपितु समग्र आदिवासी समुदाय जंगल के सहारे जीता था। वह जब अपने भाभी के साथ जंगल में जाते थे तब भाभी उनको आदिवासी समुदाय में हुए पराक्रमी पुरुषों की कथाएँ सुनाती थी। भाभी चाहती थी की कोमरम् भीम साहसी एवं निडर हो जाए। वह उन पराक्रमों की चर्चा विस्तृत रूप से करती थी। इस वजह से कोमरम् भीम का व्यक्तित्व साहसी हुआ। उनका मन भी पराक्रमी पुरुष की भांति कुछ करने के लिए व्याकुल रहता था। एक अंत्यत पराक्रमी पुरुष की कहानी भाभी ने कोमरम् भीम को बतायी थी। जंगुदादा किस प्रकार भालू से लड़े थे। "एक दिन सुबह सभी की तरह जंगुदादा भी महुआ के फूल चुनने जंगल की ओर निकल पड़ता है। पूर्व दिशा की खाई में महुआ फुल चुनते हुए अचानक भालू आ जाता है। भालू को देखते ही जंगुदादा डर जाता है। भालू आकर महुआ के फूल गिरा देता है। तब जंगुदादा भालू से लड़ता है। हाथ में लिए लाठी से मारता है। उससे भालू क्रोधित होकर आक्रमण करता है। जंगुदादा भालू को क्रोधित देखकर भाग निकलता है। भागकर वह एक पेड़ पर चढ़ जाता है। लेकिन वह छोड़ता नहीं पेड़ चढ़ने की कोशिश करता है। उसको देखकर जंगुदादा एक टहनी को पकड़कर नीचे कूदता है। पेड़ पर चढ़ते हुए भालू के सामने की टांग पकड़कर बांधता है। एक तरफ जंगुदादा दूसरी ओर भालू और बीच में पेड़। दोनों हाथों से उनको लगातार पीटता है। भालू पेड़ को टक्कर मारता है। उसके सिर से खून निकलता है। उस समय गुडेम से बहुत लोग लकड़ी लेकर आते हैं। वे पीछे से भालू को मारते हैं जंगुदादा भालू को नहीं छोड़ता है। भालू दांतों से डराकर जंगल की ओर भाग जाता है।"[49]

इस तरह कोमरम् भीम के व्यक्तित्व को साहसिक बनाने में मोतिराम दादा की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वह उन्हें अपने पूर्वजों के साहसिक कथाएँ सुनाते थे। इसका यह असर हुआ की कोमरम् भीम के मन में अत्याचार एवं अन्यायों के खिलाफ प्रतिकार करने की प्रेरणा का संचार हुआ।

इसके अतिरिक्त गाँव में भजन गाने वाले लोग भी वीर पुरुषों के पराक्रमों का गुणगान करते थे। यह उनके लिए प्रेरणा स्रोत था। यह उनकी भजन-मंडली वीर पुरुषों के वीर पराक्रमों का रसों में वर्णन करते थे। कोमरम् भीम को क्रांतिकारी बनाने में गुडेम के भजन-मंडली का बहुत बड़ा योगदान है। भजन मंडली ही विशेष कर गोंड संस्कृति, आचार, व्यवहार को भी भजन में गाते थे। इनके अलावा प्रधान रूप से भीम को प्रेरित करनेवालों में से गोंड समुदायों के कवि, गायक, पुरोहित वे भी गोंड के राजाओं की वीर गाथाओं को सुनाते थे। जिसमें "भीलाल सिंह, भीम भिलाल शा, केसरी सिंह, राम सिंह दिनकर, अंकमराजु। इनकी

[49] कोमरम् भीम (जीवितम्-पोराटम)- पृ. सं. 7-8

कथाएं भीम के व्यक्तित्व को प्रेरित करती थी। भीम को विशेष रूप से आकर्षित तथा उनको अधिक प्रेरणा देनेवाली आंदोलन की कथा रामजी गोंड की थी।"[50]

कोमरम् भीम अब पूरी तरह से निडर बन गए थे क्योंकि उन्होंने एक जंगली सूअर को मारा था। इसका उल्लेख साहु-अल्लम राजय्या के उपन्यास 'कोमरम भीम' में मिलता है "भोजु और कोमरम् भीम फसल की रखवाली के लिए गए थे। बहुत रात होने के कारण दोनों भाईयों को नींद आ जाती है। उस समय अचानक आवाज आती है तब भीम नींद से उठता है तो खेत में सूअर का झुंड आ पड़ा था और गुडेम वाले सूअर को लाठी से भगा रहे थे। भीम भी उनके साथ दौड़ने लगा। भीम की ओर एक सूअर आता है। भीम डरता नहीं और सूअर को देखकर भीम सामने के पत्थर के टीले पर जा खड़ा हुआ तथा सूअर गुस्से में होने के कारण उस पत्थर के टीले को आकर टक्कर दिया। और उसका सर दो टुकड़ा हो जाता है वहीं प्राण छोड़ देता है जिससे गुडेम वाले उस सूअर का माँस खाकर त्यौहार मनाते हैं। और भीम के साहस और धैर्य का गुणगान करते हैं।"[51]

कोमरम् भीम को क्रांतिकारी एवं साहसिक बनाने में आदिवासी गोंड राजा रामजी गोंड की अविस्मरणीय भूमिका रही है। सबसे ज्यादा इसका प्रभाव कोमरम् भीम के मन पर पड़ा। कोमरम् भीम ने अपने जीवन में जितने भी साहसिक कार्य एवं क्रांतियाँ की हैं वह रामजी गोंड के व्यक्तित्व की प्रेरणा से ही की है। और एक पराक्रमी पुरुष अल्लुरी सीताराम राजु के भी कार्य का प्रभाव भी गहराई से उनके मन पर पड़ा था।

इस प्रकार कोमरम् भीम के साहसिक चरित्र को बनाने के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण पराक्रमी पुरुषों का योगदान रहा है। कोमरम् भीम ने जो भी जुल्म के खिलाफ हथियार उठाया है उसके पीछे इन वीरों की कथाओं की पृष्ठभूमि रही है।

2.3.3. कोमरम् भीम का आंदोलन

आदिवासियों का अतीत वीरता एवं गौरवपूर्ण रहा है वह अपने में मस्त रहते थे। वह सदियों से प्रकृति के सहारे अपना जीवन-यापन करते आये थे। उनको अपने अलावा जीवन में किसी का हस्तक्षेप कदापि मान्य नहीं था। लेकिन उनके साथ अंग्रेजों के शासन से यही हो रहा है कि लोग उन पर जुल्म कर

[50] कोमरम् भीम (जीवितम्-पोराटम्)- पृ. सं. 6

[51] कोमरम् भीम, साहु-अल्लम राजय्या- पृ. सं. 5-6

उन्हें गुलाम बनाने की कोशिश करते रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में ही उनमें विद्रोह की भावना फूट पड़ी है और वे अपने अधिकारों एवं अस्तित्व के लिए लड़ते आ रहै हैं।

आदिलाबाद जिले के अंतर्गत अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं। उनमें गोंड, कोलाम, प्रधान, चेंचु, कोय्या, बिल्लुलू, एवं लंबाडी आदि जनाजातियाँ प्रमुख हैं। इन जनजातियों की विशेषताएँ यह है कि मेहनत को अधिक प्रधानता देते हैं। भूमि ही इनके जीवन का सहारा है। यह समतल जगहों में न रहकर बड़े-बड़े पहाड़ों में रहते हैं।

कोमरम् भीम का विद्रोह फलतः अपने हकों के लिए था। उन्होंने जुल्म करने वालों का हमेशा विरोध किया था। उनमें यह चेतना अपनी भाभी की कहानियों के माध्यम से उभरी थी। उनके परिवेश का यह असर था कि विद्रोह के गुण उनमें बचपन से ही था। आदिवासी समुदाय पूर्ण रूप से जंगल पर निर्भर था। वह अपनी जीविका के लिए जंगल से पेड़ काटकर खेती लायक जमीन तैयार करते थे। उसमें मेहनत करते थे। बीज बोते थे। उस फसल की रात-दिन जंगली जानवरों से रक्षा करते थे और फसल को तैयार करते थे। लेकिन फसल काटने का अधिकार तथाकथित जमींदार उनकी बनी बनायी फसल पर अपना हक़ जताकर उसे काटकर अपना घर भरते थे। और आदिवासी समुदाय हताश एवं निसहाय होकर बस देखता रहता था। कोमरम् भीम ने अपने बचपन में ऐसी बहुत सारी घटनाएँ देखी थीं। इस तरह जमींदारों का जुल्म देखकर उनका खून खोल उठता था।

कोमरम् भीम का इसी संदर्भ में एक प्रसंग उल्लेखनीय है। जब एक दिन उनके गुडेम निज़ाम का सहायक पट्टेदार सिद्दिक और पटवारी लक्ष्मण राव उनके घर जाते हैं। तब वह उनके घर में जूते सहित प्रवेश करते हैं जो कि उनकी परंपरा के खिलाफ है। क्योंकि आदिवासियों में यह धारणा है कि जूते पहनकर नहीं जाना चाहिए। वह सिद्दिक और पटवारी लक्ष्मण राव उनके उनकी जमीन पर अपना हक़ जताकर फसल की माँग करते हैं। उस समय उसके साथ पटवारी लक्ष्मण राव, कोमरम् भीम के घर के सदस्यों को कहता कि यह सभी जमीन सिद्दिक साहब की है। आपने उस पर जो फसल उगाई उस पर सिद्दिक साहब का हक़ है। अब उन्हें फसल दीजिए। इससे उनके मन को गहरी चोट लगी। और कहने लगे की सूद, किराई देने को कहा। तब भीम ने क्रोधित होकर सिद्दिक को लकड़ी से मारा और वहीं उनकी मृत्यु हो गई जिसके संदर्भ में विद्वानों में मतभेद है। साहु-अल्लम राजय्या ने 'कोमरम् भीम' उपन्यास में लिखा है कि- "सिद्दिक की ओर येसु (चाचा) लाठी से मारने के लिए जा रहे थे। तो सिद्दिक बंदूक से शूट करते हुए, उसी समय कोमरम् भीम ने सिद्दिक को पीछे से मारा। उसी से सिद्दिक की मृत्यु हो गयी।"[52]

[52] कोमरम् भीम (जीवन-आंदोलन), कसुला प्रताप रेड्डी- पृ. सं. 13

सिद्दिक मरने के बाद कोमरम् भीम घबरा जाता है उनको पुलिस द्वारा गिरफ्तार करने का डर लगता है। इसलिए वह वहाँ से जंगली पहाड़ियों से होकर अपने दोस्त कोंडल के पास संकेपल्ली गुडेम चला जाता है। ऐसी स्थिति में कोमरम् भीम को अपने पिताजी की बात याद आती है कि जब संकट में हो तो मुखासी के पास जाओ। इसलिए वह भारीलोद्दी (गुडेम) के मुखासी के पास जाता है। और वह अपनी समस्या को कहता है। तब मुखासी ने इस बात को नकार था। उससे भीम क्रोधित होकर कहता है कि "आप मुखासी है। सौ गाँव आपके अधीन हैं। आपकी आज्ञा से इन सौ गाँवों के सौ जवान को इकट्ठा कर सफ़ेद अंग्रेजों को निकाल फेंकते हैं। रामजी गोंड की तरह युद्ध करेंगे।"[53]

उपर्युक्त कथन के माध्यम से भीम निज़ाम सरकार से लड़ने की बात करते हैं। लेकिन मुखासी निज़ाम के साथ लड़ने में अपनी असमर्थता दर्शाता है। कोमरम् भीम वहाँ से निराश होकर दोस्त के साथ 'बल्लारशाह' जाता है। वहाँ उनको 'विटोबा' नामक व्यक्ति मिलता है। वह भीम और उनके दोस्त को अपने साथ 'चंदा' ले जाता है। वहाँ विटोबा के पेपर प्रेस में काम करते हैं।

कोमरम् भीम और उनका दोस्त उस प्रेस में काम कर अपनी आजीविका चलाते हैं। कोमरम् भीम वहाँ अनेक भाषाएँ सीखते हैं। विटोबा उनको पढ़ना-लिखना भी सिखाता है। कोमरम् भीम का दोस्त वहाँ से निकल जाता है। लेकिन कुछ दिनों बाद विटोबा को उनकी गुप्त क्रांतिकारी गतिविधियों के लिए पुलिस गिरफ्तार करके ले जाती है। साथ-ही-साथ भीम को भी ले जाती है। उनसे पूछताछ करते हैं और उन्हें छोड़ देते हैं।

वहाँ से कोमरम् भीम एक व्यक्ति के साथ असम के चाय, काफी के बागानों में काम करने के लिए चला जाता है। वहाँ पर मेस्त्री (मुनिम) मजदूरों पर बहुत जुल्म करते थे। कोमरम् भीम इन जुल्मों को सहन नहीं कर पाते। और एक दिन वह मेस्त्री को बहुत मारता है। इसीलिए उनको गिरफ्तार कर जेल में बंद किया जाता है। लेकिन वहाँ पर उन्हें मन्नेम् दोरा नामक व्यक्ति मिलता है वह उनको अल्लुरी सीताराम राजु और संथाल आदिवासियों की वीर गाथाएँ सुनाता है। कोमरम् भीम उससे प्रेरित होता है और वह भी अपने समाज के लिए, अपनी भूमि के लिए, लड़ने की प्रेरणा लेता है।

कोमरम् भीम पाँच साल बाहर गुजारने के बाद वह अपने गुडेम आ जाता है। तब तक उनका परिवार विघटित हो चुका होता है। वह अपनी आजीविका के लिए एक लच्चु पटेल के पास मजदूर के तौर पर काम करते हैं। वह लच्चु पटेल की जमीन निज़ाम के कब्जे से छुड़ाकर लाता है। यह देखकर अन्य लोग भी उनसे अपनी जमीन छुड़ाने के लिए विनती करते हैं। उसी समय कोमरम् भीम सबको साथ लेके अपनी जमीन

[53] कोमरम् भीम ((जीवितम्-पोराटम्), कासुला प्रताप रेड्डी- पृ. सं. 15

छुड़वाने के लिए निज़ाम के साथ लड़ने के लिए बात करते हैं। इसीलिए वह रामचंदर राव पैकाजी नामक वकील की सलाह लेते हैं। उन्हें वकील कहता है कि यह जुल्म करने वाले अधिकारियों की शिकायत तुम निज़ाम से करो। तब वह एक पत्र लिखते हैं यह पत्र साहु-अल्लम राजय्या द्वारा लिखा गया उपन्यास कोमरम् भीम में इस तरह बताया है-

"महाराजा निज़ाम सरकार को नमस्कार,

हम जनगाँव (असिफाबाद) जिला धनोरा इलाका के रहनेवाले गोंड और कोल्लाम हैं। हम जमीन न होने से दुखी हो रहे हैं। हम लोग कहीं पर जंगल काटकर फसल के योग्य जमीन बनाकर घरों में माल आने के समय में, पट्टेदार यह जमीन हमारी कहते हैं। जंगल में खेती करने वाले हमको जमीन न होने से हमारा जीवन-यापन कैसे होगा ? यह बात महाराजा निज़ाम सरकार को पता है नहीं क्या ! आदिवासियों को जमीन माँ की समान होती है, हम फसल उगायेंगे तभी तो लोगों को खाना मिलेगा। हमें भूमि नहीं हो तो कैसे ? किसी दिन भी हल नहीं पकड़ने वाले को, किसी दिन भी जमीन का मुंह नहीं देखने वाले पट्टेदार कहीं से भी आकर हमारे जंगल में हमारी जमीन कहते हैं। उनको हजारों एकड़ जमीन का पट्टा है। मिट्टी खाकर, मिट्टी में रहकर, फसल निकालने वाले हमको जमीन नहीं, पट्टा नहीं है। जंगल में रहते हुए काम करते जमीन का पट्टा उनके नाम पर कैसे है यह हमें पता तक नहीं ?

हम बहुत बार तहसीलदार, कलेक्टर को मिले। खेती के अलावा और कुछ पता नहीं हमें, हमारे जंगल में हमको जमीन चाहिए। कई बार प्रार्थना किये थे। हमारी स्थिति को सरकार को कहने को कहा था फिर भी हमारी दयनीय स्थिति की ओर ध्यान हीं नहीं दिया ? जंगलातवाले रिश्वत देने से जंगल काटकर जमीन करने को कहते हैं। इस तरह रिश्वत देकर जंगल को काटनेवाले हम चोर नहीं हैं। आप भी चोर जैसे काम मत करो। राजा निज़ाम सरकार को बताओ की हमें जीने के लिए जमीन चाहिए।

लेकिन हमारी एक भी न सुनकर बहुत बार गुडेम पर हमला किये हैं और गुडेम को जला डालते हैं फसलों को, जानवरों से कूचल देते हैं। पत्ते तोड़ने पर, टहनी को चुनने से, उंगलियाँ काट देते हैं। स्त्रियों पर अत्याचार करते हैं। हमारे बच्चों को मारते हैं। हमारे ऊपर केस पर केस का मामला दर्ज करते हैं। हम लोग केस, कचहरी के पीछे घुमकर जंगल में पंगडण्डी बन गई है।

दयालु निज़ाम सरकार हमारे बारह गुडेम में रहने वाले किसानों पर विचार करके जमीन का पट्टा देने की कृपा करे- आपके भगत, आपके वफादार, आपसे विनती करते हैं।"[54] इस तरह बारह गाँव का नाम लिखते हैं और पत्र लेकर भीम अपने साथी के साथ हैदराबाद जाने को तैयार होते हैं।

वह पत्र लेकर निज़ाम के दरबार में उनसे मिलने के लिए जाते हैं लेकिन वहाँ के सिपाही उन्हें निज़ाम से मिलने नहीं देते हैं। वह निराश गुडेम की ओर लौटते हैं तभी उनको खबर मिलती है कि गुडेम में निज़ाम के अधिकारियों ने बहुत जुल्म किया। प्रत्येक गुडेम में चलकर गुडेम के लोगों को तकलीफ दी। इससे क्रोधित होकर वह एक संगठन बनाते हैं और निज़ाम सरकार के खिलाफ लड़ने की पूरी तैयारी करते हैं।

कोमरम् भीम अपने आदिवासी समाज के लोगों को एकत्रित करके उन्हें अपने हक़ और अस्मिता की रक्षा के लिए लड़ने के लिए प्रेरित करते थे। वह लोगों से कहते थे कि "मवानाटे मवाराज" इसका मतलब है कि 'हमारे गाँव में हमारा राज' वह अपने आंदोलन का केंद्र जोड़ेघाट को बनाते हैं ।

उन्होंने 12 गुडेम को मिलाकर जोड़ेघाट को आंदोलन का केंद्र बनाया था। क्योंकि जोड़ेघाट सबसे ऊँचाई पर था। वहाँ निजाम के सैनिक असानी से नहीं चढ़ सकते थे। कोमरम् भीम ने गाँव के नौजवानों की एक फौज बनायी थी और उन्हें लड़ाई के लिए प्रशिक्षित किया था। उसमें उन्हें बर्मार बनाने का प्रशिक्षण देते थे क्योंकि निज़ाम के सैनिकों के पास आधुनिक हथियार थे।

इसकी सूचना निज़ाम के सैनिकों को मिलती है और वे कोमरम् भीम के सैनिकों पर आक्रमण करते हैं। वह प्रथम उस जोड़ेघाट के नीचे बसे हुए गुडेम के लोगों को मारते हैं। और उसके बाद उस पहाड़ी पर चढ़कर कोमरम् भीम और उनके साथियों को कूटनीति से मारते हैं। कोमरम् भीम के बारे में जानकारी गाँव के एक कुर्दु नामक व्यक्ति ने दी थी।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि कोमरम् भीम की क्रान्ति आज भी आदिवासी समाज के लिए महत्त्वपूर्ण एवं दिशादर्शक विचारधारा है जो कि दिनोंदिन प्रासंगिक एवं आवश्यक होती जा रही है वह आजीवन अपने समाज के हितों के लिए लड़ते रहे वह उनकी लड़ाई केवल अपने परिवार के लिए नहीं थी अपितु समग्र आदिवासियों के लिए थी। वह अपने अधिकारों एवं अस्मिता के लिए लड़ते रहे। उन्होंने एक शक्तिशाली निज़ाम के साथ टक्कर दी थी। इसका कारण उनका साहसी एवं दृढ़-निश्ययी होना था।

[54] कोमरम भीम, साहु-अल्लम राजय्या- पृ. सं. 138-139

2.4 कोमरम् भीम के जीवन पर आधारित साहित्यिक कृतियाँ : एक विवेचन

2.4.1 'कोमरम् भीम' (उपन्यास) साहु-अल्लम राजय्या

कथावस्तु में किसी भी विधा की संक्षिप्त रुपरेखा पाठकों के सामने आ जाती हैं। इसलिए रेखा को पढ़कर ही हम निश्चित करते हैं कि इस विधा का विस्तृत सार क्या है ? या उस विधा में किन-किन बातों को विषयों को एवं तथ्यों को उजागर किया गया है ?

प्रस्तुत उपन्यास की कथा का आरंभ सूर्य के उगने से होता है। सुबह की सोने जैसी किरणें, पक्षियों की आहट, हवाओं की ठंडी लहरें, पेड़-पौधों को लहलहाते झोंके किसी भी व्यक्ति के मन में हर्ष एवं उत्साह का भाव जागृत कर देते हैं।

आदिवासियों का जीवन ही जंगलों में महुआ चुनना, पत्ते तोड़ना तथा थोड़ी-बहुत खेती करने में बीत जाता है। आदिवासियों का इतिहास गौरवपूर्ण रहा है। अपने पूर्वजों के द्वारा सुनाई गयी कहानियाँ आज भी मौखिक रूप में उस समाज में मौजूद है। आदिलाबाद जिले के अंतर्गत बहुत सारा क्षेत्र जंगल का है। जंगल में अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं। उनमे गोंड, कोलाम, प्रधान, चेंचू, बिल्लुलू और लंबाडी (बंजारा) आदि महत्त्वपूर्ण जन जातियाँ हैं। इन जातियों के लोग अथक परिश्रम करते हैं। खेती-बाड़ी उनके जीवन का आधार है। इनकी विशेषता यह है कि- वे मैदानी क्षेत्र में न रहकर बड़े-बड़े पहाड़ों में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। आदिलाबाद के जंगल के आदिवासी मुख्य रूप से ज्वार, अरहर, तिल आदि फसलें उगाते हैं। अकाल के समय अनाज न मिलने पर पत्ते और जंगल में मिलने वाले फलों से अपने पेट की भूख मिटाते हैं पतझड़ के वक्त जंगल में महुआ के फूल चुनते हैं। उन फूलों का इस्तेमाल वह रोटियाँ बनाने के लिए करते हैं और उनसे शराब भी निकालते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास की शुरूआत प्रकृति के उत्साहित परिवेश से होती है। सुबह होती है समग्र जीव-जंतु जाग उठते हैं मुर्गियाँ ध्वनि करती हैं भाभी (कुकूबाई) के संग भीम महुआ चुनने के लिए जंगल की ओर निकल पड़ता है। महुआ टपकने के वक्त भालू का भय सभी गुडेम वालों के मन में होता है। अन्य जानवरों एवं जीवों का भी जंगल में भय होता है इसलिए भीम की भाभी उनको साँपों से सजग रहने की सूचना देकर उनको सावधान करती है। लेकिन भीम फिर भी निर्भय रहते हैं। क्योंकि उनको जंगली जानवरों से बिलकुल डर नहीं लगता। जंगल से महुआ चुनकर आने तक सुबह हो चुकी थी। महुओं के फूल लाये गए और बाँस के तटे पर डालकर झोपड़ी के सामने बिखरा दिए। भीम की माँ हमेशा खेत के काम में व्यस्त रहती थी। मानो खेतों के काम के सिवाय उसकी कोई दूसरी दुनिया ही नहीं है।

चिन्नु भीम के पिताजी का नाम है। वह गुडेम के पटेल हैं। सोमु और भोजु भीम के दो बड़े भाई हैं। भीम अपने भाइयों के साथ ज्वार के खेत में काम करता है। इसी वक्त वहाँ से थोड़ी दूरी पर सफ़ेद कपड़े वाले कुछ लोग गुडेम की ओर आ रहे थे। जिन्हें भीम वहाँ से देखता है। उनके साथ बैलगाड़ी भी हैं। इस दृश्य को देखकर भीम अपने भाइयों से कहता है भैया ! उधर देखो, कोई अपनी ओर आ रहा है। सोमु और भोजु उस तरफ देखकर उसे बताते हैं कि वह साहूकार हैं भीम के बगल वाले किसान के खेत में आकर साहूकार उस किसान की पूरी ज्वार अपने कब्जे में कर लेता है। वह किसान उस साहूकार के सामने पागल की भाँति गिड़ गिड़ाता था। पर साहूकार उनकी एक भी नहीं सुनता। यह दृश्य देखकर भीम क्रोधित हो जाता है लेकिन कुछ कर भी नहीं सकता। थोड़ा-सा नमक, गुड़ का टुकड़ा, तंबाकू, पुड़ियाँ देकर एक बाल्टी भर शहद ले जाते हैं। साहूकार लोग जो वस्तु बेचते हैं उन वस्तुओं की कीमत इन आदिवासियों को नहीं पता। धीरे-धीरे से कपड़े, कंघी, और पाउडर इन वस्तुओं को साहूकार लोग आदिवासी को बेचते हैं। गोंडों की कई समस्याएँ की जरुरत होने पर, साहूकार उनकी जरूरतों को पूरा तो करते हैं लेकिन लेने के समय दुगुना रूपया उनसे वसूल करते हैं। जंगल में जो भी वस्तु का उत्पादन होता है जैसे- ज्वार, तिल, शहद, महुआ, कंद- मूल आदि को साहूकार लोग जबर्दस्ती से लूटते हैं। कर्ज देकर साहूकार गोंडों की जमीन गिरवी रख लेते हैं गोंड के कर्ज देने में असमर्थ होने पर उनकी जमीन साहूकार लोग छीन लेते हैं।

एक दिन ज्वार के खेत में सूअरों का झुंड आ जाता है गुडेम वाले लाठी से सूअर को भगा रहे हैं भीम उनके साथ भाग रहा है एक सूअर भीम के ऊपर चढ़ गया फिर भी भीम डरा नहीं। सूअर ही पीछे डर कर भाग गया। यह देखकर भीम सामने के टीले पर कूदकर खड़ा हो गया सूअर गुस्से में होने के कारण उस टीले को आकर टक्कर देने से उसका सर टूट जाता है और वहीं पर प्राण छोड़ देता है। तब भीम ने समझ लिया है कि मनुष्य जंगल के विभिन्न प्राणियों से नहीं डरते क्योंकि जंगली जानवरों को मारकर भगा देते हैं या उन्हें मार डालते हैं लेकिन जंगल वाले और साहूकारों के शोषण से हम नहीं बच पा रहे हैं। इस तरह अन्याय, अत्याचार से इस समाज में परिवर्तन कैसे आएगा ? अँधेरा होने के बाद गाँव के आखिर में बेताल झंड़ा के पास पूरे बच्चे बैठकर बात कर रहे हैं। उस समय उन्हें मोतीराम दादा आते हुए दिखाई देते हैं। जैसे आते ही बच्चे उनसे कहानी सुनाने की जिद करते हैं तब वह रामजी गोंड की कहानी सुनाते हैं।

पहले तुम्हारे बाप-दादाओं का राज्य में बोला-बाला था। हमारा राजा उट्नूर में रहता था। उस वक्त हमें यहाँ लगान का कोई कष्ट नहीं था और न हीं साहूकार की पीड़ा थी। जंगल पूरा-का-पूरा अपना था। अंग्रेज लोग कहाँ से आये ? यह किसी को पता नहीं था। अंग्रेज सरकार और निज़ाम सरकार के बीच गहरी दोस्ती थी। अंग्रेज जंगल में शिकार के लिए आते थे। तब वह निर्दोष एवं असहाय आदिवासियों को पकड़कर, ले जाकर दास बना लेते थे। तब अपना राजा रामजी गोंड इस अन्याय को देखकर आग बबूला

हो जाता था। दाँत चबाने लगता था। यह खबर हर एक गुडेम में फ़ैल जाती थी। राजा इस बात को लेकर समग्र गुडेम वालों को अपने सामने प्रस्तुत होने का आदेश देता था। इस सभा में छोटे-बड़े सभी लोग शामिल होते थे। इस सभा में एक निर्णय लिया गया था कि हम सरकार से आवेदन करेंगे कि हमारी आजीविका का एक मात्र आधार जंगल ही है। जंगल ही हमारी माता है। जंगल ही हमारा राज्य है। हम आपके राज्य का विरोध कभी नहीं करते। आप आकर हमें क्यों परेशान करते हो ? हमारे राज्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। आदिवासी अपने राज्य के लिए सर कटाने के लिए तैयार है। लेकिन आपके सामने सर झुकाने के लिए तैयार नहीं है। अपने राज्य के लिए जब तक प्राण है तब तक लड़ेंगे।

युद्ध का आरंभ हो चुका था। नगाड़े की आवाज आसमान में गूंजने लगी थी। युद्ध की सामग्री तलवार, तीर, कुल्हाड़ी, शूल, और पत्थर आदि वस्तुओं से तीन दिनों तक युध्द चलता रहा। चौथे दिन हमारे राजा रामजी गोंड को कैदी बनाकर निर्मल (अब जिला है) ले गए। गुडेम में हाका मच गया। आठ दिनों के उपरांत रामजी गोंड को निर्मल में गोली से मार कर पेड़ के ऊपर लटका दिया। प्रत्येक गुडेम में खलबली मच गयी। छोटे-बड़े सब रोने लगे। यहाँ तक की पशु-पक्षी भी दुखी हो गए। गुडेम में तीन दिन तक किसी ने अन्न ग्रहण नहीं किया। मोतीराम दादा ने इस प्रकार की घटना को बता कर कहानी को समाप्त किया।

रामजी गोंड की हत्या के बाद परिस्थितियों में बदलाव आया। उस समय आदिवासियों का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र की ओर पलायन हो रहा था। उसी भांति भीम का परिवार भी जनगाँव से धनोरा होकर सर्दापुर नामक गाँव में स्थित हो गया। तीन किलो मीटर के बीच मैदानी क्षेत्रों को देखकर गाड़ियाँ रोक दी गयी और नजदीक के तालाब के किनारे झोपड़ियाँ डाली गयी। 'भूखे पेट रहकर पत्थर उठाकर कूड़ा-कचरा जलाकर जमीन को साफ़ कर दिया। इतनी मेहनत के बाद वह जमीन खेती लायक हो गयी। बरसात अच्छी होने के कारण फसल का उत्पादन अच्छा हुआ। गोंड और कोलाम हर्ष और उत्साह के साथ गीत गाने लगे तथा नाचने लगे। बच्चे खेल में मस्त थे। इसी वक्त दस-बारह लोगों का गुडेम में आगमन हुआ है। लक्ष्मण राव पटवारी कुर्दु को राम-राम कहता है और आगे वह कहता है कि यह कौन है ? आपको पता है गुडेम वाले उसे पहचानने से मना करते हैं। तब वह कहता है कि वह सिद्दिक साहब है यहाँ से लेकर केरामेरी तक इन्हीं की जमीन फैली है। इसलिए तुम लोगों को इस जमीन के बदले लगान देना पड़ेगा। तब आदिवासी लोग लगान देने से मना करते हैं। तब वह कहता है कि लगान न देने से अभी इस क्षेत्र को छोड़ कर चले जाना पड़ेगा। इसी बात पर आदिवासी लोग कहते हैं कि इस जमीन पर आपका अधिकार है तो पहले क्यों नहीं बताया ? अब हम नहीं छोड़ेंगे।

इस पर 'बदमाश गोंड' कहते हुए सिद्दिक ने कुर्दु के गाल पर तमाचा मार दिया। इसी बात पर गुडेम का हर मनुष्य मुकाबला करने के लिए तैयार हो गया। 'मरो या मारो' इसी तरह की घोषणा होने लगी। लक्ष्मण पटवारी अपनी धोती संभाल कर दौड़ने लगा। सिद्दिक लाठी से येसु को मारने का प्रयास कर रहा था तभी भीम ने लाठी से उनकी लाठी को रोक दिया दूसरे हाथ की लाठी से सिद्दीक के सिर पर जोर से मार दिया इस गहरी छोट के कारण सिद्दीक ने 'या-अल्लाह' कहते हुए प्राण छोड़ दिया। इसी तरह की स्थिति देखकर सिद्दीक के साथी लोग वहाँ से भाग गए। सिद्दीक की देह वहीं पर पड़ी रही। इसके बाद इसका अंजाम क्या होगा ? यह सबको पता था।

गुडेम में हडकंप मच गया भाभी भीम से कहती है कि यहाँ क्यों खड़ा है ? कहीं और चला जा। बाद में मिलेंगे। इस बात को सुनकर भाग कर भीम बहुत दूर गया और थकने पर एक टीले के ऊपर जा बैठा। यह जमीन सिद्दीक की है इस जमीन के पट्टे का मतलब क्या है ? निज़ाम कौन है ? यह गोंड लोगों को जमीन का पट्टा क्यों नहीं देते ? यह सरकार कौन है ? कहाँ रहती है ? पुलिसवाले क्या करते हैं ? यहाँ पुलिसवाले आएंगे और लच्चु, रघु, सोमु, आदि पर खून के हत्या का केस लगायेंगे। इन विचारों में डूबा हुआ भीम गुडेम की ओर देखता है तभी उसे गुडेम जलता हुआ दिखाई देता है। उसी समय वह उठ कर पुराने गुडेम संकेपल्ली की ओर चला जाता है।

वहाँ पर कोंडल है। कोंडल परिवार वाले भीम के परिवार के साथ सर्दापुर नहीं गए। भीम दिन भर चलकर शाम के समय पर संकेपल्ली चला जाता है। वहाँ पर कोंडल से मिलता है उस रात दोनों दोस्त मिलकर सबसे बड़े मुखिया से मिलकर यहाँ का सब किस्सा उसे सुनाते हैं। उससे कोई लाभ नहीं होता। भीम और कोंडल को जो रास्ता दिखाई पड़ रहा है। वे उस रास्ते से जा रहे हैं। जाना कहाँ है ? यह उन्हें भी पता नहीं। बड़ी-बड़ी सड़क, बड़े-बड़े बंगले, मोटर गाड़ियाँ, नमूने-नमूने के कपड़े पहन कर अलग-अलग तरीके के व्यक्ति हैं। नए इलाके में नए लोगों को देखकर भूख और नींद भूल गए वह रेलवे स्टेशन पर जाकर बैठते हैं। काफी समय के बाद ट्रेन आती है। दोनों ट्रेन में बैठते हैं। दोनों को ट्रेन में बैठना आश्चर्यजनक लगता है। यह रेलवे स्टेशन चंदा गाँव का है। दोनों स्टेशन के बाहर आकर बैठते हैं। उनके साथ का एक यात्री अपना सामान उठा नहीं पा रहा था। उसी समय सामान भीम और कोंडल दोनों उठा लेते हैं।

उस व्यक्ति का नाम विटोबा है। विटोबा की प्रिंटिंग प्रेस है। वह उन्हें अपने प्रेस में काम पर रख लेता है। विटोबा निज़ाम सरकार और अंग्रेज का विरोध करता है। अंग्रेज सरकार एवं निज़ाम सरकार के विरोध में आंदोलन चलाने वाले से उसका गुप्त संबंध है। 'बदले का बदला' खून का जवाब खून से देना इनकी पार्टी कहती है। विटोबा गोपनीय रूप से पत्रिका चलाते हैं। विटोबा के अच्छे व्यक्तित्व को देखकर भीम और

दिन रहने का विचार कर लेता है और कोंडल को रेल से वापस गाँव भेज देता है। भीम विटोबा के पास एक साल तक रहता है। वहीं पर विटोबा उसे तेलुगु, हिंदी, और अंग्रेजी पढ़ना-लिखना सिखाता है। वह उसे समझाता है कि इस समाज को बदलना आवश्यक है। इस के लिए हर व्यक्ति को त्याग करना चाहिए।

एक रात अचानक पुलिस का दल आकर विटोबा को कैदकर ले जाते हैं फिर भीम बेसहारा हो जाता है। एक दिन भीम दिनभर रेलवे स्टेशन पर बैठा रहता है। वहाँ पर उसे एक निज़ाम प्रांत का व्यक्ति मिलता है वह बताता है कि मैं 'चायपत्ता-देश' जा रहा हूँ। उसके साथ भीम भी असम के ट्रेन में चढ़कर चला जाता है।

भीम को सर्दापुर को छोड़कर बहुत दिन हो चुके थे। वहाँ पर रह रहे चाचा-भैया में हडकंप मच गया। वहाँ पर अकेले येसु ने खेती में हल चलाकर बीज बोया और अछी फसल उपजाई। घोड़े पर अमीन साहब, चौकीदार, सरदार आ गए इस समय भी फिर से वाद-विवाद हो गया फिर भी येसु वहीं पर डटा रहा। इनके केसों के चक्कर में येसु को घूमकर महीनों साल बीत जाते हैं।

चायपत्ती के बागान में भीम ने पैर रखा। भीम हर दिन मजदूरी करता था। भीम को हिंदी और उर्दू भाषा का ज्ञान भी अवगत था। एक दिन भीम सोने के समय मन्नेम् दोरा के पास बैठ जाता है। इस इलाके में मन्नेम् दोरा अभी नया है। वह मूछों पर ताव देकर भीम से कहता है कि तू तेलुगु भाई है। और उसी समय मन्नेम् दोरा अल्लुरी सीताराम राजु की कहानी बताना शुरू कर देता है। हम जंगल में जन्म लेकर जंगल में ही बड़े हुए हैं जंगल में ही खेती करने वाले हैं। जंगली जानवरों के शिकार कर पेट भरने वाले हैं जंगल में मिलने वाले फल, शहद, पत्ते इत्यादि प्रकृति की चीजों पर जीवन चलाने के लिए वनदेवी रूपी माँ हमें यह सामग्री देती है। किन्तु अंग्रेज सरकार हमारी प्रकृति संपन्न एवं जमीन के अपने अधिकार में लेकर हमारे जीवन को नष्ट कर रही है। हमें हमारे राज्य में ही दास बनाया है। खेती करना ही हमारी आजीविका का साधन है। जंगल की संपत्ति ही हमारी संपत्ति है। शिकार करना हमारा जन्म सिध्द हक़ है। साथ-ही-साथ जो भी हमारे नीति, जीवन में हस्तक्षेप करेगा तो हम उसके विरोध में आंदोलन शुरू करेंगे इस तरह की सूचना अल्लुरी सीताराम राजु ने दी थी।

तब क्या हुआ ? अंग्रेज सरकार की नींद गायब हो गई। सैनिक जंगलों में आ गए थे। जिस प्रकार वहाँ आये उसी प्रकार वापस चले गए। हमारे सामने वह टिक न सके। युवकों को लड़ाई में लड़ने के लिए अल्लुरी सीताराम राजु ने प्रशिक्षण दिया था साथ-ही-साथ शत्रु का सामना किस प्रकार किया जाय और लड़ाई लड़ने का तरीका किस प्रकार अपनाया जाय यह भी बताया था। जंगल में आये अंग्रेज सैनिकों की नाक में आदिवासी युवकों ने दम कर दिया था। अंग्रेज ऑफिसर भय से काँपने लगे एक दिन प्रार्थना के

जगह पर चोरी-चुपके से अल्लुरी सीताराम राजु को कैदी बना लिया। फिर भी उन्होंने उनके सामने सर तक नहीं झुकाया। उनके मुंह से इस तरह के उद्गार निकले 'गोली मारो'। मेरे खून की एक-एक बूंद खतरों से मेरे जैसे हजार लोग जन्म लेंगें। हमें अपनी अस्मिता बचाने के लिए हमें जंगल को बचाना चाहिए। जंगल में अपना स्वराज शासन करने हेतु लड़ाई करना आवश्यक है। इस तरह की प्रेरणा का सन्देश हमें अल्लुरी सीताराम राजु ने दिया था।

चायपत्ती के बागान का मुनीम असहाय एवं भोले-भाले मजदूरों को कोड़ों से मारता था। तब इसका विरोध भीम ने किया। पुलिस आकर भीम को कैद कर जेल में बंद कर देती है। जेल की सलाखों को तोड़ कर भीम वहाँ से निकलता है। वहाँ से मालगाड़ी में बैठकर बल्लारशाह पहुँचता है। वहाँ पर कुली का काम कर कुछ समय बिताता है। किन्तु उसके मन में इस तरह के विचार आने लगते हैं कि उनके गाँव के लोग, उनका गुडेम, उनका जंगल, उन्हें पुकार रहा है। इसी कारण भीम वहाँ से कुछ दिनों के बाद निकल जाता है। उस समय अँधेरा हुआ था इसलिए वहाँ रास्ते में पड़ने वाले एक गुडेम में रूक जाता है।

वहाँ पर उसे एक गोंड व्यक्ति बताता है कि तुम्हारे परिवार वाले काकनघाट में निवास कर रहे हैं। इस प्रकार अपने परिवार का समाचार पाकर वह अपने गाँव काकनघाट की ओर चल पड़ते हैं। चलते-चलते शाम हो जाती है। जैसे भीम के घर के सामने जाते ही उन्हें उनकी भाभी दरवाजे पर नजर आती है। भाभी को देखते हो भीम के मन में आत्मीयता का भाव जाग जाता है तभी अन्य लोग भी आ जाते हैं। भीम भोजु के घर जाता है। भोजु की पत्नी राधा बाई भीम से कहती है कि- पत्नी को साथ में नहीं लाया। इस पर भीम कहता है कि- मेरी अभी शादी नहीं हुयी मैं कहा से लाऊंगा पत्नी।

दूसरे दिन सोमु देवडम के लच्चु पटेल के पास जाता है। भीम के संदर्भ में जानकारी लेकर लच्चु पटेल भीम को अपनी खेती करने के लिए रख लेता है। वहीं खेती का काम करते हुए लच्चु पटेल की जमीन के केस के संदर्भ में भीम जनगाँव जाकर अमीन से बात करके उस केस को बंद कराता है। उसी वक्त से लच्चु पटेल के मन में भीम के प्रति अतिरिक्त आदर का भाव पैदा हो जाता है। लच्चु पटेल भीम का विवाह अंबटी राव की बेटी सोमबाई से करवा देता है। भीम काकनघाट में अपना घर बसाता है।

कुर्दु के नेतृत्व में बाबेझरि क्षेत्र में **बारह गाँव** बसते हैं। जोड़ेघाट, पटना पुर, बबेझरी, मुरिकिलोंका, नरसापुर, कलेगाँव, चाल बरिडी, टोइकन मोवाडा, भीमन गोंदि, अंकुसा पुर, देम्दिगुडा, और गोगिन मोवाडा आदि। इन सभी गाँव वालों ने मिलकर बबेझरी में जंगल की कटाई कर फसल योग्य जमीन बनायीं। अच्छी बारिश के कारण उत्पाद भी अच्छी हुई।

भीम लच्चु पटेल कपास बेचने हेतु राजुरा के बाजार जाता है। उसी वक्त बाजार में कुछ मुसलमान के लड़के एक जवान लडकी को देखकर छेड़ते हैं। तो वह लड़की उन लडकों से बचकर दौड़ते हुई भीम की बैल-गाड़ी पर चढ़ जाती है। उन दोनों का परिचय हो जाता है। लड़की का कोई नहीं है वह अनाथ है। यह बात भीम को मालूम होती है। तब वह लड़की भीम से कहती है कि मुझ से विवाह कर लो और भीम भी उसी दिन उससे विवाह कर लेता है।

इस प्रकार पैकू बाई भीम की जीवन-संगिनी बन जाती है। बबेझरी में बसे गाँव के बारे में वन अधिकारी को पता चल गया था। वह आकर बबेझरी पर हमला कर देते हैं। गुडेम को जला डालते हैं। स्त्रियों के साथ बुरा बर्ताव करते हैं। फसलों में जानवरों को छोड़ देते हैं। इन जुल्मों को देखकर गाँववाले दुखी हो जाते हैं। पर कुर्दु उन्हें हिम्मत दे रहा था। जीवन में दुःख तो रहेगा, झोपड़ी और बना लेंगे और फसल उपजायेंगे। केस का विषय भीम देख लेगा।

कुर्दु और येसु भीम के पास जाकर बाबेझरि की घटना को बताकर रो पड़ते हैं। भीम इस घटना को सुनकर बाबेझरि की ओर चल पड़ता है। भीम टोइकन मोवाडा गुडेम जाकर रुक जाता है। दस दिन में गुडेम जाकर उन गुडेम के लोगों की दुःख भरी कहानी सुनता है। उन्हें निज़ाम सरकार और अंग्रेज सरकार जो दुःख देती थी भीम वह सब समझ लेता है। उसके मन में प्रश्न उठता है कि इसके उपरांत क्या किया जाय ? पैकूबाई उनसे कहती है कि केस के मामले को लेकर वकील रामचंदर राव पैकाजी से मिलने पर समस्या का हल निकल सकता है।

भीम अपने चाचाओं के संग जाकर केस के संदर्भ में साले पंतुलु नामक एक सलाहकार से मिलकर अपनी समस्याओं को प्रकट करते हैं। तब वह उनसे कहता है कि इस जमीन की समस्याओं को लेकर निज़ाम से मिलो। कुछ तो समस्या का हल जरुर निकलेगा। यह सलाह भीम और उनके चाचाओं को अच्छी लगती है।

वह वकील रामचंदर राव से मिलकर केस के संदर्भ में पूछताछ करके गाँव की ओर चल पड़ते हैं। गाँव जाकर पूरे बारह गाँव के लोगों को एकत्रित्र करते हैं। और निज़ाम सरकार से मिलने का निर्णय लेते हैं। निज़ाम सरकार से मिलने किसे भेजना चाहिए ? इस संदर्भ में यह निर्णय होता है कि भीम, रघु, महादु। भीम तीनों को भेजने का निर्णय करते हैं। इनमें से महादु अच्छी तरह से पढ़ना-लिखना जानता है। महादु को भीम पत्र लिखने को कहता है। तीनों निज़ाम सरकार के नाम पर एक पत्र लिखते हैं। तीनों हैदराबाद निकल पड़ते हैं।

हैदराबाद पहुँचते ही स्टेशन के सामने भिखारियों की भीड़ उन्हें दिखाई देती है। वह इतने सारे लोगों को एक साथ देखकर चकित हो जाते हैं और आगे निकलते हैं। उन्हें चारों ओर दरिद्रता छाई हुई नजर आती है। एक ताँगे में बैठकर वे निज़ाम सरकार से मिलने जाते हैं। ताँगेवाला उन्हें हैदराबाद की विशेषताओं बताते हुए चला जाता है। ताँगे वाला उनसे पूछता है कि आप कहाँ से आये हैं और क्यों आये हो ? वे तीनों कहते हैं कि हम निज़ाम सरकार से मिलने आये हैं। तब ताँगेवाला उन की ओर आश्चर्य से देखने लगता है। क्योंकि निज़ाम सरकार को गरीबों से मिलने का समय, उनके पास नहीं है। उन्हें गरीबों की पीड़ा समझ में नहीं आती। वे अपनी रानी के साथ व्यस्त रहते हैं। इस प्रकार की बातें सुनते हुए निज़ाम सरकार के महल पहुँचते हैं।

वहाँ पर अच्छे कपड़े पहनकर, मुँह पर नकली मुस्कान लेकर, लोग निज़ाम सरकार के स्वागत के लिए क़तार में खड़े हैं। भीम, रघु और महादु को अंदर प्रवेश नहीं मिलता वे बाहर खड़े रहकर निज़ाम सरकार के आने का इंतजार करते हैं। इतने में निज़ाम सरकार घोड़े पर सवार होकर आते हैं। उनके आगे-पीछे अगल-बगल में सौ से अधिक सैनिक हैं। साथ में रानी भी है। इन्हें वही पर दोपहर हो जाती है। तब महादु जाकर एक सैनिक को घूस के रूप में कुछ देकर अंदर जाने की आज्ञा पाता है। तब वह सौनिक वहाँ के अर्थ मंत्री को इनके द्वारा लिखा ख़त देता है। इस पर मंत्री कहता है कि अभी सरकार के पास लोगों से मिलने का समय नहीं है। और कुछ देर बाद तीनों को गालियाँ देकर वहाँ से भगा दिया जाता है। वे लोग निराश और अपमानित होकर अपने गाँव की ओर चल पड़ते हैं।

उनके गाँव पहुँचने से पहले ही जोड़ेघाट, पूरा जलाकर राख हो चूका था। जंगलात वालों ने आकर पूरे जोड़ेघाट को आग लगायी थी। उनकी फसलें बर्बाद की थीं। जोड़ेघाट को पूरा श्मशान बना दिया था। वहाँ के लोग रो रहे थे।

भीम सभी गुडेम वालों को बुलाकर एक सभा का आयोजन करता है। सब मिलकर विचार करो, की क्या करें ? वे हमें जीने नहीं देंगे लेकिन हमें जीना तो पड़ेगा ही। क्योंकि यह हवा, पानी, आकाश, जंगल और जमीन सब हमारे हैं। उस पर अधिकार हमें मिलना चाहिए। हमें उनका प्रतिरोध करना चाहिए। केवल हम ही नहीं हर एक किसान हर एक मनुष्य एवं शोषित वर्ग जब तक एक होकर नहीं लड़ेंगे तब तक शोषण, अन्याय, अत्याचार से मुक्ति नहीं हो पायेगी। गोंड राज्य की स्थापना ही हमारा उद्देश्य है। युध्द का केंद्र जोड़ेघाट, युध्द का साहित्य तलवार, कुल्हाड़ी, शूल, तीर आदि सब तैयार हो रही है। कौन सी वस्तु किस तरह इस्तेमाल की जाती है। इसकी जानकारी युवाओं को दी जा रही है। युध्द के लिए प्रशिक्षण देना शुरू हो चुका था। स्त्रियाँ भी इसमें सहायता कर रही थी।

स्त्रियों का नेतृत्व करने में सबसे आगे पैकूबाई थी। कुछ नए गाँव तैयार हो चुके थे। ये नए गाँव भी भीम के साथ आ गए। इन में प्रमुख रूप से धनोरा, कलेगाँव आदि गाँव गोंड़ राज्य की स्थापना के लिए संघठित हो गए और सबने मिलकर युध्द करने का निर्णय ले लिया। और इस युध्द का संदेश भीम ने गाँव-गाँव पहुँचाया था। हमारी जमीन हमें वापस पाने के लिए, उनके अत्याचारों को खत्म करना होगा। जंगल पर अधिकार हेतु हमें उनसे लड़ाई करनी होगी।

इसलिए भीम कहता है कि हे माताओं, हम आपके पुत्र हैं। हम इतना बड़ा कार्य करने जा रहे हैं। इसलिए हमें आपके ह्रदय से आशीर्वाद चाहिए। इसी समय शाम के वक्त जोड़ेघाट के टीले पर आंदोलन का आरंभ हुआ। और आरंभ होते ही वहाँ के सामाजिक परंपरा के अनुसार उन्होंने नगाड़े बजाकर जय-जय कार के नारे लगाये। इसी उत्साह में स्त्रियों ने भी भाग लिया था। उसी समय कोमरम् सुरु ने भागते हुए आकर निजाम सेना के आने की खबर दी। यह खबर सुनते ही भीम ने अपने साथियों को युध्द आरंभ करने की आज्ञा दी। यह अनुमति मिलते ही भीम के सभी साथी युध्द के लिए तैयार हो गए। निज़ाम सरकार के एक सैनिक को भी जोड़ेघाट का टीला नहीं चढ़ने देना और आते ही तीर का निशाना लगाकर छोड़ना और उन सैनिकों को चारों ओर से घेर कर काट देना। यह जमीन हमारी है। यह जंगल हमारा है।

दोनों ओर से बंदूकों की आवाज आने लगी। निज़ाम सरकार के एक सैनिक भी टीला चढ़ने का प्रयत्न नहीं कर पाया प्रयत्न करने से पहले वह हार मान लेते थे। भीम के सैनिक दायें- बायें होते हुए सैनिकों का सामना करते थे। और उनको हैरान कर देते थे। यह स्थिति देखकर सैनिकों के अधिकारी उर्दू में भागो-भागो कहकर सैनिकों को सूचित करता था। सैनिकों को भागते भीम की ओर से विजय होने के संकेत और नगाड़े बजने लगे। भीम इस लड़ाई में विजय प्राप्त कर चुके थे। कोमरम् भीम की विजय का समाचार हर गाँव में गूंजने लगा। इस विजय की खुशी में सारे गाँव की जनता नाचने, गाने लगी। गाँव-गाँव में अर्ध चंद्र आकार वाला लाल झंडा लहराने लगा।

कोमरम् भीम युध्द में विजयी हो गए। यह समाचार निज़ाम सरकार तक पहुँच चुका था। इस समस्या को लेकर होम सेक्रेटरी नवाब के साथ बैठकर इस समस्या का हल सुलझाने का विचार करने लगे। मीर उस्मान अली चाचा को अंग्रेज अधिकारी कहता है कि बड़ी सेना को भेजकर उन्हें छिन्न-भिन्न कर देना चाहिए। इस आंदोलन को जल्द से जल्द समाप्त नहीं किया तो आपकी राज गद्दी को खतरा है। अल्लुरी सीताराम राजु को मारने के लिए हमने अनेक प्रयास किये। कई कोशिशों के बाद उन्हें मार डाला। कोमरम् भीम को मारने के लिए आप देर मत कीजिए। इस वक्त एक भी आदिवासी नहीं रहना चाहिए। सबको ख़तम कर दो।

निज़ाम सरकार पहली बार पहाड़ी के नीचे रहने वाले आदिवासियों पर हमला करती है। पुलिस, मुसलमान जागीरदार, जंगलात वाले मिलकर बाबेझरि के चारों ओर गाँव में हंगामा मचा देते हैं। गाँव को लूटना, जलाना और लोगों की जान लेना उन्होंने शुरू किया। आदिवासी लोग इस अन्याय को न सह सके और वह भीम की सेना में शामिल हो गए।

भीम ने एक बार अपने साथियों से पूछकर यह निर्णय लिया कि निज़ाम सरकार को पत्र लिखा जाए, और पत्रों में सारी माँगें को उनके सामने रखा जाय। हमारी माँगें यह है कि- 'बारह गाँव पर हमारा अधिकार दिया जाय।' भीम की ओर से भेजा गया यह पत्र सरकार को मिला भी लेकिन इस पत्र को पढ़कर उनकी कोई प्रतिक्रिया नहीं आयी। जोड़ेघाट पर भीम युध्द आरंभ करने की नीति बना रहा था। पत्थर, रस्सी, हर वस्तु, शत्रु से सामना करने के लिए सहायक सिध्द होगी। उसी दिन सुबह के समय सब-कलेक्टर ने एक दूत को सन्देश लेकर भीम के पास भेज दिया। वह दूत भीम से मिलकर कहता है कि आपसे सब-कलेक्टर मिलना चाहते हैं। इस पर भीम अनुमति देता है। सब कलेक्टर उनसे मिलने अकेला ही आता है बंगला के सामने चारपाई पर बैठता है।

सब-कलेक्टर भीम से कहता है कि- 'आपके और आपके परिवार वालों को कितनी जमीन चाहिए, बताओ हम देने के लिए राजी हैं। लेकिन इस आंदोलन को रोक दो।' तब भीम कहता है- 'यह युध्द मेरे अकेले के लिए नहीं अपितु गोंड, कोलाम आदि अनेक आदिवासियों के लिए है। हमें बारह गाँव की जमीन ही नहीं चाहिए बल्कि इस बारह गाँव पर राज्याधिकार चाहिए। हम एक नए राज्य की स्थापना करना चाहते हैं।' भीम की बातें सुनकर सब-कलेक्टर साहब चुप हो जाते हैं और जिस रास्ते से आये थे उस रास्ते से चले जाते हैं।

कोमरम् भीम के युध्द आरंभ किये हुए सात महीने गुजर गए थे। धान के अभाव के कारण सब भूख से परेशान थे। नीचे से खाद्य-सामग्री आना बंद हो चुकी थी। लेकिन भीम उस आंदोलन को जारी रखने का लगातार प्रयास कर रहा था। उसी समय समाचार आया कि निज़ाम सरकार बड़ी सेना के साथ आक्रमण करने वाली है। यह समाचार सुनते ही भीम की सेना युध्द के लिए तैयार हो गयी।

कोमरम् भीम के अनुमति मिलते ही नगाड़े बजने लगे। लोग चारों ओर से डरते हुए जोड़ेघाट में आ गए। सबके मुँह पर फिर आंदोलन का उत्साह दिखाई देने लगा। भीम सबकी ओर कहने लगे मेरे काकाओं, मेरे बंधुओं, भाइयों हम युध्द की रंग भूमि में हैं। युध्द में हमें निश्चित सफलता मिलेगी। लेकिन हार गए तो हम में से कोई नहीं बच पाएगा। अगर बच गए तो हमने क्यों हार गए किस कारण हार गए ? इस बात का पता लगाना पड़ेगा।

हम इस जमीन के लिए, इस मिट्टी के लिए, अपने स्वतंत्र राज्य स्थापना की लिए आंदोलन करेंगे। हमारा आंदोलन व्यर्थ नहीं होगा। सरकार के सैनिक टिलों पर आ गए थे उस दिन युध्द की संशय चर्चा होती रही और सुबह हुई नहीं थी की भीम के सैनिक हर रास्ते पर दीवार की तरह डटे रहे। भीम के सैनिकों को हराना निज़ाम सरकार के लिए आसान बात नहीं थी। लेकिन उसी गाँव के कुर्दु पटेल ने भीम को धोखा देकर निज़ाम सरकार से हाथ मिलाया था। कुर्दु गुप्त रूप से निज़ाम सरकर को पठार का रास्ता बताता है। निज़ाम की सेना चोरी से पठार के ऊपर आ जाती है।

देखते ही देखते भीम के बारह सैनिक मार दिये जाते हैं। उस अंधेरे में झोपड़ियों को जला डालते हैं। वहाँ देखो, सरकार कोमरम् भीम वहाँ पर है। कुर्दु पटेल भीम की ओर इशारा करते हुए बताता है। भीम को देखते ही भीम पर गोलियों की बौछार होने लगती है। भीम जमीन पर गिर पड़ता है। 'जय रघल झंडा' कहते हुए अपनी मातृ भूमि की गोद में प्राण छोड़ देता है। गोंड वीर कोमरम् भीम का आंदोलन और साहस इतिहास के प्रत्येक पन्नो में चित्रित रहेगा।

2.4.2 'आदिवासी वीरूडु कोमरम् भीम' (उपन्यास)

'आदिवासी वीरुडु कोमरम् भीम' (किशोर उपन्यास) के रचयिता भूपाल है। इस उपन्यास का प्रकाशन, सन् 1994 ई. में हुआ। इस रचना का मूल उद्देश्य महा नायक कोमरम् भीम के व्यक्तित्व एवं उनके कार्य को समाज के सामने प्रस्तुत करना है। यह बच्चों को केंद्र में रखकर लिखा गया कोमरम् भीम का चित्रमय जीवन है। इस पुस्तक में लेखक ने कोमरम् भीम के समग्र जीवन, कार्य को स्पष्ट और सटीक रूप से अंकित किया है। इस उपन्यास का अध्ययन करने के उपरांत कोमरम् भीम के जीवन एवं समाज हित के कार्यों पर प्रकाश पड़ता है।

इस उपन्यास का मूलाधार साहु-अल्लम राजय्या द्वारा लिखित 'कोमरम् भीम' उपन्यास है। साथ-ही-साथ प्रस्तुत उपन्यास के लेखक ने 'कोमरम् भीम' नामक फिल्म में कोमरम् भीम के रूप में अभिनय किया है। उन्होंने आदिलाबाद तथा कोमरम् भीम से संबंधित जितनी भी जगहें हैं उन सबका भ्रमण किया है। इसलिए उनके द्वारा रचित यह उपन्यास अधिक प्रमाणित प्रतीत होता है।

ईसवी सन् 16वीं शताब्दी में कर्नाटक के बीजापुर में अली अहमदशाह का साम्राज्य था। इस राजा ने अपने पिता की मृत्यु के बाद लगभग 22 साल साम्राज्य की देखभाल की। उसके मृत्यु के बाद उसका नौ साल का बेटा इब्राहीम आदिलशाह राजगद्दी पर विराजमान होता है। लेकिन आदिलशाह की कम उम्र होने के कारण वह राज्य कार्यभार सुव्यवस्थित ढंग से नहीं देख सकते थे इसलिए महाराष्ट्र के एक ब्राह्मण मंत्री के हाथ में राज्य का कार्यभार सौंपा गया। इस ब्राह्मण मंत्री ने शासन की बागडोर को बहुत अच्छी तरह

चलाया। उनके इस कार्य से खुश होकर उनको आदिलाबाद नामक क्षेत्र दिया गया है। इस क्षेत्र का नाम कुछ और था लेकिन इब्राहीम आदिलशाह के नाम पर उसका नाम आदिलाबाद हो जाता है। इस प्रकार की ऐतिहासक जानकारी हमें मिलती है।

आदिलाबाद जंगल एवं पहाड़ों से घिरा हुआ एक दुर्गम क्षेत्र है। इस क्षेत्र को जितनी प्राकृतिक संपदा प्राप्त हुई वह अन्य किसी जिले को नहीं मिली। इसमें बड़े-बड़े हमेशा बहने वाले झरने हैं भिन्न-भिन्न फल और फूल हैं। अनेक पशु-पक्षी हैं। इसमें पेड़ भी विविध हैं। इस क्षेत्र में अनेक छोटी-बड़ी नदियाँ बहती हैं। इसमें अनेक आदिवासी जातियाँ निवास करती हैं। क्योंकि यह क्षेत्र उनके निवास के योग्य है। इन आदिवासियों की सभी जरुरतें इस जंगल से पूरी होती है।

'इन आदिवासी जनजातियों में गोंड, कोलाम, प्रधान, कोय्या, अंदाल, चेंचू, बिल्लुलू और लंबाडी आदि प्रमुख है'। ये आदिवासी जातियाँ जंगल में शिकार कर, फल-कंद मूल, खाकर जीवन यापन करते हैं। लेकिन समयानुसार उनके जीवन में अनेक समस्याएँ आने लगीं स्थानीय जमींदारों ने उनके निजी जीवन में हस्तक्षेप करना शुरू किया।

आदिवासी शिक्षा से कोसों दूर है। उनको शिक्षा की गंध पता ही नहीं है। इसलिए उनमें अज्ञानता की मात्रा बहुत है। उनकी इसी अज्ञानता का फायदा दिकू लोग उठाते हैं। उनका मनचाहा शोषण करते हैं। उनको जैसा चाहे वैसा इस्तेमाल करते हैं लेकिन आदिवासी इसके खिलाफ कुछ कहते तक नहीं। क्योंकि उनमें प्रतिरोध की चेतना नहीं है। उनको अपनी अस्मिता का अहसास ही नहीं है वह बेगारी भी करते हैं। जमींदार लोग उनके साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार करते हैं। उनको अपने खेतों में बिना मजदूर के जानवर जैसा काम करवाते हैं। गोंड आदिवासियों की हालत भी कुछ ऐसी ही है। इसी गोंड समाज में कोमरम् भीम का जन्म एक महत्त्वपूर्ण घटना एवं इतिहास को मोड़ देने वाली बात है।

कोमरम् भीम ने अपने समाज, बांधवों पर होने वाले अत्याचार का सख्त विरोध किया। उनका महत्त्वपूर्ण काम यह है कि उन्होंने अपने पिछड़े हुए समाज में अन्याय के खिलाफ लड़ने की चेतना का संचार किया। साथ-ही-साथ आदिवासियों में उनकी अस्मिता का अहसास जगाया। उन्होंने जुल्म के खिलाफ लड़ना सिखाया।

कोमरम् भीम साहसिक वीर नायक थे उनके समय में आदिलाबाद में निज़ाम का साम्राज्य था। निज़ाम सरकार आम जनता पर जुल्म करने की सभी सीमाएँ पार कर चुकी थीं। आदिवासियों को निज़ाम सरकार ने जंगल में घुसने से मना किया था। अगर कोई चरवाहा किसी जानवर को लेकर उसे चराने के लिए जंगल में लेकर जाता था तब जंगलवाले उसे बेरहमी से पीटते थे।

ऐसा ही पैकू नामक आदिवासी अपनी बकरियाँ लेकर अपने साथियों के साथ जंगल में चला जाता है। कोमरम् भीम उनके साथ होते हैं। उसी समय जंगलात वाले आते हैं और पैकू को पकड़कर सभी गाँव वालों के सामने दाएं हाथ की उंगलियाँ काटते हैं। इस घटना के बाद आदिवासियों में दहशत-सी फैल जाती है। इस दयनीय स्थिति को देखकर कोमरम् चिन्नु जो भीम के पिताजी हैं। वह गाँव के मुखिया थे। चिन्नु मरते समय गाँव छोड़कर जाने की सलाह देते हैं। उनकी बात मानकर तथा जंगलात वालों से बचने के लिए कोमरम् भीम और उनके साथी संकेपल्ली से सर्दापुर चले जाते हैं।

बाकी कथा 'कोमरम् भीम' उपन्यास पर ही आधारित है। नयेपन का अभाव इस उपन्यास में झलकता है। यह उपन्यास प्रेरणापरक व्यक्तित्व को युवाओं/किशोरों से परिचित कराने के लिए लिखा गया है।

2.4.3 'अडवि तल्लि' (वन माता) उपन्यास

'अडवि तल्लि' यह उपन्यास पुलुगु श्रीनिवास द्वारा लिखित है। इसका प्रकाशन सन् 1999 ई. में हुआ। इसमें लेखक के भ्रमण का अनुभव है। प्रस्तुत उपन्यास में दो धाराएँ समान धरातल पर चलती है। एक धारा है लेखक की जीवन गाथा। दूसरी धारा है कोमरम् भीम की पत्नी सोमबाई की जीवन-गाथा।

लेखक श्रीनिवास ने कोमरम् भीम की पत्नी सोमबाई से प्रत्यक्ष मिलकर उनके जीवन का लेखा जोखा प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत उपन्यास में कोमरम् भीम के मृत्यु के बाद उनके आंदोलन की हुई दयनीय दशा तथा गोंड समाज की दशा को उजागर किया गया है।

इस उपन्यास में लेखक के जीवन-गाथा को जान लेना अनावश्यक प्रतीत होता है। इसलिए उपन्यास की दूसरी धारा सोमबाई पर प्रकाश डालना महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। क्योंकि सोमबाई कोमरम् भीम की पत्नी है। लेखक ने सोमबाई का साक्षात्कार एवं अन्य जानकारी लेकर कोमरम् भीम के संघर्षमय जीवन गाथा को पाठकों के सामने रखा है तथा कोमरम् भीम के मृत्यु के उपरांत होने वाली सभी दैनंदिन स्थिति को दर्शाया है। इस उपन्यास में लेखक ने हैदराबाद से लेकर निर्मल, आदिलाबाद, इंद्रवेल्ली और जोड़ेघाट आदि होते हुए कोमरम् भीम की पत्नी सोमबाई का गुडेम 'पेद्दा दोबा' तक को प्रस्तुत किया है।

उपन्यास की पहली घटना निर्मल की है जो उट्नूर के गोंड राजा रामजी गोंड की है। रामजी गोंड ब्रिटिश सरकार से लड़ते हुए सन् 1860 ई. में गिरफ्तार हुए। उन्हें निर्मल लाया गया। वहीं पर उन्हें गोली मारकर बरगद के पेड़ से लटका दिया गया।

उपन्यास में इंद्रवेल्ली की घटना का जो उल्लेख लेखक ने किया है उसे देखकर यह लगता है कि यह घटना अमृतसर में हुयी जलियांवाला बाग हत्याकांड से किसी भी मात्रा में कम नहीं है। यह घटना 20

अप्रैल, 1980 ई. में घटित हुयी। इस घटना में सरकार के आंकड़े के तौर पर तेरह लोगों की मृत्यु हो गयी लेकिन वास्तव में यह आंकड़ा तेरह से अधिक था। लेखक इस घटना से पीड़ित इस्रुबाई नामक एक महिला से इस संदर्भ में जानकारी लेते हैं।

इसके बाद लेखक कोमरम् भीम की 52 वीं पुण्यतिथि (11 अक्टोबर, 1992 ई.) को जोड़ेघाट जाता है। वह कोमरम् भीम की पत्नी सोमबाई से मिलने की लिए उत्साहित है। लेकिन स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण सोमबाई उस समारोह में नहीं आ पाती है। वहीं पर लेखक कोमरम् भीम के साथी कोमरम् सूरू से मिलते हैं।

लेखक सूरू से कोमरम् भीम के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। तब सूरू बताता है कि निज़ाम सरकार भीम के मृत्यु के बाद मुझे कोमरम् भीम समझ कर तीन साल तक परेशान करती रही। क्योंकि कोमरम् भीम और मेरा घर का और पिता का नाम एक ही था। लेकिन बात यह थी की भीम गोंड समाज से थे और सूरू कोलाम के। सूरू कोमरम् भीम की समग्र जीवन गाथा लेखक को बताता है और अंत में वह कहते हैं कि तब से लेकर आज तक इस गाँव के जमीन का पट्टा सिध्दिक के नाम से है। इसी के साथ सूरू अपनी बात समाप्त करता है।

आगे चलकर लेखक कोमरम् भीम की बेटी रतुबाई से मिलते हैं। उनकी समस्याओं के बारे में पूछते हैं। रतुबाई को खुद का घर नहीं, जमीन नहीं और वह दूसरे के सहारे जी रही है। उसके बाद लेखक **पेद्दा दोबा** गाँव जाकर सोमबाई से मिलते हैं। जिस दिन वह सोमबाई से मिलता है। वह दिन था 22 अक्टोबर, 1992 ई. का। शाम का वक्त था, खेतों में चरने गए जानवर, खेत में काम करके मनुष्य, वापस गाँव की ओर लौट रहे थे। उस गाँव में लगभग तीस से चालीस घर थे। उन सभी के घरों का नाम कोमरम् है। इससे पता चलता है कि यह सभी निश्चित रूप से कोमरम् भीम के वंशज हैं।

उस गाँव में प्राथमिक सुविधा तक नहीं है। कोमरम् भीम के घर जाकर सोमबाई से मिलते हैं। उस समय सोमबाई की उम्र लगभग 80 साल थी। उनकी स्थिति अन्न के अभाव में बहुत बुरी थी। उसके शरीर में कोई ऊर्जा नहीं रही थी। वह क्षीण हुई थी। लेखक सोमबाई से पूछता है कि आपके घरों में कौन-कौन रहता है। तब सोमबाई कहती है कि- मेरा एक बेटा था महादु लेकिन वह रोग के कारण मर गया। अब मेरे उसके बच्चे सोनेराव, भीम राव, हन्मंत राव, लड़की रत्नाबाई और महादु की पत्नी बगुबाई रहते हैं। इतने लोगों की परवरिश मजदूरी से होती है और न हमारे पास जमीन है, न घर। जब निज़ाम सरकार जोड़ेघाट के आंदोलन में कोमरम् भीम की मृत्यु के उपरांत हमारी जो जमीन थी अपने कब्जे में कर ली। उसके बाद

अस्तित्व में आये लोकतंत्र ने अभी तक हमारे साथ न्याय नहीं किया। कहते हैं कि हर एक परिवार को दो-दो एकड़ जमीन का पट्टा देंगे लेकिन अभी तक यह कार्य संभव नहीं हुआ।

सोमबाई निज़ाम सरकार और आज की सरकार के विषय में कहती है कि निज़ाम सरकार तो कम से कम हमें पूछती थी। एक बार उन्होंने जमीन देने की बात भी की थी लेकिन आज की सरकार हमारी सुध भी नहीं लेती है।

इससे यह महसूस होता है कि आई.टी.डी.ए.(इंटीग्रेटेड ट्राइबल डवलपमेंट एजेंसी) द्वारा आदिवासी समाज के लिए इतनी सारी योजनाओं का कोई लाभ नहीं मिलता दिखाई देता है। सोमबाई कहती है गाँवों में जिसे जमीन नहीं है उसे सरकार की ओर से 30 रूपया हर महिना पेंशन मिलती है। वह भी निश्चित नहीं मिलती है।

लेखक आगे सोमबाई से पूछते हैं कि आपके प्रति पति का किस प्रकार का बर्ताव था। तब वह कहती है कि वह घर में बहुत सीधे थे लेकिन शत्रु के विरुध्द लड़ने के लिए वह बहुत क्रोधित होते थे।

हम तीनों उनकी पत्नियाँ थीं उनमे से मैं दूसरी पत्नी थी। अन्य दोनों के नाम भीमबाई और जंगुबाई। भीम बाई का निधन युध्द के पहले हो जाता है। और जंगुबाई आंदोलन कार्यों को खाना खिलाने का काम करती है। सोमबाई अपने पति को युध्द में अंत तक साथ देती है। युध्द में लड़ने वाली इस सोमबाई की स्थिति आज बहुत दयनीय है।

"इससे यही प्रतीत होता है कि जीतनेवाले का नाम इतिहास के पन्नों में दर्ज रहता है लेकिन हारने वाले का नाम मनुष्य के खून में बीज की भांति रहता है। समय आने से उस खून से अंकुर उग जाता है।"

निष्कर्ष के रूप में हम यही कह सकते हैं कि- गोंडों की स्थितियों में तब से लेकर आज तक कोई परिवर्तन नहीं आया। कोमरम् भीम जिन अधिकारों के लिए, माँगों के लिए लड़ रहे थे वह आज तक पूरी नहीं हो पायी। कोमरम् सोमबाई को सरकार की ओर से मिलने वाली तीस रूपए पेंशन में गुजर बसर करनी पड़ती है। इससे बड़ी विडंबना क्या हो सकती है ? आज भी यह समाज प्राथमिक सुविधाओं के अभाव में जी रहा है। उन तक न शिक्षा पहुंची है न स्वास्थ्य की सुविधा पहुंची है और न ही सड़क। आज भुखमरी से मरने वाले जैसी घटनाएँ घटित हो रही हैं यहाँ तक की सोमबाई भी भूखमरी का ही शिकार होती है।

2.4.4 'कोमरम् भीम' (उपन्यास)

'कोमरम् भीम' उपन्यास के लेखक एस. एम. प्राण राव है। इसका प्रकाशन वर्ष 2010 में रमण पब्लिकेशन से हुआ है। उपन्यास 'कोमरम् भीम' पर लिखे गए रचनाओं में एक महत्त्वपूर्ण रचना है। यह

कृति फिल्म निर्माण को केंद्र में रखकर लिखी गयी। इसलिए यह रचना अन्य रचनाओं से अलग ढंग की है। इसमें संवाद, भाषा पर अधिक ध्यान दिया गया है। उपन्यास कम फिल्म स्क्रिप्ट ही अधिक है। प्रस्तुत उपन्यास के लेखक ने 'कोमरम् भीम' पर बनी हुयी फिल्म में कार्य भी किया है। यह उपन्यास ही कोमरम् भीम पर बनी फिल्म का आधार है।

लेखक ने आरंभ में आदिलाबाद की पूर्व स्थिति पर प्रकाश डाला है। वह उस समय के संदर्भ में आदिलाबाद के बारे में लिखते हैं कि यह जगह हरियाली से, पेड़ों से चट्टानों से समृध्द था। विंध्या पर्वत से लेकर गोदावरी तक इस क्षेत्रों में हरियाली थी। गोदावरी आदि नदी का प्रवाहित जल इस सौंदर्य की अधिक बढ़ाता था। इस क्षेत्र की जमीन बहुत उपजाऊ है जिसमें अनेक प्रकार की फसलें निकलती है।

इस उपन्यास में आदिवासियों के घरों का सजीव वर्णन किया है। छोटे से गाँव में किसी भी आदिवासी बांधवों का पक्का मकान नहीं। सभी के घर घास-फूस के हैं और दीवारें गोबर से पोती गयी है। इन घरों से उनकी दरिद्रता का पता चलता है। इन घरों में भगवान को पूजने की अलग जगह होती है।

इस उपन्यास का एक प्रसंग बुक्का गुलाल का बच्चे को पढ़ाने का है तथा उनका कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जो आदिवासियों के गुडेम में पढ़ाने का कार्य करते हैं। जिसके बदले में उन्हें दक्षिणा के रूप में अनाज, फल, और शहद आदि के रूप में देते थे।

कोरंग रामु सरल व्यक्ति था। वह मेहनत करके अपनी आजीविका का निर्वाह करता था। इनके साथी कोमरम् भीम, अत्रम रघु, लिंगु, जाको और महादु आदि भी मेहनत करके अपनी आजीविका चलाते थे। एक दिन कोरंग रामु अपनी खेती का काम कर रहे थे उसी वक्त पटवारी देशपांडे और पट्टेदार हाफिज मियाँ आते हैं। उनसे विवाद होता है। इसी समय जंगुबाई जो कोरंग रामु की पत्नी है। आकर पटवारी से पूछती है कि कहाँ है तुम्हारी सरकार ? कहाँ रहती है ? तुम और तुम्हारी सरकार चाहे कुछ भी करो लेकिन हम जमीन नहीं छोड़ेंगे।

भोलेभाले आदिवासियों को लूटने वाले पटवारी, देशपांडे, हाफिजमियाँ और सिध्दिक को भीम और उनके साथी मौत के घाट उतार देते हैं। उपन्यास के एक प्रसंग में हाफिजमियाँ कहता है कि 'यह जमीन तो मेरे नाम पर है। आप जमीन को क्यों नहीं छोड़ोगे ?' उसी तरह सिध्दिक भी कहता है। इसका विरोध करते हुए रघु कहता है 'पट्टा तुम्हारे नाम पर है तो क्या हुआ ? जमीन तो हमारे कब्जे में है।'

कोमरम् भीम के आंदोलन से प्रेरणा पाकर कुरिसेंग सामु और शंभू भी निज़ाम सरकार का विरोध करते हैं और उनका भी अंत भीम की तरह ही होता है। कोमरम् भीम की प्रासंगिकता जस की तस बनी हुई

है। आज भी आदिवासियों पर अनेक अन्याय और अत्याचार होते हैं ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि कोमरम् भीम की विचारधारा को अपनाकर जुल्म का प्रतिकार करें।

2.4.5 'कोमरम् भीम' (नाटक)

श्री गोल्लपल्लि यादगिरि द्वारा लिखित 'कोमरम् भीम' नाटक सन् 2010 में लिखा गया अप्रकाशित नाटक है। गोल्लपल्लि यादगिरि को नाटक में, संगीत में, अभिनय के क्षेत्र में रूचि थी। वे कवि होने के साथ-साथ अच्छे अध्यापक भी थे। विद्यार्थियों को तैयार करते-करते नाटक और रंग मंच से जुड़े हुए थे। उस रूचि के कारण यह लिखा गया नाटक 'कोमरम् भीम' है।

कोमरम् भीम नाटक एक ऐतिहासिक नाटक है। जो नौ दृश्यों में विभक्त है। इस नाटक के नायक कोमरम् भीम हैं। कोमरम् भीम के चाचा कुर्दु के हाथों में जिम्मेदारी सौंपकर उनके पिता की मृत्यु हो जाती है। सुबह अलाव जलाके लोग चारों ओर बैठे हुए हैं। वहीं पर छोटे-बच्चे खेल रहे हैं। उसी दृश्य से नाटक का प्रारंभ होता है। बच्चें मोतीराम दादा को कथा कहने को कहते हैं। तब वे उनके पूर्वजों, राजा, महाराजाओं की कथा गायन स्वर में कहता है। उस कहानी के माध्यम से हम भीम- हिडिंबी की संतान के वंशज हैं। यह जानकारी होती है। मोतीराम दादा दोनों हाथों से तालियाँ बजाते हुए गायन स्वर में कहते हैं-

"सुनो सुनो भाई... सुनोरे बच्चों
गोंड कोलाम की कहानी सुनोरे भाई
पांडवों की वंशज सुनोरे भाई
भीम योध्दा का जन्म सुनोरे भाई
X X X X
वह घने जंगल में भीमराजा सुनोरे भाई
हिडिंबी नामक स्त्री को देखा सुनोरे भाई
दोनों का मिलन हुआ सुनोरे भाई
X X X X
वही हिडिंबी-भीम को पैदा होनेवाली संतान हम सब गोंड।"

जोड़ेघाट जंगल में पेड़ काटकर, पत्थर उठाकर, कचरा जलाकर, जमीन को साफ करके जमीन को बीज बोने योग्य बनाते हैं और उस वर्ष अच्छी फसल होने से गुडेम में खुशी से नाचते गाते हुए आनंदित थे। उसी समय निज़ाम सरकार के जमींदार, पटवारी, जमीन के पट्टेदार सिध्दिक और सेना आती है। और गुडेम के मुखिया कुर्दु से कहते हैं कि यह पट्टा के मालिक सिध्दिक है इसलिए आधी फसल देना होगा। जंगल

काटना अपराध है इसलिए हमें दावत दीजिए, कहते और जुल्म करते हैं। उससे कोमरम् भीम भावोत्तेजक होकर सिध्दिक को मारता है। वहीं पर उनकी मृत्यु हो जाती है। इसी वक्त पटवारी, अमीन सेना आती है। लेकिन तब तक भीम घने जंगलों में चला जाता है। अमीन की सेनाओं ने भीम के गुडेम को जलाकर राख कर देते हैं।

कोमरम् भीम वहीं से बड़े लोगों के अध्ययन से, अनुभव से गोंड जनजाति के जीवन में चेतना लाने की लिए अनेक विषयों की जानकरी लेता है। वहीं पर रहते हुए स्वतंत्रता सेनानी भगत सिंह और तेलुगु के वीर योध्दा अल्लुरी सीताराम राजु के इतिहास का अध्ययन करता है। और विटोबा की प्रेरणा से गोंड समाज में जागृति लाने की चेष्टा करता है। बाकी कथा पूर्ववर्ती रचनाओं पर आधारित है।

चरित्र-चित्रण

इस नाटक में कोमरम् भीम के साथ-साथ विटोबा, कुर्दु, पैकुबाई, महादु और मन्नेम् दोरा आदियों का कार्य महत्त्वपूर्ण है। प्रमुख रूप से इस नाटक में भीम, विटोबा, पैकुबाई और मन्नेम् दोरा का है।

कोमरम् भीम का चित्रण इस नाटक में हिंसा, अन्याय, अत्याचार, दमन के खिलाफ लड़ने वाले वीर सेनानी के रूप में चित्रित किया गया है। घने जंगल में रहनेवाले आदिवासी गोंडों के गुडेम में साहूकार के द्वारा बेचे जाने वाली वस्तु का विरोध करता है। प्रधान रूप से गिरिजन गुडेम में वस्तु के बदलाव के खिलाफ उसी प्रकार जंगल के पट्टेदार, दमन के खिलाफ लड़नेवाले कोमरम् भीम का चित्रण प्रमुख है। पट्टेदार सिध्दिक गुडेम जाकर कहता "अरे बदमाश सब घरों में है। घरों में घुसकर। मुर्गियों को, बकरियों को ले आओ। विरोध करने वाले को मार डालो चलो जाओ।" कहते हुए सैनिकों को भेजता है। "अरे ! शैतान के बच्चे रुक हिले तो टुकड़ा-टुकड़ा कर दूंगा।" कहते हुए कोमरम् भीम, सिंह की भांति गरज रहा था।

यह जंगल हमारा है। यह जमीन हमारी है। जल हमारा है। बीच में वे कौन कहते है... विरोध करता है। जल-जंगल-जमीन पर अधिकार जंगलों में रहने वाले आदिवासियों का होना चाहिए। जंगल पर हक हमारा है। भीम भोले-भाले गोंड आदिवासियों को चेतना लाने के लिए प्रेरित करता है। स्वतंत्रता के वीर सेनानी रामजी गोंड की प्रेरणा से गोंड़ राज्य की स्थापना का विचार रखते हुए भाषण देता है "गोंड कोलाम... बहनों और भाइयों ! सभी को राम राम ! वनवासी आदिवासी; हमारे पूर्वज पांडव थे। हम भीम की संतान है। पांडव वनवास करते समय भीम का विवाह हिडिंबी के साथ हुआ था। उनको दो पुत्र घटोत्कच और उनका छोटा भाई। वह दोनों महा बलशाली थे। घटोत्कच की संतान हीं गोंड है और उसके भाई की संतान ही कोलाम।

पांडव राजा भीम जंगल को काटकर खेती करते थे। पांडव हस्तिनापुर के राजा होने के बाद जंगल का राजा हमको बनाया। उसी समय से हमलोग वीर, वन रक्षक, जंगल के राजा, कल तक हम राजाओं की तरह जी रहे थे। आज से जो भी जंगल में आयेगा उसे मार भगा देंगे कहते हुए कोमरम् भीम अपना भाषण समाप्त करता है।

कोमरम् भीम के बाद दूसरा चरित्र विटोबा का है। भीम को अधिक प्रेरित करनेवाले व्यक्ति में एक विटोबा है। शिक्षा एवं ज्ञान का दीप जलाकर, स्वतंत्रता-संग्राम के लिए नौजवानों की आवश्यकता से ही आंदोलन सफल होगा। अपनी मातृभूमि दूसरे के शासन में है इसके लिए अपने समाज को संगठित, शिक्षित बनाना और अन्याय का प्रतिकार करना है।

दृश्य :

सुबह का सुनहरा समय, मुर्गियों की ध्वनियाँ, पक्षियों की आहट से और भी अँधेरा ही रहता है। उस अँधेरे को तोड़ कर सूर्य की किरण झाँकती है। धीरे-धीरे काम करके, कुछ खाकर, वह सुबह के पहले ही जंगल की ओर निकलते हुए गाय, बकरी आदि को साथ ले जाते हैं। थोड़े से सूर्योदय के साथ उजाला होता है उस उजाले में कुछ खपरैल का घर यहाँ, वहाँ खेतों में ज्वार और टीलों पर पेड़ दिखाई देते हैं।

बीच में कुछ लोग अलाव जलाकर बैठे हैं। उसी समय उठकर आये हुए बच्चे खेल रहे हैं। इसी दृश्य से ही नाटक प्रारंभ होता है। यह सहज दृश्य है। वास्तव में हमको घने जंगलों में पेड़ पौधों से घूमकर आने जैसा महसूस होता है। कहीं-कहीं तो खेतों में रखवाली करने वाले की छप्पर का घर और अलाव जलाकर बच्चे, आदिवासियों के जीवन को हमारे आँखों के समक्ष प्रस्तुत करने की कोशिश की गयी है।

इसके अलावा जोड़ेघाट गुडेम, ज्वार खेतों के बीच में मंदिर। उस मंदिर के सामने कुछ लोग बैठे हुए हैं। वह भीम के साथ-साथ अनेक युवक थिंसा (गुस्साडि) नृत्य करते हुए गाते हैं।

> "रेला रेला रेलारेला रेलारे होय होय होय -2
> हाईगा बतिके गोंडुल मम्मा रेला रेला रेलारे
> चेट्टूपुट्टा कोट्टीना पिंडी रेला रेला रेलारे
> कोंड कोनलो तिरिगे वारमु रेला रेला रेलारे
> सेलयेटी निटिला पारेवारमु रेला रेला रेलारे
> चेंगुन एगिरे चेपलमम्मा रेला रेला रेलारे।"

यह एक दृश्य का चित्रण है जो गिरिजन गुडेम में उनकी संस्कृतियों का सरल चित्रण है। साधारण रूप से हम चाहे किसी भी आदिवासियों के गाँव चले जाये वह उनका मनुष्य, बातें करते समय उनमें एक तरह की स्वतंत्रता और निर्भय भाव देख सकते हैं। उन सब के मन में कोई कपट नहीं बल्कि छोटे बच्चे के मन की तरह जीवन जीते हैं। यह एक वर्णनात्मक रूप से चित्रित किया गया दृश्य है जो वास्तव में हम करीब से देख रहे, जैसा लगता है।

संवाद :

कोमरम् भीम नाटक में चरित्र के द्वारा संभाषणों की सरलता दिखाई देती है। कोमरम् भीम पैकूबाई के साहस से प्रेरित होकर इस तरह कहता है कि प्रत्येक स्त्री शेरनी की भांति सरकार के खिलाफ लड़ाई करें। अपने पति, बच्चों को आंदोलन के लिए तैयार करे। "शिवाजी को युध्द में भेजनेवाली जीजा बाई, राणी दुर्गावती, रुद्रमा देवी, झाँसी लक्ष्मीबाई यह सब स्त्री हैं। अपने मन से आत्मग्लानि उतारो। यही हमारे आदर्श हैं। पुरुष समान हथियार पकड़कर आंदोलन के लिए तैयार रहे। डरो मत !।" कहते हुए कोमरम् भीम स्त्रियों को अपने भाषण से प्रेरणा देता है। इसलिए आंदोलन में स्त्री भी भाग लेती हुई दिखाई देती है। ऐसे संभाषणों को नाटक में दर्शाया गया है।

और इसी तरह कुर्दु की बातों से पढने की इच्छा जागृत होती है। वह कहते हैं- 'अशिक्षा से जीवन पूरा अँधेरा है। इसलिए शिक्षा अनिवार्य है। क्योंकि शिक्षा से जीवन का उद्धार होगा, इसलिए प्रत्येक घरों में शिक्षित होना अवश्य है।' इस तरह का लेखन नाटक में वास्तविक ढंग से चित्रित किया गया है।

गोंड गुडेम सामाजिक, आर्थिक रूप से, शिक्षा से पिछड़े हुए हैं। आदिवासी गुडेम में स्कूल तो है लेकिन अध्यापक नहीं। घने जंगलों में जाकर पढ़ानेवाले शिक्षकों की कमी है ऐसे शिक्षकों में, हजारों में से एक होते हैं जो पढ़ाने जाता है। हमारी मातृभूमि की रक्षा हमको करने के साथ-साथ अन्याय के विरुध्द, दमन के खिलाफ, नगाड़े बजाने वाले आदिवासी गोंड नेता कोमरम् भीम का व्यक्तित्व भगवान से कम नहीं। इस संदेश के साथ नाटक समाप्त होता है। इस नाटक की भाषा तेलंगाना क्षेत्र की हिंदी, उर्दू मिश्रित है जिसमें स्थानीय भाषा का पुट है ।

*****

तृतीय अध्याय

‘बिरसा मुंडा’ और ‘कोमरम् भीम’ के जीवन पर आधारित साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

तृतीय अध्याय

‘बिरसा मुंडा’ और ‘कोमरम् भीम’ के जीवन पर आधारित साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

जननायक बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम अपने-अपने कार्य के लिए सर्वत्र सुविख्यात है। इन दोनों महानायकों की तत्कालीन समय में जो भूमिका और योगदान रहा है वह आज भी अविस्मरणीय है। उनके विचार और उनके कार्य की प्रासंगिकता आज भी जस-की-तस है। इन दोनों महामानवों के कार्य को अनेक माध्यमों से समाज में प्रचारित-प्रसारित किया गया। इन महामानवों की कीर्ति को लोक गीतों द्वारा गाया जाता है, आज के समय में साहित्य की विभिन्न विधाओं में भी इनके कार्य को अभिव्यक्त किया जा रहा है। साहित्यिक-विधाओं में उपन्यास, कहानी, नाटक, जीवनी और कविता आदि लिखी जा रही है। साथ-ही -साथ कोमरम् भीम और बिरसा मुंडा के चरित्रों को फिल्मों के माध्यम से भी दर्शाने का सफल प्रयास किया गया है।

बिरसा मुंडा के चरित्र को उजागर करने के लिए ‘उलगुलान एक क्रांति-बिरसा मुंडा’ (2004) नामक फिल्म का निर्माण किया गया। जिसके निर्माता और निर्देशक ‘अशोक शरण’ है। दूसरी फिल्म 2008 में बनी ‘गांधी से पहले गंधिवास’ जिसके निर्माता और निर्देशक इकबाल दुर्रन थे। इन फिल्मों में बिरसा मुंडा के बचपन से लेकर उनके निधन तक की जीवन-यात्रा को दर्शाया है। उसी प्रकार कोमरम् भीम पर भी ‘कोमरम् भीम’ नाम से एक फिल्म का निर्माण हुआ। जिसके निर्माता और निर्देशक अल्लाणी श्रीधर है। इस फिल्म के निर्माण का आधार एस. एन. प्राण राव द्वारा लिखित उपन्यास ‘कोमरम् भीम’ है। इस फिल्म का प्रदर्शन 2010 में हुआ जिसे उत्कृष्ट दिग्दर्शन के लिए तेलुगु फिल्मों के लिए दिए जाने वाला सर्वोत्कृष्ट पुरस्कार ‘नंदी अवार्ड’ (दो) मिला। इस फिल्म में कोमरम् भीम के बचपन से लेकर उनके निधन तक की संघर्ष-यात्रा को दृश्यों के माध्यम से चित्रित किया गया है। कोमरम् भीम पर आधारित एक धारावाहिक का भी निर्माण हुआ था जिसमें फिल्म की भांति ही कोमरम् भीम के संघर्षों को दिखाया गया था। इस धारावाहिक का नाम ‘वीरभीम’ था। जिसके निर्माता और लेखक डॉ. सुरेश कुमार थे। इस प्रकार दोनों वीर नायकों के जीवन-संघर्ष को अनेक माध्यमों से उजागर करने का प्रयास किया गया है।

भारतीय स्वाधीनता-संग्राम में बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन दोनों ने अपने समाज में जागृति का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इन दोनों में समय की सीमा के अलावा सभी स्थितियों में साम्य और वैषम्य दिखाई देता है। इनके जीवन पर आधारित उपन्यास, नाटक आदि लिखे गए हैं और फिल्में भी बनी हैं। उनका तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए हमें ऐतिहासिक-पात्र, परिवेश, घटना, आंदोलन का स्वरूप, सांस्कृतिक-मुल्य, राजनीतिक सहभागिता और आंदोलन का उद्देश्य आदि का सहारा

लेना पड़ता है। इसी प्रकार हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के जीवन पर आधारित साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।

3.1 कथ्यगत

'जंगल के दावेदार' और 'कोमरम् भीम' दोनों भाषाओं की कृतियों में जिन महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जायेगा। जिनमें दोनों रचनाओं की कथा वस्तु महत्त्वपूर्ण तत्व है। दोनों भिन्न भाषाओं में रचित रचनाओं की कथावस्तु का तुलनात्मक अध्ययन कर साम्य-वैषम्य को दर्शाना ही तुलनात्मक अध्ययन का प्रथम चरण है।

बिरसा मुंडा पर आधारित उपन्यास 'जंगल के दावेदार' और कोमरम् भीम पर आधारित उपन्यास 'कोमरम् भीम' इन दोनों उपन्यासों की कथा वस्तु समान है क्योंकि इन दोनों उपन्यासों के नायक आदिवासी समुदाय से आते हैं। यह एक प्रकार की समानता ही मानी जा सकती है। इस प्रकार की अनेक महत्त्वपूर्ण समानताएँ प्रस्तुत कृतियों में समाहित हुई हैं। इन दोनों वीर नायकों के आंदोलन का जो मूल उद्देश्य है इसे दोनों रचनाकारों ने समान दृष्टिकोण से दर्शाया है। 'जंगल के दावेदार' में बिरसा मुंडा जिस जल-जंगल-जमीन के लिए अपने हकों के लिए, अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए लड़ते हुए दिखाई देते हैं। इसी प्रकार कोमरम् भीम पर आधारित रचनाओं की उद्देश्यात्मकता में समानता है।

दोनों उपन्यासों में यह दिखाया है कि दोनों वीर नायक संगठन बनाकर आंदोलन करते हैं। जैसे बिरसा के संगठन के संदर्भ में आंदोलन विषयक यह कथन देख सकते हैं। "उसी दौर में बिरसा ने आंदोलन की पूरी रणनीति बदलने की घोषणा की और विद्रोह की चिंगारी जंगल में आग की तरह फैल गयी। बिरसा ने उराँव और कोल से संपर्क किया। संघर्ष में सक्रिय सहयोग की अपील की। करीब आठ स्थानों पर संगठन केंद्र बने। डोंबारी पहाड़ी पर मुंडाओं की बैठक हुई। उसमें अंग्रेज शासक, ईसाई मिशनरी और जमींदारों के खिलाफ एक साथ संघर्ष करने की रणनीति बनी। बिरसा ने संघर्ष के शांतिपूर्ण तरीकों के समर्थन में अपने विचार रखे। मुंडाओं ने कहा कि स्थितियाँ बदल चुकी है। अब हुकूमत का शोषण- दमन सहनशक्ति की सीमा पार कर चुका है। जनता साथ है। बिरसा ने हथियार बंद संघर्ष को अनुमति दे दी।"[1]

यह उनके जीवन पर आधारित कृतियों की समानताएँ हैं। दोनों वीरनायकों के आंदोलन केंद्र जंगल के दुर्गम स्थान हैं। दोनों उपन्यासों में उपन्यासकारों ने उनके आंदोलनों का बहुत ही सजीव एंव विश्वसनीय चित्राकंन किया है। वह इतना प्राणवान है कि ऐसा प्रतीत होता है कि वह आंदोलन हम अपने आँखों से देख रहे हैं। इस संदर्भ में हम यह पंक्तियाँ देख सकते हैं- "पुलिस रिकार्ड के अनुसार उस दौरान आंदोलनकारियों

[1] आदिवासी सत्ता, फरवरी 2011- पृ. सं. 35

के हत्या के प्रयास के बत्तीस और आगजनी के 82 मुकदमें दर्ज किए गये। अंततः हुकूमत ने बिरसा आंदोलन को कुचलने के लिए पुराना रांची जिला और पुराना सिंहभूम जिला, सेना के हवाले कर दिया। तब बिरसाइतों और सेना के बीच सीधा संघर्ष शुरू हुआ। एक तरफ तीर-धनुष, कुल्हाड़ी और भाले-बर्छों से लैंस बिरसाइत और दूसरी तरफ सेना की बंदूकें। 10 जनवरी, 1900 को डोंबारी पहाड़ियों पर जमी बिरसाइत के जत्थें को सेना ने घेर लिया। सेना ने विद्रोहियों को हथियार डालने को कहा। जवाब में विद्रोहियों का नारा गूँजा, गोरों, अपने देश वापस जाओ। 9 जनवरी को सेना ने उन पर हमला बोल दिया। विद्रोहियों और फौज के बीच भयंकर युद्ध हुआ। करीब 200 मुंडा मारे गये। मारे गये लोगों में स्त्रियाँ और बच्चे भी थे। सइल रकब पहाड़ी पर हुए संघर्ष में तो ब्रिटिश हुकूमत के सिपाहियों ने अंधाधुन गोलियाँ चलाकर कई-कई आदिवासियों को भून दिया। उनमें ऐसी महिलाएँ भी थीं, जिसकी गोद में दूध पिता बच्चा भी था, मारे गये। सेना की ऐसी घेराबंदी और संघर्ष के बावजूद बिरसा पकड़ में नहीं आये।"[2]

आंदोलन की समग्र बारीकियाँ दोनों उपन्यासों में अभिव्यक्त हुई हैं। इन उपन्यासों की कथावस्तु में एक महत्त्वपूर्ण समानता यह है कि दोनों उपन्यासों में आंदोलन के समय परंपरागत शस्त्रों का ही प्रयोग किया गया है। बिरसा मुंडा और उनके साथी आंदोलन के समय जिन शस्त्रों का इस्तेमाल करते हैं वही कोमरम् भीम और उनके साथी भी प्रयोग करते हैं।

दोनों उपन्यासों का अध्ययन करने के उपरांत जो समानताएँ हमारे सम्मुख उजागर होती हैं उनमें से प्रमुख समानताएँ है- युद्धनीति। 'जंगल के दावेदार' इस उपन्यास में जिस प्रकार बिरसा मुंडा और उनके साथी अनेक नीतियों से आंदोलन कर अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। "दो साल तक बिरसा के नेतृत्व में समाज को परंपरागत मूल्यों से लैंस करने और संगठन को मजबूत करने के लिए शांतिपूर्ण गतिविधियाँ चली। इस बीच अपनाई गयी नीति और कार्यक्रमों में ईसाई मिशनरियों, अंग्रेज सरकार और जमींदारों के खिलाफ सीधे संघर्ष की कार्यवाहियों का निषेध किया गया। धार्मिक अभियान के तहत सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष को केंद्र में रखकर आदिवासी समाज को अंदर से मजबूत एवं संगठित करने का सिलसिला चलता रहा। हुकूमत को लगा कि, सब कुछ शांत हो गया। 1899 का अंत आते-आते अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक अस्मिता के प्रति जागृत आदिवासी समाज को अधिकार हासिल करने की बेचैनी प्रकट होने लगी।"[3]

---

[2] आदिवासी सत्ता, फरवरी 2011- पृ. सं. 35

[3] आदिवासी सत्ता, फरवरी 2011- पृ. सं. 34

लगभग उसी प्रकार 'कोमरम् भीम' नामक उपन्यास में कोमरम् भीम भी बिरसा मुंडा की भाँति अपने आंदोलन को सफल बनाने के लिए अनेक नीतियों का प्रयोग करते हैं। उनके युद्ध नीति में विशेषकर आंदोलन के पहले, अनेक गुप्त रूप से, सभा का आयोजन पूर्व नियोजन जंगल के अति दुर्गम क्षेत्र का प्रयोग करना, अपने हथियारों का इस्तेमाल करना, गाँव-गाँव जाकर अपने समाज को संगठित करना, अपने लोगों के मन में क्रांति की चेतना का प्रसार करना आदि महत्त्वपूर्ण तथ्य हैं। इन समग्र नीतियों का दोंनों उपन्यासों में सफलतापूर्वक प्रयोग हुआ है।

दोनों उपन्यासों में रचनाकारों ने बखूबी यह दर्शाया है कि किस प्रकार अंग्रेज और निजाम के अधिकारी उनकी अज्ञानता का लाभ उठाकर उनका शोषण करते थे। इस यथार्थ को दोनों उपन्यासों में उनके प्रसंगों के माध्यम से दर्शाया है। इस संदर्भ में हम कोमरम् भीम में आये प्रसंगों को देख सकते हैं। "गाँव में सब लोग बैठे हुए हैं।... उसी समय एक दिशा से सफेद कपड़े पहने हुए कुछ लोग आ रहे हैं।... उनके पास गाड़ियाँ भी... सोमु उधर देखते हुए कहता है कि वह साहूकार हैं।... साहूकार टोकरी में कुछ गुड़, कुछ नमक, बीड़ियाँ और कुछ बिस्किट लाए थे...। थोड़ा-सा नमक देकर बोरियाँ भर अरहर लेते थे। (बोरियों में 22 किलो अरहर) थोड़ा-सा गुड़ देकर बहुत सारा तिल लेते हैं। एक बीड़ी, तंबाकू देकर आधा बाल्टी शहद लेते थे। उस समय साहूकार के चीजों की कीमत आदिवासियों को पता नहीं थी।...वह जो चीजें देते थे उनकी कीमत भी आदिवासियों को पता नहीं थी। इस तरह शोषण करने वाले साहूकार ने गुडेम के वनों में धीरे-धीरे रंगीन कपड़े, जूते, कंघी, पाउडर लाने की शुरूआत की। चीजों को पैसा देकर लेने की आदतें नहीं थी।...उसी तरह किसी भी प्रकार की आपत्ति आने पर, आवश्यकता पड़ने पर साहूकार पैसे देते थे। और फसल आने पर सूद के साथ लेते थे। उनको हिसाब-किताब नहीं आता था। इस कारण ज्वार, तुवर, तिल, शहद, महुआ ही नहीं बल्कि जंगल में मिलने वाली धन-संपत्ति साहूकार लूट लेते थे।"[4]

दोनों उपन्यासों में रचनाकारों ने अंग्रेजों और निजामों ने आदिवासियों को किस प्रकार लगान, मुआवजा आदि के कारण लूटकर, उनको कंगाल बना दिया। उनको अपना गुलाम बनाकर, और लाचारी का जीवन जीने के लिए अभिशप्त बनाया। इसे अत्यंत मार्मिक रूप में दर्शाया गया है।

दोनों उपन्यासों में इन महानायकों ने अंधविश्वास के दलदल से अपने समाज को निकालने की कोशिश की है। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम यह दोनों महानायक उपन्यासों में अंधविश्वास के प्रखर विरोधी के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होते हैं। उनका ईश्वर, दैववाद, पुनर्जन्म आदि पर बिल्कुल विश्वास नहीं था। बिरसा मुंडा इस संदर्भ में विशेष महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए दिखाई देते हैं।

---

[4] आदिवासी वीरूडू कोमरम् भीम- पृ. सं. 27-28

कोमरम् भीम ने अपने समाज को इस दैववाद के भ्रम से निकालकर स्वयं पर विश्वास करने की बात की है। यहाँ पर इन दोनों महामानव की विचारधारा में बहुत अधिक समानता दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार शिक्षा के संदर्भ में भी दोनों के विचारों में काफी समानताएँ हैं। बिरसा मुंडा, कोमरम् भीम से अधिक पढ़े-लिखे थे। लेकिन कोमरम् भीम ने पढ़े-लिखे न होने के बावजूद शिक्षा की अहमियत को जान लिया था। उनका अपने समाज को संदेश था कि दिकूओं के चंगुल से छूटकारा पाना हो तो तुम्हें शिक्षा ग्रहण करनी होगी। बिरसा मुंडा के भी यही विचार थे। शिक्षा के संदर्भ में इस प्रकार हमें उनके विचारों में समानता दिखाई देती है।

दोनों में अंतिम समानता यह है कि दोनों महानायक अपने हकों के साथ-साथ अपने 'स्वराज्य' की माँग के लिए भी लड़ रहे थे।

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के उपन्यासों में समता की भाँति विषमता भी है। उनमें महत्त्वपूर्ण पहली विषमता यह है कि दोनों का समय अलग-अलग है। बिरसा मुंडा के आंदोलन का समय 1835-1900 ई. है तो कोमरम् भीम का 1935-1940 ई. है। इन दोनों उपन्यासों में कथावस्तु की यह प्रमुख विषमता मानी जाती है। इस समयगत विषमता के कारण परिस्थितियों में विषमता होने की संभावनाओं को हम टाल नहीं सकते। दूसरी प्रमुख विषमता है कि कोमरम् भीम का विवाह होना और बिरसा मुंडा का अविवाहित होना। दोनों उपन्यासों की कथावस्तु में और एक प्रमुख विषमता है कि बिरसा मुंडा और उनके साथियों का आंदोलन अंग्रेज और दिकूओं के जुल्म से, मुंडा आदिवासी बेहद त्रस्त थे, इसलिए वह अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ रहे थे, दूसरी ओर कोमरम् भीम निजाम के विरोध में लड़ रहे थे। क्योंकि उस समय निजाम की स्वयं अपनी एक रियासत थी। जिसके अंतर्गत कोमरम् भीम का क्षेत्र आता था। इसलिए निजाम अपने क्षेत्र में आने वाली जनता पर अमानवीय, अन्याय, अत्याचार और शोषण करता था। इसलिए कोमरम् भीम ने निजाम का विरोध किया। इसके बाद एक और प्रमुख विषमता प्रमाणित की जा सकती है- वह क्षेत्र की सीमितता की। बिरसा मुंडा जिस क्षेत्र के लिए लड़ रहे थे वह भौगोलिक दृष्टि से अधिक व्यापक था। कोमरम् भीम जिस क्षेत्र के लिए लड़ रहे थे वह बिरसा मुंडा के क्षेत्र की अपेक्षा सीमित था।

इस प्रकार इन दोनों कृतियों में हम साम्य और वैषम्य स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

3.2 परिवेश

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के व्यक्तित्व, समाज-कार्य और आंदोलन के संदर्भ में वैषम्य की अपेक्षा साम्य ही अधिक दिखाई देता है। परिवेश के संदर्भ में तो उनमें अधिक समानता पायी जाती है। बिरसा मुंडा जिस परिवेश में जन्में, पले-बढ़े और आंदोलन के लिए प्रेरित हुए उसी प्रकार के परिवेश में

कोमरम् भीम का भी जन्म हुआ और पले-बढ़े। कोमरम् भीम ने बिरसा मुंडा की भाँति ही आंदोलन की प्रेरणा लेकर अपना आंदोलन शुरू किया। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम दोनों वीर महानायकों का जन्म आदिवासी समुदाय में हुआ।

बिरसा मुंडा 'मुंडा' समुदाय में पैदा हुए, तो कोमरम् भीम गोंड समुदाय में पैदा हुए। इन दोनों की उनके जन्म की स्थितियाँ एक जैसी थीं। बिरसा मुंडा का पूरा परिवार उस समय दरिद्रता के चक्की में पीस रहा था। जिसका उल्लेख 'जंगल के दावेदार' उपन्यास में किया है जिसमें बिरसा मुंडा के परिवार में बड़े भाई कुछ न होने के कारण घर जमाई बनकर रहते हैं- "कोम्ता गरीब बाप का दुलारा लड़का था। उसके मन में एक फिकर थी कि किस तरह तीनों भाई, बाप-माँ एक छत के नीचे रूखा-सुखा खा-पहनकर रहें। बाप असमर्थ था- इसी से कोम्ता सोचता था कि अपना भला-बुरा लगना या न लगना छोड़ कर घर बसा ले।"[5]

उसी प्रकार कोमरम् भीम का परिवार भी इसी गरीबी का शिकार हुआ था। कोमरम् भीम का बचपन संकेनपल्ली गाँव में व्यतीत हुआ। उनके घर की परिस्थितियां दरिद्रता से पीड़ित थी इसी कारण वह उस गाँव को छोड़कर सर्दापुर गाँव में बस गए। दोनों के परिवार को रोजी-रोटी के लिए जंगल में दर-दर भटकना पड़ता था। इस प्रकार दोनों की कौटुंबिक स्थितियों में समानता देख सकते हैं।

बिरसा मुंडा ने जिस प्रकार अपने पूर्वजों के गौरवशाली पराक्रमों की वैभव की कहानियाँ सुनी थी, उसी प्रकार की कहानियाँ कोमरम् भीम ने भी मोतीराम दादा, पिता और भाभी से सुनी थीं। जैसे मोतीराम दादा के अनुसार बताई गयी रामजी गोंड की कहानी इस तरह है- 'पहले आपके पिता और तुम्हारे दादाओं के राज्य में बोलबाला था। हमारा राजा उट्नूर में रहता था। उस समय हमें यह लगान का कष्ट नहीं था और साहूकार की पीड़ा भी नहीं थी। जंगल पूरा का पूरा अपना था। अंग्रेज कहां से आए यह किसी को पता नहीं था। अंग्रेज और निजाम सरकार के बीच में दोस्ती का संबंध था। अंग्रेज जंगल में शिकार के लिए आकर, आदिवासियों को पकड़कर, ले जाकर, दास बना लेते हैं। तब अपना राजा रामजी गोंड इस अन्याय को देखकर आग बबूला हो जाता है। दाँत चबाने लगता है। यह खबर हर एक गाँव में फ़ैल जाती है।...सरकार, हम लोग जंगल को आधार मानकर जी रहे हैं। जंगल ही हमारी माँ है। जंगल ही हमारा राज्य है। हम अपके राज्य के विरोधी नहीं है। आप आकर हमें क्यों कष्ट दे रहे हो ? हमारे राज्य में आप दखलंदाजी नहीं करना। आपको शोभा नहीं देता। आपकी मर्जी युध्द की ही है क्या ? आदिवासी अपने राज्य के लिए सर कटायेंगे, लेकिन सर झुकाएंगे नहीं। हम अपने राज्य के लिए मरते दम तक लड़ेंगे। खबर ले जाने वाले सिपाही (दूत) का सर वापस लौटता है। युद्ध शुरू हो चुका था। नगाड़े बजने लगे। युद्ध की सामग्री तलवार, तीर, कुल्हाड़ी, शूल और पत्थर आदि इन वस्तुओं से तीन दिन तक युद्ध चलता रहा। चौथे दिन हमारे राजा रामजी गोंड को

[5] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 62

बंदी बनाकर निर्मल ले गए। गुडेम तितर-बितर हो गए। आठ दिन के बाद रामजी गोंड को निर्मल में बरगद के पेड़ पर लटका कर गोलियों से भून डाला।"[6] इस प्रकार की कहानियों से उनके मन में एक क्रांति की चेतना का संचार हुआ।

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम दोनों महानायकों ने तीन स्तरों पर समाज के हित का कार्य किया है। उनमें से पहला स्तर है सामाजिक, दूसरा स्तर है- आर्थिक और तीसरा स्तर है-राजनीतिक। इन स्तरों के संदर्भ में कुछ समानता है तो कुछ असमानताएँ भी दिखाई देती हैं। दोनों का सामाजिक स्तर पर महत्त्वपूर्ण कार्य यह रहा है कि दोनों नायकों ने अपने समाज को अंधविश्वास के दलदल से बाहर निकालने का प्रयास किया है। दोनों, समाजों में शिक्षा के अभाव के कारण अज्ञानता फैली हुई। और इसी अज्ञानता के कारण फैला हुआ है- घोर अंधविश्वास। दोनों नायकों ने अंधविश्वास के घातक दुष्परिणाम को जानकर अपने समाज को इसके चंगुल से बाहर निकालने का हर संभव प्रयास किया है। इसके लिए दोनों ने भी प्रथमतः अपने-अपने समाज को स्वच्छता का संदेश दिया। जैसे- 'जंगल के दावेदार' उपन्यास में बिरसा मुंडा ने मुंडा समाज में अंधविश्वास को तोड़ने के लिए निरंतर प्रयास किये हैं-

"जहाँ चाल्की मुंडानी को वे लोग गाड़ गए थे, उसी पत्थर पर बैठा। बच्चा होने पर चाल्की मर गई थी। चाल्की और उसकी संतान की आत्मा-'गाड़ी हुई'- परलोक में क्या बेचकर खाएगी, यह सोचकर मुंडाओं ने चाल्की के बदन पर से चाँदी की अँगूठी नहीं उतारी थी। चाल्की के पति ने आठ आने पैसे भी साथ में दफन कर दिए थे ! श्मशान के रखवाले बोड़ा को तुच्छ मानकर बिरसा ने कब्र खोद चाल्की को खींचकर बाहर निकाला। खींचकर निकालते समय वह स्वयं से मन-ही-मन कह रहा था, 'डरना मत'। वह सचमुच नहीं डरा। चाल्की की लाश अंधेरे में टटोलते-टटोलते बिरसा ने एक बात और समझी। भूख, पेट की भूख की शक्ति सबसे अधिक अविजेय होती है। भूख ही बोड़ा की शक्ति की उपेक्षा करने का साहस मन में जुटाती है। वह अँगूठी और पैसे लेकर रात-ही-रात बड़ाबाँकी के बाजार की ओर भाग गया।"[7]

इन दोनों का विशेष कार्य जो है वह है- अंधविश्वास का खंडन। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम दोनों को अंधविश्वास पर तनिक भी विश्वास नहीं था। आदिवासी समाज पूर्ण रूप से अंधविश्वास की गर्त में फँसा हुआ था। बिरसा मुंडा का मुंडा समाज और कोमरम् भीम के गोंड समाज में अगर किसी व्यक्ति को बुखार भी चढ़ता था तो वह भूत-पिशाच समझकर उस भूत को निकालने के लिए बकरे की या मुर्गी की बलि चढ़ा देते थे। यह सब दोनों को असंगत और अमानवीय लगती थी। उन्होंने अपने समाज, बंधुओं को इससे परिचित करा कर, उनके मन से, अंधविश्वास के भूत को निकाल दिया।

---

[6] आदिवासी विरुडू कोमरम् भीम- पृ. सं. 33-34

[7] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 86

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम दोनों का दृष्टिकोण तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक था। दोनों की समाज सेवा का कार्य भी उल्लेखनीय है। जब चेचक की बीमारी फैलती है तो बिरसा मुंडा उससे बचने के लिए तथा चेचक का संसर्ग न हो, इसलिए अनेक प्रतिबंध तथा मार्ग बतलाते हैं तथा अपने समाज की इस संक्रमण, बीमारी से रक्षा करते हैं। "जिन्हें चेचक नहीं हुई है, सब लोग नीम के पत्ते उबाल कर उसका पानी पियो। नीम के पत्ते जल में सिझाकर उस जल से बदन पोंछो। जिसके चेचक निकली हैं, लेकिन दाने नहीं निकले, सफेद तुलसी के पत्तों का रस अदरक के रस में मिलाकर उसे पिलाओ; दाने निकल आएँगे। उसके बाद सारे चेचक के रोगियों को करेले के पत्तों और हल्दी का रस मिलाकर पिलाना।... जो रोगी का बदन पोंछे, जो खाना दे, वह अलग रहे। दूसरे लोग जाकर जिस घर में चेचक नहीं हो वहाँ, उस घर में पड़ोसियों के साथ रहें।... जो मर जाए उसके कपड़ों की माया मत करो। ऐसा कपड़ा जलेगा। धोकर उसे मत पहनना। जिस घास की चटाई पर सोया हो, वह चटाई भी जलाई जाएगी।... मैं चंदन घिसने जा रहा हूँ। घावों पर चंदन लेप दूँगा? बिरसा घर-घर घूमने लगा। मुंडा हैजा-चेचक-साँप के काटने, बाघ के पकड़े जाने को भाग्य का लेख समझते थे। बिरसा उन्हें सिखाने लगा कि चेचक, हैजे के साथ भी लड़ा जाता है। जीवंत भगवान के साथ रहने से हैजा-बूढ़ा, चेचक-बूढ़ी-खुद ही भाग जाते हैं! गाँव से चेचक की महामारी चली गई।"[8]

उसी प्रकार कोमरम् भीम के पिता की मृत्यु हो जाती है क्योंकि गोंड आदिवासियों में घोर अज्ञानता है इसलिए वह चेचक और अन्य संक्रामक बीमारियों के संदर्भ में और उनके उपायों के संदर्भ में कुछ जानते नहीं हैं। ऐसी अज्ञानता के कारण न जाने कितने लोगों की मृत्यु हुई होगी। इसे देखकर कोमरम् भीम ने अपने आदिवासी समाज में संक्रामक बीमारियों के प्रति विशेष सजगता दिखलाई और अनेक उपाय बताए।

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम दोनों महानायकों ने जो महत्त्वपूर्ण सामाजिक कार्य किया है, वह शिक्षा का प्रचार-प्रसार। इन दोनों ने शिक्षा के महत्त्व को भलीभांति समझ लिया था। शिक्षा के अभाव के कारण होने वाले अपने नुकसान को भी वह देख चुके थे अब उनका यह प्रकट विश्वास हो चुका था कि अगर अपने समाज का विकास करना है तो उन्हें शिक्षित करना बहुत आवश्यक है। इसलिए बिरसा मुंडा ने प्रथमतः स्वयं शिक्षित होकर अपने समाज, बंधुओं को शिक्षा का महत्त्व समझा कर उन्हें शिक्षा लेने के लिए प्रेरित किया। उसी प्रकार कोमरम् भीम ने भी अपने समाज को शिक्षित बनाने के लिए अधिक बल दिया। जैसे 'कोमरम् भीम' नाटक में कोमरम् भीम के पिता कुर्दु शिक्षा का महत्त्व बताते हैं वह इस प्रकार कहते हैं कि "चार अक्षर (लाईन) सीखले बेटा! अशिक्षा से जीवन में संपूर्ण अँधेरा है। इस जंगल के द्वीप का अँधेरा

[8] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 100-101

मिटाना है। इसलिए शिक्षा अनिवार्य है। प्रत्येक घरों में शिक्षित होना अवश्य है।"[9] इन दोनों महानायकों ने अंग्रेजी शासक और तथाकथित दिकू लोगों से सजग रहने का संदेश अपने समाज, बांधवों को दिया है।

आदिवासी समाज प्रमुख रूप से पिछड़ा हुआ समाज है। इसके कई कारण हैं उनमें से प्रमुख है- शिक्षा का अभाव। इसलिए उनमें अज्ञानता की मात्रा अधिक है। उनकी इसी अज्ञानता का लाभ उठाकर उनको स्थानीय जमींदार एवं साहूकार लूटते थे। उनका अमानवीय तरीके से शोषण करते थे। इसका प्रमाण कोमरम् भीम के संदर्भ में हम देख सकते हैं- "गुडेम में गोंड, कोलामों के द्वारा उत्पन्न फसल ज्वार, तुवर, तिल... एक क्या सभी... बैल-गाड़ी नाले के किनारे से बेचने के लिए ले जा रहे हैं। बहुत ही कम दाम में, या साहूकार का पहले दिया हुआ कर्ज के रूप में छीन लिया जाता है। फसल उपजाने वाले गोंड, कोलामों को हिसाब-किताब न आने के कारण उनके धन संपत्ति लूट लेते थे। जिससे साहूकार के जनगाँव में बड़े-बड़े घर बनाये जाते हैं। शहर में व्यापार से लाभ नहीं होने के कारण व्यापारी निजाम को चंदा देकर गुडेम में आते हैं। उनके टोकरी में वस्तुएँ लाकर गाँव-गाँव घूमकर बेचते हैं। गुंटूर का तंबाकू खा कर देखिए, चाय पत्ता देश से लाया गया है। गुड़ का स्वाद जीभ से चख कर देखिए। नमक आपके जीवन में मिठास लाता है।... इन वस्तुओं की सही कीमत न जानने वाले भोले-भाले आदिवासी उनके समक्ष फसल और चीजें डाल देते हैं। इस तरह साहूकार के चंगुल में फँस जाते हैं। जंगल का सभी धन, नमक और गुड़ में चला गया। लूटने वाले गाँव आ गए।... महाराष्ट्र से आये हुए जागीरदार, मैदानी क्षेत्र से आये हुए ब्राह्मण, साहूकार, राव... ने गोंड, कोलामों की जमीनें छीन ली।"[10]

उनके इस शोषण एवं लूट को देखकर कोमरम् भीम ने उनको व्यवहारिक एवं समझदार बनाने का प्रयास किया एवं इस शोषण का विरोध करने की चेतना उनके मन में भर दी। इस प्रकार इन दोनों नायकों ने अपने विचारधारा एवं अपने कार्य से प्रभावित कर आदिवासी समाज को एक नई दिशा एवं दशा प्रधान की। उन्हीं के प्रभाव के कारण आदिवासी समाज में धीरे-धीरे ही सही किंतु बदलाव आ रहा है।

दूसरे स्तर का कार्य था- आर्थिक-सुधार। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम ने आदिवासी समाज को जमींदारों और जागीरदारों के आर्थिक शोषण से मुक्त करने के लिए आजीवन प्रयास किया। बिरसा मुंडा ने जिस प्रकार आर्थिक स्तर पर आदिवासी समाज में जागृति पैदा की उसी प्रकार कोमरम् भीम ने अपने गोंड आदिवासी समाज में भी आर्थिक-शोषण के विरुद्ध लड़ने की चेतना का संचार किया। आदिवासी समाज दोनों नायकों के नेतृत्व में आर्थिक-शोषण के खिलाफ संगठित होने लगे और दोनों नायकों ने इनके नेतृत्व की कमान संभाली। "बिरसा ने उन्हें समझाना शुरू किया, मुंडा बड़े बंधनों में फँसे हुए हैं। दिकू लोगों ने

---

[9] कोमरम् भीम (नाटक)

[10] कोमरम् भीम- पृ. सं. 15-16

मुंडाओं को उधार-कर्ज-कोयला-खान-रेल-जेहल-अदालत वगैरह के हजारों चक्करों में फाँस लिया है। अब हमें सब तरह से आजाद होना पड़ेगा। सारे विदेशियों को भगाएँगे। किसी को कोई लगान नहीं देंगे। सारे जंगल ले लेंगे। जैसे पहले लिए थे, वैसे ही अब लेंगे।"[11]

आदिवासी समाज को उनके अज्ञानता और विवशता के कारण बेगारी करनी पड़ती है। जमींदार और जागीरदार उनसे मेहनत तो रात-दिन करवा लेते थे लेकिन उसके बदले उन्हें कुछ नहीं मिलता था। इस प्रथा के विरोध में बिरसा मुंडा ने आवाज उठाई। अपने-अपने आदिवासी समाज को जागृत किया। उसी प्रकार कोमरम् भीम के नेतृत्व में भी इस बेगारी-प्रथा के विरुद्ध आंदोलन आरंभ हुआ। उनका आर्थिक-शोषण यह एक प्रमुख समस्या थी। उनके जमींदार और जागीरदार उनसे जी-तोड़ मेहनत तो करवा लेते थे लेकिन उसके बदले में उन्हें बहुत कम मजदूरी दी जाती थी। यह एक प्रकार से उनका आर्थिक-शोषण ही था। इसके विरुद्ध बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम ने आवाज उठायी थी।

उनका सबसे अधिक आर्थिक-शोषण होता था 'कर' के रूप में। क्योंकि उनसे अंग्रेज सरकार के कारिंदे मनमानी करते थे और निश्चित किए हुए कर से अधिक पैसे वसूल करते थे यह एक प्रकार का उनका आर्थिक शोषण ही था। साहूकार के द्वारा होने वाला आर्थिक शोषण उनके जीवन में अधिक प्रभाव डालता था। साहूकार उनको जरूरत होने पर कर्ज देते थे लेकिन जब कर्ज वसूल करने के वक्त आदिवासियों के पास पैसा नहीं होता तो जबरदस्ती से उनकी जमीन और जानवर हड़प लिये जाते थे। जैसे भूपाल द्वारा लिखा गया उपन्यास 'कोमरम् भीम' में एक प्रसंग महत्त्वपूर्ण है- "अनेक गुडेम में घूमकर संकेनपल्ली आता है- साहूकार, उनके साथ कुछ और लोग। उसने इस गाँव के पटेल चिन्नु को बुलाने को कहा। गाँव में हर एक घर पर उनका बकाया है। हर फसल का अधिक हिस्सा साहूकार मांगा करता है। साहूकार गाँव आने पर हर एक व्यक्ति से मुस्कुराता बात करता है। उनके पास खाते की डायरी निकाल कर, पढ़ना-लिखना नहीं आने वालों के सामने रखा और कहने लगा, 'देखो इसको' कह कर कुछ बताता है, यह तुम्हारा अँगूठा कहता है। भोले-भाले आदिवासी इसको सही मानते हैं। कर में लिया गया दस रुपए को सौ रुपए बता कर लूटते थे। इसी प्रकार आदिवासी रोजमर्रा का जीवन का धर्म मानते हुए फसल को जोतते हैं।"[12] यह उनका आर्थिक अतिशय अमानवीय प्रकार था। इन सब शोषण को रोकने के लिए बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम ने सर्वप्रथम अपने समाज में जागृति निर्माण की और आदिवासियों के होने वाले शोषण के समूल नष्ट करने का सफल प्रयास किया।

---

[11] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 105

[12]आदिवासी विरुडू कोमरम् भीम- पृ. सं. 28

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम ने जिस महत्त्वपूर्ण कार्य को तीसरे स्तर पर किया वह है- राजनीतिक स्तर। दोनों भी यह भलीभाँति जानते थे कि राजनीतिक के सहारे ही हम अपने अधिकारों और राज्यों को प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए दोनों ने भी अपने अपने आदिवासी समुदायों को संगठित कर उनमें राजनीतिक चेतना की चिंगारी जला दी। आगे चलकर यही राजनीतिक चिंगारी एक आग के रूप में फैल गई। दोनों का महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि इन्होंने अपने समाज को राजनीतिक अधिकारों के प्रति सजग किया। इसी का परिणाम है कि आदिवासी समुदाय के लोग अपने अधिकारों के साथ-साथ स्वराज्य की भी माँग करने लगे। उनके इस आंदोलन को शांत करने के लिए निज़ाम सरकार द्वारा कुछ अधिकारी भेजे जाते हैं। वह अधिकारी कोमरम् भीम को जमीन का लालच देकर कहते हैं कि हम तुम्हें 12 गाँवों को जमीन देते हैं तुम अपना आंदोलन वापस ले लो। उनके इस प्रस्ताव को कोमरम् भीम ठुकरा देते हैं। इस प्रकार कोमरम् भीम जमीन के लालच में न आकर अपने स्वराज्य के लिए और अपने हकों के लिए अपना आंदोलन जारी रखते हैं। “हमें बारह गाँव की जमीन ही नहीं चाहिए बल्कि बारह गाँवों पर राज्याधिकार चाहिए।... बारह गाँवों का ही नहीं- उट्नूर से लेकर राजोरा तक सभी गोंड राज्य के अधीन ही राज्य का शासन करने के लिए अधिकार चाहिए।”[13]

आदिवासी समुदाय को प्राय: पिछड़ा और अज्ञानी माना जाता था। उनको हाशिये के समाज के लोग निम्न एवं तुच्छता के दृष्टि से देखते थे। आदिवासियों ने उनके इस विचार एवं सोच का विरोध कर समान व्यवहार तथा समान हकों का दावा किया। आज सभी आदिवासी समुदाय अपने हकों के प्रति जागरुक है। अपना अच्छा, भला जानते हैं। उनमें राजनीतिक चेतना भी है। यह सब बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के शिक्षा और आंदोलन का परिणाम है।

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम ने राजनीति के सहारे ही अपने समाज को न्याय दिलाने का कार्य किया है। उन्होंने अपने समाज, बांधवों को संगठित कर संगठन शक्ति का एहसास दिलाया और ब्रिटिश सत्ता और निजाम सत्ता को जड़ से हिलाया। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम अच्छी तरह जानते थे कि राजनीति के सिवाय समाज के विकास का कोई अन्य मार्ग नहीं है।

निष्कर्ष के तौर पर देखा जाए तो आदिवासी समाज सभी क्षेत्रों में पिछड़ा हुआ है। सामाजिक क्षेत्र में भी उनकी स्थिति अत्यंत दयनीय है। मुख्यधारा के समाज भी उनको जान- बूझकर मुख्य प्रभाव से दूर रखता है। वह आज भी जिस स्थिति में थे, उसी स्थिति में, उनकी स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। जैसे गोंड और मुंडा समाज का उदाहरण उन पर रचे गए साहित्य में देख सकते हैं। सामाजिक स्थिति की भाँति ही उनकी आर्थिक स्थिति है। आर्थिक स्थिति में वह बहुत पिछड़े हुए हैं। उनकी अज्ञानता का लाभ

[13] कोमरम् भीम- पृ. सं. 183

उठाकर उनको कोई लूटता है। उनसे बेगारी करवाते हैं उनकी चीजों को कम कीमत पर खरीद लेते हैं और उनका घोर आर्थिक शोषण करते हैं। उनकी आर्थिक स्थिति में पहले की अपेक्षा कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। वह जैसे थे उसी स्थिति में आज रहने के लिए मजबूर है। इसका उदाहरण कोमरम् भीम के क्षेत्र के जोड़ेघाट में रहने वाले गोंड, कोलाम, आदि आदिवासियों को देख सकते हैं। उनकी स्थिति आज भी दयनीय है।

3.3 जीवन-निर्वाह पद्धति

आदिवासी समुदाय प्रमुखतः जंगल में निवास करने वाले समुदाय हैं। वह जीविकोपार्जन हेतु जंगल में घूमते, रहते हैं। घूमना ही इनका मूल स्वभाव है। यह खाद्यान्न हेतु समग्र जंगल में परिभ्रमण करते हैं। आदिवासियों के संदर्भ में 'घुमंतू' शब्द एक परिभाषित शब्द के रूप में उभर कर आता है। 'घुमंतू' के भी दो प्रकार हैं-एक वे होते हैं जो देश, प्रदेश में घूमते रहते हैं और दूसरे वे जो अपने ही जंगल में घूमते हैं। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम पर आधारित उपन्यास है उनमें मुंडा आदिवासी स्थिर है क्योंकि उनकी खेतियां स्थिर है और निश्चित है। 'कोमरम् भीम' पर आधारित उपन्यास में जो गोंड समुदाय वह घुमंतू हैं। इसलिए उनके बीच स्वास्थ्य और शिक्षा की सुविधा नहीं पहुँच पाती इसलिए कोमरम् भीम के पिता का चेचक की बीमारी से निधन हो जाता है। **"भूखा मरना इसके अलावा कुछ याद नहीं आता है, पैर पर लगी घाव की जलन बढ़ती जाती है जिसमें गंदगी निकल रही है।"**[14]

भारत में जितने भी आदिवासी जनजातियाँ हैं उनमें अधिकांश जनजातियाँ घुमंतू हैं कुछ जनजातियाँ स्थिर हैं। आदिवासी समाज घूमते-घूमते ही कुछ काल के लिए खेती करते हैं। इस खेती का स्वरूप बहुत तत्कालीन होता है। किसी एक स्थान पर जंगल काट कर, पत्थर उठाकर, कचड़ा जलाकर, खेती लायक बनाया जाता है। बारिश होने के पहले बीज बोया जाता है। और जब उस खेती में फसल आती है तो उसे काटने के के बाद फिर उस जगह पर खेती नहीं करते। कहीं अन्य जगह ढूंढते हैं।

बिरसा मुंडा का समाज **'झूम खेती'** पर आधारित अधिक बल देता है। उसी प्रकार कोमरम् भीम का गोंड समाज भी '**झूम खेती'** करता है और खेती के लिए अपने प्राणों को भी त्यागने के लिए तैयार रहता है। मुंडा आदिवासी समुदाय अपने खेतों में प्रमुख रुप से **"धान, गेंहूँ, दाल और बाजरा"**[15] आदि फसल उगाते हैं। गोंड आदिवासी समुदाय अपने खेतों में **"ज्वार, अरहर, तिल"** आदि फसलों का उत्पाद करते हैं

[14] कोमरम् भीम- पृ. सं. 31

[15] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 235

। बीज बोने से लेकर काटने तक **“रात-दिन खरगोश, हिरणों, जंगली सूअरों, और बंदरों को नगाड़े के माध्यम से सुरक्षा करते हैं।”**[16] आदिवासी के लिए खेती ही उनकी आजीविका का मुख्य साधन है।

आदिवासी समाज का एक महत्त्वपूर्ण सहारा गाय, बैल, भैंस ,बकरियाँ और मुर्गियां आदि है। इनके द्वारा आदिवासियों की आजीविका का निर्वाह होता है। आदिवासी समुदाय बहुत पहले से इन पालतू प्राणियों के सहारे जीवन जीता आया है। आज के समय में भी यही सभी प्राणियों को आदिवासी पालते हैं। उनको बाजारों में बेच कर उससे धन प्राप्ति करते हैं। बिरसा मुंडा का आदिवासी समुदाय भी इन पालतू प्राणियों के सहारे अपना जीवन-व्यतीत करता है। उसी प्रकार कोमरम् भीम का गोंड समुदाय भी अपने जीवन-निर्वाह में इन पालतू प्राणियों का सहारा लेता है।

इन प्राणियों में बैल, भैंसा आदि खेती में हल के लिए काम आते हैं। और एक गाँव से दूसरे गाँव जाने के लिए बैलगाड़ियों का भी इस्तेमाल किया जाता है। उसी तरह गाय, भैंस और बकरी आदि दूध के लिए काम आती है तो बकरियाँ और मुर्गियाँ आदि बलि देने के लिए उपयोग लाते हैं। इस प्रकार आदिवासी समुदाय के जीवन में इन पालतू प्राणियों की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इन सभी पालतू प्राणियों का मार्मिक चित्रण ‘कोमरम् भीम’ और ‘जंगल के दावेदार’ उपन्यास में हुआ है।

आदिवासी समुदाय समाधान कारक प्रवृत्ति का है वह अधिक धन संचयन करना नहीं जानता। दो जून का खाना मिलना ही उनके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। आदिवासी समुदाय में धन का अभाव होता है और उनके उत्पादन के साधन भी बहुत सीमित होते हैं इसलिए उनके पास धन इकट्ठा नहीं हो पाता है। वह जितनी आवश्यकता है उतना ही प्राप्त करता है अधिक लेना या लेकर संचयन करना उनकी प्रवृत्तियों के विरुद्ध है। जैसे ‘कोमरम् भीम’ पर लिखा गया उपन्यास का एक प्रसंग में देख सकते हैं- “सब-कलेक्टर कहता है कि कोमरम् भीम आपको और आपके परिवार (चाचाओं) को भूमि का पट्टा देंगे।”[17] तब भीम इस बात को ना करता है। आदिवासी समुदाय के जीवन में वनों का अनन्य महत्त्व होता है। इसलिए आदिवासी समुदाय जंगल को अपनी माँ के रूप में पूजता है। जिस प्रकार माँ अपने बच्चे का पालन-पोषण करती है उसी प्रकार जंगल भी आदिवासी समाज का पालन पोषण करता है।

आदिवासी मुख्य रूप से वनों पर ही आधारित है। उनका उदर-निर्वाह का साधन, प्रमुख रुप से जंगल से उन्हें कंदमूल, विविध फल, महुआ और शहद मिलता है जिसके सहारे वह अपना जीवन गुजारते हैं। बिरसा मुंडा का मुंडा आदिवासी समुदाय भी पूर्ण रुप से जंगलों पर आधारित है। मुंडा समाज के लड़के

[16]कोमरम् भीम- पृ. सं. 4
[17]कोमरम् भीम- पृ. सं. 181

या अन्य कोई भी खाली नहीं रहता है जैसे बिरसा मुंडा आठ बरस की उम्र में पढ़ने के स्थान पर काम करता है सारा दिन **"बकरियाँ चराकर, जंगल से काठ-पत्ते-फल-कंद-शहद लाकर घर में मदद करता।"**[18] उसी प्रकार कोमरम् भीम का गोंड समुदाय भी जंगल पर आधारित है। जंगल में मिलने वाले तेंदूपत्ता, महुआ, इमली आदि पर।

वनों से होने वाला एक और महत्त्वपूर्ण फायदा है वनों से निर्मित घर। आदिवासियों के घर प्रमुखता से लकड़ी और घास-फूँस के होते हैं। जैसे 'जंगल के दावेदार' उपन्यास में बिरसा मुंडा का घर के बारे में करमी, बिरसा की माँ कहती है कि- **"घर तो हो गया है कथरी की तरह। इधर सियो, उधर फट जाता है। सब फट जाने पर फिर एक दिन जुड़ न सकेगा।"**[19] जंगल से उनके उदर-निर्वाह के लिए अनेक जंगली प्राणी भी मिलते हैं जिनको शिकार कर वे अपनी भूख मिटाते हैं। जीवन उपयोगी अनेक वस्तुएँ बनाई जाती है।

मुंडा समुदाय और गोंड समुदाय के खान-पान में विशेष अंतर है। यह अंतर भौगोलिक क्षेत्रों के कारण या अलग-अलग परिवेश के होने के कारण भी हो सकता है। गोंड समाज को जो खाद्यान्न या पदार्थ मिलते हैं वह मुंडा समाज या मुंडा क्षेत्र में नहीं मिलते हैं। मुंडा आदिवासियों में **'घाटो'** पदार्थ खाया जाता है। "घाटो एकमात्र है जो मुंडा लोगों को खाने को मिलता है।"[20] 'घाटो' अर्थात मिला-जुला मोटा अनाज। इसे नमक के साथ मिलाकर खाते हैं। कभी-कभी भात का भी इस्तेमाल इनके खाने में होता है।

गोंड आदिवासी समुदाय अपने खाने की चीजों में- ज्वार की रोटी, या ज्वार से बना अंबली, बाजरा आदि का इस्तेमाल करते हैं। कभी-कभी त्यौहारों के अवसर पर इन लोगों को गेहूँ की रोटी खाने को मिलती है।

इस प्रकार मुंडा समाज और गोंड समाज के खाने में, भिन्नता दिखाई देती है। लेकिन अधिक मात्रा में ये दोनों समुदाय जंगल पर अधिक निर्भर होते हैं। जंगल में विविध प्राणियों का शिकार करके अपना जीवन का निर्वाह करते हैं। वे शिकार भी ऐसे प्राणियों का करते हैं जो अधिक मात्रा में मिलते हैं, जो दुर्लभ नहीं। जैसे-जंगली सूअर, खरगोश, तितर और हिरण आदि।

भारत में जितने भी आदिवासी समुदाय हैं उन सबकी वेश-भूषा अलग-अलग है। मुंडा समाज की वेश-भूषा अन्य समाज से अलग है। मुंडा लोग सर पर गमछा बाँधते हैं और कमर के नीचे धोती पहनते हैं।

---

[18]जंगल के दावेदार- पृ. सं. 39

[19] जंगल के दावेदार- पृ. सं 39

[20] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 9

उनका अन्य बदन खुला ही होता है। यह उनकी प्रमुख वेश-भूषा है। स्त्रियाँ अपने कुछ महत्त्वपूर्ण अंगों को ढक कर रहती है। उनका बाकी बदन भी पुरूषों जैसे खुला ही रहता है। बिरसा मुंडा के समाज में केवल पंचायत के समय में पहनने वाली वेश-भूषा इस तरह है जो **"सब बीरसाइतों का पहनावा था सफेद धोती। घुटनों तक नीची पहने हुयी सफेद धोती ! पैरों में घर के बने कच्ची लकड़ी के खड़ाऊँ। खड़ाऊँओं का अभ्यास नहीं था, इसलिए उन्हें पैरों में डोरी से कसकर बाँधा गया था।"**[21] गोंड समाज की वेश-भूषा एक तरह मुंडा समाज की भांति ही धोती और पगड़ी है बाकि बदन खुला रहता है। मुंडा समुदायों की स्त्रियों की भांति गोंड समुदाय की स्त्रियों की वेश-भूषा में विशेष अंतर नहीं है। गोंड स्त्रियाँ सिर्फ सारी पहनती है वह ब्लाउज नहीं पहनती है।

समग्र भारत में जितने भी आदिवासी समुदाय है वह जंगल में निवास करते हैं। विशेषकर मुंडा आदिवासी और गोंड जनजाति अधिकतर जंगल में रहती है। इनके गाँव में दस-बीस घर होते हैं। इनके गाँव एक-एक किलोमीटर की दूरी पर होते हैं। जिनमें अनेक जन जातियां रहती हैं- उनमे गोंड, कोलाम, नायक पोड, प्रधान आदि प्रमुख हैं। उसी प्रकार मुंडा समाज के "गाँव भी ऐसे ही थे-जंगल के गाँव ! किसी में दस घर थे, किसी में बीस।"[22] और घरों की रचना गोंड जैसी है।

मुंडा समाज के घर लकड़ी, घास-फूँस से बने होते हैं। हर वर्ष बारिश के मौसम के पहले इसकी मरम्मत करते हैं। उसी प्रकार गोंड समुदाय के घर भी जंगल में मिलने वाली लकड़ी और घास से बने हुए होते हैं। लेकिन इस समुदाय के गाँव के 'मुखासी' का घर मजबूत होता है। मुखासी के घर का वर्णन 'कोमरम् भीम' उपन्यास में हम देख सकते हैं- "मुखासी का घर खपरैल का है- चारों ओर दो तीन एकड़ में छड़ी के द्वारा बनी हुई संरक्षक है- छड़ी के संरक्षक में घास-फूँस से बनी हुई बड़ी-बड़ी गौशाला है... एक में बैल, दूसरे में गाय, बकरी और तीसरे में... उसी को लग कर बड़े खपरैल का घर है, बाएँ ओर और दो खपरैल के बड़े घर हैं- एक में सरकारी अधिकार आए तो रहते हैं- उसी घर के पीछे छोटे-छोटे तीन खपरैल के घर हैं- जिसमें अनाज रखते हैं- इतना बड़ा घर कोंडल और कोमरम् भीम ने कभी नहीं देखा था।"[23]

आज के संदर्भ में इनकी स्थितियों में पहले की अपेक्षा परिवर्तन हुआ है। लेकिन आदिलाबाद के गोंड जनजातियों में उनकी स्थिति जस-की-तस है। उनके परिस्थितियों में आज भी बदलाव नहीं दिखाई देता है। जिनको आवश्यक सामान्य सुविधा का लाभ आज भी नहीं मिल पाया है। दोनों समाज के आदिवासी समुदाय आज भी उसी स्थिति में रह रहे हैं। इस प्रकार आदिवासियों का जीवन व्यतीत होता है

[21] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 158
[22] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 138
[23] कोमरम् भीम- पृ. सं. 48

। उनके जीवन-निर्वाह पद्धति में जंगल की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए वह जंगल को माता के रूप में पूजते हैं। इस प्रकार मुंडा समुदाय और गोंड समुदाय के जीवन निर्वाह पद्धति में कुछ साम्य है तो कुछ वैषम्य भी है।

3.4 सांस्कृतिक मूल्य

3.4.1 संस्कृति

'संस्कृति' शब्द 'सम' उपसर्ग के साथ संस्कृत 'की' (ङु) 'कृ' (त्र्) धातु से बनता है। जिसका मूल अर्थ है- 'साफ' अथवा 'परिष्कृत' करना है। आज की हिंदी में यह अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' इस शब्द का पर्याय माना जाता है। 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग कम से कम दो अर्थों में होता है एक व्यापक और दूसरे संकीर्ण अर्थ में। संस्कृति और सभ्यता को पर्यायवाची मानने पर उन शब्दों के अंतरों पर भी विचार करना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इसके विपरीत संस्कृति का अर्थ चिंतन तथा कलात्मक सृजन की वह प्रक्रिया होती है जो मानव व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात उपयोगी न होते हुए उसे समृद्ध बनाने वाली है।

3.4.2 भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति को परिभाषित करना या उसे संक्षिप्त रूप में समझना अत्यंत कठिन है क्योंकि भारत के लंबे इतिहास में उसकी संस्कृति पर अनेक प्रभाव पड़ते रहे हैं। जिसके कारण उसका रूप ही परिवर्तित हो चुका है। प्राय द्वीप का यह जंबूद्वीप अनेक जातियों, धर्म तथा संस्कृतियों का संगम स्थल रहा है। प्राचीन काल की भारतीय संस्कृति और मध्यकालीन संस्कृति में काफी अंतर है। आधुनिक काल में फिर से संस्कृति का नया स्वरूप हमारे सामने आता है। भारतीय संस्कृति पर आर्य , ईसाई, बौद्ध, जैन और हिंदू आदि धर्मों का प्रभाव भी पड़ा है। इसी कारण इनका प्रभाव भारतीय शासन-व्यवस्था, सामाजिक-संगठन, दर्शन, साहित्य, कला आदि पर भी पड़ा है।

किसी-न-किसी अधिक अथवा कम रूप में ही क्यों न हो लेकिन भारतीय, अन्य संप्रदाय एवं जाति, धर्मों का लक्ष्य भी यही रहा है। वह जंगल में निर्वासित आदिवासी क्यों न हो ऐसा भी कहा जाता है की भारतीय संस्कृति का उदात्त स्वरूप संस्कृत महाकाव्य, बौद्ध धर्म की शिक्षाओं में प्रतिफलित हुआ है। लेकिन वर्तमान साहित्य की विचारधारा में, भारतीय संस्कृति के संदर्भ के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। आर्यों के आने के पूर्व भी यहाँ जनजातियों का निवास था। सिंधु घाटी सभ्यता के समय। क्योंकि उस समय यहाँ आर्यों का कोई नामो निशान नहीं था। लेकिन आदिवासी जनजाति निश्चित रुप में रहती थी। आर्यों ने अनार्य एवं जन जातियों को पराभूत कर जंगलों की ओर भगा दिया।

आर्यों ने आदिवासियों को युद्ध में परास्त कर दास बना लिया। आदिवासी जंगलों और पहाड़ियों में पलायन कर गए। इस प्रकार जो आदिवासी समुदाय आर्यों के आक्रमण से बच निकले वे अपनी अलग संस्कृति और पहचान कायम रखने में सफल रहे।

संस्कृति में मूल्य, मान्यता, चेतना, विश्वास, विचार, भावना, रीति-रिवाज, भाषा ज्ञान, कला धर्म, जादू-टोना आदि के वे समग्र मूर्त, अमूर्त स्वरूप संस्कृतियों में शामिल होते हैं जिसे मानव सृजित, भौतिक जगत् से महत्त्व एवं सार्थकता प्राप्त करता है।

3.1.3 आदिवासी संस्कृति

आदिवासी-संस्कृति की अपनी एक भिन्न और विशिष्ट पहचान है। इस संस्कृति के अंतर्गत समानता, बंधुता की भावना, उदात्त विचार, समता और सबसे विचित्र लक्षण यह है कि प्रकृति के कोख से पैदा होकर उससे विशिष्ट नैकट्य संबंध बनाती है। इसमें प्रकृति-प्रेम विद्यमान है जो अन्य संस्कृतियों से इसे अलग एवं विशिष्ट पहचान प्रदान करता है। आदिवासी जीवन में मनुष्य-जीवन प्राकृतिक एवं साधारण है। उनका दृष्टिकोण उपयोगितावादी और विचारधारा *'जिओ और जीने दो की है'*। उपयोगिता के साथ-साथ उनकी कार्य-चेतना सामूहिक-सहभागिता, सहयोगिता एवं अनुशासन पर टिकी हुई है। प्रकृति का नियम है कि ऐसी व्यवस्था जाति, के मानसिक एवं स्वाभाविक गठन को प्रभावित करती है। आदिवासी-चेतना के अंतर भाव में प्रकृति के नियम के अंतर्गत संग्रह की उपेक्षा, त्याग, प्रतिरोध, दया, समाधि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी समाज की जीवन आवश्यकता है- सीमित। वस्तु-धन, संग्रहण की भावना इनकी संस्कृति में नहीं पायी जाती है। यह प्रकृति के सहचर और पुजारी हैं। इनके धार्मिक-स्थल कोई मंदिर-मस्जिद या विशिष्ट स्थान न होकर खुला आकाश होता है। वह कहीं भी यह अपनी उपासना-आराधना पूजा पाठ कर सकते हैं। आकाश और धरती की यह व्यापक संरचना ही इनका मंदिर, गिरजाघर है। आदिवासी संस्कृति एवं प्रकृति में गहरा आत्मीय संबंध है। तभी तो प्रकृति प्रदत्त उत्सव को आदिवासियों ने अपने जीवन से जोड़ लिया है। जबकि सभ्य कहे जाने वाले विकसित संस्कृति से प्रकृति का संबंध संघर्ष का रहा है। फलतः वह प्रकृति का दोहन चाहते हैं। अब रक्षण का विचार महज भौतिक उपयोगितावादी सार है। वर्तमान युग में इनका संबंध केवल भारी वैज्ञानिक विकास, औद्योगिक और वाणिज्य का है।

भारतीय संस्कृति में आदिवासियों को एक विशिष्ट के रूप में चित्रित किया गया है और सुरक्षा और उनकी विकास के लिए कई प्रावधान तैयार किए गए हैं। यह प्रावधान इतनी आसानी से तैयार नहीं किए गए हैं। इनके लिए आदिवासी लंबे समय से संघर्ष करते आए हैं। अंततः अंग्रेज शासन काल, संघर्षों के परिणाम स्वरुप, सन् 1879 में आदिवासी जिला अधिनियम, सन् 1918 मांटेग्यू टेम्सपोर्ट रिपोर्ट में पिछले क्षेत्र के प्रशासनिक प्रश्नों की विवेचना, । सन् 1935 में आदिवासियों क्षेत्रों का वर्गीकरण आदि। स्वतंत्रतापूर्वक भी

प्रावधान किए गए। धर्म के मामले में आदिवासियों के साथ हमेशा सौतेला व्यवहार हुआ है। भारतीय जनगणना के प्रारंभ में देखा जाए तो आदिवासियों को अपनी धार्मिक पहचान है ही नहीं। भारत सरकार भली-भाँति जानती है कि आर्यों के पहले से आदिवासी सभ्यता एवं संस्कृति यह विकसित थी एवं फल-फूल रही थी। सब इतिहासकार भी जानते हैं। फिर भी कुछ इतिहासकारों ने इसे अनदेखा कर आदिवासियों के साथ घोर अन्याय किया है। धर्म एवं संस्कृति में अन्योन्याश्रित संबंध है। सामाजिक मनुष्य की, प्रत्येक क्रिया का लाभ संस्कृति कहलाता है। अपने धर्म से प्रेरित होकर मनुष्य जीता है। संपूर्ण जीवन में यह जो क्रियाएं करता है वह प्रतीक रूप में संस्कृति और धर्म के आधार पर प्रतिबिंबित के रूप में प्रत्येक वस्तु का प्रतीक, चिन्ह एवं अर्थ निर्धारण होता है। वन तथा संस्कृति मानव जीवन का आवश्यक पहलू है।

3.4.4 बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के साहित्य में चित्रित संस्कृति

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम पर आधारित साहित्य में आदिवासी समाज, संस्कृति एवं संघर्ष का चित्रण हुआ है। भारत में समग्र रूप से 450 से अधिक जनजातियाँ निवास करती हैं। जिनमें मुंडा और गोंड प्रमुख हैं। बिरसा मुंडा के मुंडा समुदाय और कोमरम् भीम के गोंड समुदाय दोनों की संस्कृति में समानता है। इन दोनों का साहित्य मुंडा समुदाय और गोंड समुदाय पर आधारित है। भारत में मुंडा और गोंड जाति में भी अनेक उपजातियाँ हैं और उनकी सामाजिक सांस्कृतिक, धार्मिक आस्थाएं तथा संस्कृति में कुछ समानताएँ होते हुए भी भिन्नताएँ हैं। इन आदिवासियों की संस्कृतियों को नष्ट करने का प्रयास कई सालों से होता आ रहा है। फिर भी यह संस्कृति जीवित है। अनेक परिस्थितियों की चुनौतियों का सामना करते हुए मुंडा और गोंड समाज की संस्कृति जीवित है। उनके गीत, त्यौहार उनकी चेतना को बनाते हैं। इसे 'जंगल के दावेदार' 'कोमरम् भीम' में लोकगीतों के द्वारा देख सकते हैं। लोकगीत के संदर्भ में 'धरती आबा' नाटक का एक उदाहरण देख सकते हैं-

"डिमिक डिमिक डिम माँदर बोले
नाचे धरती जंगल नाचे
पाँख खोल के पंछी नाचे
झिर झिर बहती नदिया नाचे
परबत उपर झरना नाचे
आबा आबा मुंडा बोलें
डिमिक डिमिक डिम माँदर बोले
माथे पकड़ी धोती पहने
आबा आए आबा आए

दिकू काँपे साहेब काँपे
चुटिया राँची सब थर्राए
मुंडा संग मुंडानी नाचे
डिमिक डिमिक डिम माँदर बोले।"[24]

भूगोलवेत्ताओं के अनुसार छोटा नागपुर भारत की सबसे प्राचीन भूमि है। मुंडा इस प्रदेश में रहने वाले हैं इसलिए मानव शास्त्री इन्हें अधिक प्राचीन आदिवासी बताते हैं। पुराणों तथा स्मृतियों में दोनों जातियों का उल्लेख मिलता है। और रहन-सहन कई हजार वर्ष पुराना है। भारत में अंग्रेजों के आगमन से आदिवासी हिंदुओं में गिने जाते थे। तथा यह अपने प्रदेशों में शासन करते थे। दोनों समाज आज भी असभ्य स्थिति में जी रहे हैं। लज्जा निवारण हेतु एक कमर में कपड़ा लपेट लेते हैं। भारत में भारतीय जनजातियों में मुंडा की संख्या अधिक है वह मुख्य रूप से झारखंड, छत्तीसगढ़, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि क्षेत्रों में निवास करते हैं।

भारत में गोंड़ों की आबादी सर्वाधिक है। लेकिन आदिलाबाद (तेलंगाना) जिले में इनकी आबादी उस अनुपात में नहीं है। तेलंगाना (हिंदी-तेलुगु) राज्य के आदिलाबाद जिले में गोंड रहते हैं। जो खेती पर निर्भर रहते हैं। दोनों साहित्य में सांस्कृतिक उभार के साथ-साथ संस्कृति पर आने वाले संकट को भी दर्शाया गया है। आदिलाबाद में निवास करने वाले गोंड जाति के लोग आजकल तीर, धनुष, कुल्हाड़ी, भाला आदि सभी उपकरण का प्रयोग अपने जीवन विकास में कर रहे हैं। गोंड जाति के लोग अपने शरीर को आभूषणों से सजाते हैं। गोदना एक उनकी सामाजिक विशेषता है।

दोनों नायकों पर जो साहित्य रचा गया है उसमें अलग-अलग सामाजिक परंपराएँ दिखाई देती हैं। कोमरम् भीम का गोंड समाज कृषि पर अधिक जोर देता है। वह अपनी भूमि के लिए सब कुछ त्यागने के लिए तैयार है। वह गिरि, प्रांतों, कंदराओं में जाकर फसल उगाने लायक जमीन तैयार करता है। जिसमें फसल बो कर अपने जीवन को सार्थक समझता है।

मुंडा समाज भी खेती के सहारे अपना उदर-निर्वाह चला रहा है। कृषि इनका मुख्य पेशा है। मुंडा समाज झूम खेती करता है। वह खेती से अधिक घूमकर तथा शिकार को महत्त्व देता है। झूम खेती के कारण वर्ष भर के लिए जितना आवश्यक है उतना नहीं मिल पाता इसलिए उनको जंगलों में घूमना पड़ता है।

दोनों नायकों पर रचित साहित्य में, चित्रित संस्कृति में समानताएँ भी हैं। विवाह-प्रथा, एक गोत्र में विवाह न होना, विवाह में वर वाले, वधू के घर जाते हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक परंपराओं में भी समानता है। वह निम्न प्रकार से हैं दोनों आदिवासी साहित्य में धार्मिक आस्थाएँ, विशिष्ट जीवन-प्रणाली, सामूहिक

[24] धरती आबा, पृ. सं. 59-60

अनुशासन-पद्धति, नैतिकता एवं ईमानदारी, प्रकृति से घनिष्ठ संबंध, पर्व-त्यौहार, पशुपालन-प्रवृत्ति तथा अतीत का गौरव गान आदि विशेषताओं का चित्रण हुआ है।

3.4.5 सामूहिक सामाजिक-संरचना

आदिवासियों की सामाजिक संरचना समूह पर आधारित है। भारत में अनेक जनजातियाँ अपना विशिष्ट समूह विशिष्ट क्षेत्रों में बनाकर निवास करती है। इनके कुछ ऐतिहासिक कारण हैं। उनके साथ बड़ा जुल्म हुआ है। बस्तर जिला मध्य प्रदेश में अधिकांश जनजातियां अपना समूह बनाकर रहती है। मुंडा समाज एवं तथा गोंड समाज के लोग घने जंगलों में निवास करते हैं। यह जनजातियां अपने गाँव एवं समूहों में विभाजित है जिसका चित्र दोनों भाषाओं के साहित्य में हुआ है। कोमरम् भीम पर आधारित साहित्य तेलंगाना में आदिवासी जिलों के निवासी गोंड जाति पर आधारित है। आदिवासी गोंड अपने-अपने समुदाय के रूप में जीवन व्यतीत करते हैं। इनके अनेक छोटे-छोटे गाँव हैं जिनके अलग-अलग पटेल हैं उनके अपने-अपने रीति रिवाज हैं।

3.4.6 आदिवासी धार्मिक आस्थाएँ

धार्मिक आस्थाएँ मनुष्य के मन मस्तिष्क में अपने विश्वास का भाव पैदा करती है। किसी समुदाय को आत्मसम्मान के साथ जीने के लिए आत्मविश्वास अति आवश्यक है। इसी आत्मविश्वास प्राप्ति हेतु आदिवासी समाज प्रकृति को असीम शक्ति के रुप में स्वीकार कर लेता है। प्राकृतिक आपदाओं तथा प्राकृतिक क्रियाकलापों को यह ईश्वरीय शक्ति के रूप में मानते हैं। अगर हम समस्त भारतवर्ष की समग्र जनजातियों का अध्ययन करेंगे तो इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे की आदिवासियों के देवी देवता एवं पूजा, पर्व, धार्मिक अनुष्ठान, आदि प्रकृति से संबंधित थे लेकिन यह भी सत्य है कि इन सभी जनजातियों के देवी-देवता भिन्न-भिन्न हैं। डॉ. रामदयाल मुंडा ने अपनी पुस्तक 'आदिधरम' में कहा है कि 'आदिवासियों को धर्म के स्थान पर एक नाम देने की अपील की। यही एक आधार है जिससे आदिवासी एक हो सकते हैं और अपने अधिकारों की माँग कर सकते हैं।' बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम पर आधारित साहित्य में हम देख सकते हैं कि मुंडा जाति और गोंड जाति में धार्मिक आस्थाओं, पूजा-पाठ में विभिन्नता दिखाई देती है।

साधारणतया माना जाता है कि धर्म एकता पर आधारित पवित्र धारणा की परिकल्पना है। मुंडा और गोंड जनजाति पशु-बलि पर भरोसा करती है। वह मानते हैं कि ईश्वर, भगवान को बलि देने पर वह हमारे समाज को सुखी रहेगा। ऐसा विश्वास और अवधारणा ही धार्मिक कर्मकांडों अथवा प्रगतिशील नैतिक तत्वों को जीवंत रखते हैं। धर्म, प्रकृति का, ईश्वर के प्रति ऐसा विश्वास है जिसे कभी प्रमाणित नहीं किया जा सकता। यह विश्वास एवं प्रगति और क्रियाओं का ऐसा जोड़ है जो पवित्रता के धारणा के साथ जुड़ा है। आदिवासियों के विश्वास, देवी-देवता और क्रियाएँ अन्य समाज से भिन्न है। 'कोमरम् भीम' में चित्रित गोंड

समाज भी उसी प्रतीकात्मक देवता के पूजा के समय बलि देता है। उनका भी विश्वास है कि भीम के देव को बलि देने पर फसल अच्छी होती है। वर्ष में एक बार यह बड़ा देव के पूजा करते हैं। जो सामूहिक रुप से होती है।

"वही थे लड़का और लड़की-उनके हुआ एक बेटा। लड़का तो बीमारी से मरने-मरने को हो रहा था। वे आदि मुंडा नर-नारी सोच में परेशान थे।...बेटा ! तो मरा जा रहा, देवता तुम्हें छोड़कर किसे पुकारें ? इसके लिए दरवाजा घेरकर, चौखट के पास कोयले से तस्वीर बना। देखेगा की बीमारी भाग जाएगी। मेरी पूजा दे। सफेद मुर्गी की बलि देकर पूजा दे। वही पूजा देकर लड़के की बीमारी दूर हुई।"[25]

दोनों आदिवासी समाजों में व्याप्त जादू-टोना एवं भूत-प्रेतों पर विश्वासों पर विशेष दृष्टि जाती है। क्योंकि भूत-प्रेत की मान्यता उनके अनुसार आस-पास ही निवास करती है यह दोनों समाज जादू-टोना में अधिक विश्वास करते हैं।

3.4.7 ईमानदारी और नैतिकता

आदिवासियों की दृष्टि 'जिओ और जीने दो' में विश्वास करती है। ये अपने नैतिक मूल्यों को सुरक्षित रखने हेतु प्राणों को दाँव पर लगा देते हैं। लेकिन अपनी पारंपरिक नैतिकता का उल्लंघन करना उनके वश के बाहर होता है। वे अपनी बात के पक्के होते हैं। आधुनिकता के साये में एक वचन के नैतिक मानदंड टूटते चले गए हैं। इसलिए आज नैतिकता एवं आशाएं दबाव में है। कोमरम् भीम के जीवन पर आधारित साहित्य में आदिवासी का एक संदर्भ है जिसमें आदिवासी जन्मों जन्मों तक अपनी बातों पर टिके रहने का विश्वास दिलाता है।

"जो लिया है वह तो सही है। गोंड कभी भी झूठ बोला है ! हमारी जाति में अभी झूठ नहीं आया है साहूकार ! अब तक पाँच वर्षों से साल में बीस क्विंटल ज्वार लेकर हमारे मुँह में मिट्टी फेंक जाते हो।"[26] कहने का आशय यह है कि आदिवासियों के संस्कृति एवं सामाजिक रीति रिवाजों तथा नियमों में ईमानदारी, नैतिकता और आस्था का बड़ा महत्त्व है। वह अपने प्राणों को त्यागने को तैयार हो जाते हैं लेकिन नैतिकता त्यागने को नहीं। नैतिकता का एक रुप है अतिथि का सत्कार। भारतीय संस्कृति में कहा गया है कि 'अतिथि देवो भव:।' आदिवासी खुद भूखे रहकर अतिथि के सत्कार में लगे रहते हैं।

3.4.8 प्रकृति से लगाव

आदिवासियों का इतिहास साक्षी है कि उनका संबंध अन्य जातियों से अधिक जंगल से है। ये प्रकृति के पुजारी हैं। ये प्रकृति पर अधिक-से-अधिक निर्भर रहते हैं। आदिवासियों की विशेषता है कि-

---

[25] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 49

[26] कोमरम् भीम- पृ.सं. 8

प्रकृति से प्राप्त जीवन आवश्यक साधन सामग्रियों से अपना जीवन व्यतीत करना उनके जीवन की एक सामान्य प्रवृत्ति है। 'कोमरम् भीम' उपन्यास का नायक कोमरम् भीम जंगल से ही खेलना, गाना, सीखा है। "दुख ने भीम को अपने में डुबो लिया है...। वह जंगल है जिसमें खेलना-गाना सिखा है। एक-एक पेड़ों को वह जानता है। अपने मित्रों के साथ-खेल-क्रीड़ा में गाए हुए गीत के दिनों बारीश के छींटों में थरथराता हुआ, पत्थरों की आड़ में, बैठे दिन सूर्योदय के समय चुने गए महुआ, उनके पेड़, तालाब, टीला, पक्षियों का झुंड...आदि-आदि स्मृति में छा गए।"[27]

इस प्रकार प्रकृति से उदार संबंध बनाना केवल आदिवासी जानते हैं। यह प्रकृति को अपनी माता तथा आकाश को पिता मानते हैं। उनके दिन का आरंभ प्रकृति से होता है, रात की शुरुआत भी। जीवन का आरंभ पेड़, पक्षियों तथा हवा के झोंकों से होता है। जीवन का अंत भी उसी प्रकृति में शामिल हवाओं के साथ शांति के साथ होता है।

बिरसा मुंडा पर लिखे साहित्य में जो आदिवासी चित्रित हुए हैं। वे प्रकृति का सम्मान करते हैं वे प्रकृति की गोद में आनंद, मंगल का अनुभव करते हैं। प्रकृति उनकी सहचर है। प्रकृति की हलचल एवं भविष्य के आने वाले सुखात्मक भविष्यवाणी को प्रकृति ज्ञान से ही प्राप्त कर लेते हैं। हमें यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि उनकी भविष्यवाणी गलत होगी। कहने का तात्पर्य यह है कि- जंगल-जानवरों से अधिक संबंध बनाते हैं। प्रकृति से उतना ही लेते हैं जितने कि उन्हें आवश्यकता होती है। प्रकृति का अतिक्रमण करके आज के आधुनिक समाज ने अनेक समस्याएँ पैदा की हैं। लेकिन आदिवासी समाज कभी प्रकृति संतुलन को ठेस पहुंचाने का दुष्कार्य नहीं करता। वे जंगल से, अपनी ईंधन आवश्यकता की पूर्ति हेतु सूखी लकड़ी इकट्ठा करते हैं लेकिन गैर-आदिवासी समाज पेड़ों को काट कर सूखी लकड़ी बनाते हैं। आज प्राकृतिक परिस्थिति मानव विकास एवं विश्व प्रगति के विपरीत खड़ी हो चुकी है। विश्व प्रकृति से संबंधित सभी सम्मेलनों में चिंता व्यक्त की जारी है कि प्रकृति का दोहन हो रहा है उपाय खोजा जा रहा है कि किसी-न-किसी रुप से प्रकृति दोहन का संतुलन बनाया जाए। ऐसे समय में आदिवासियों की जीवन-दृष्टि और प्रकृति के बारे में उनके ही विचारों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

3.4.9 विवाह एवं त्यौहार

आदिवासी समाज की सामाजिक संरचना में बहुत अंतर होने के कारण उनके पूजा, पर्व, त्यौहार किसी गैर-आदिवासी समाज के लिए आश्चर्यजनक हैं। भिन्न-भिन्न आदिवासी समुदाय में भिन्न-भिन्न विवाह प्रथा प्रचलित है। 'कोमरम् भीम' उपन्यास में चित्रित समाज में विवाह माता-पिता की अनुमति से ही होता है। लड़का एवं लड़की परिवार पर अधिक आश्रित होता है कि वे किस लड़की को अपनी गृहलक्ष्मी

---

[27] कोमरम् भीम- पृ. सं. 33

बनाते हैं। लड़कियों के पिता केवल अपनी लड़कियां देने अथवा न देने में स्वतंत्र है। दहेज के रुप में कुछ-न-कुछ देना होता जिसे **'ओले'** कहा जाता है। 'ओले' लड़के-पक्ष, वाले लड़कियों को देते हैं।

बिरसा मुंडा के मुंडा समुदाय में विवाह एक उत्साह की विधि मानी है। इस समुदाय में पिता चाहे पुत्रों को उसके विवाह के बाद अलग कर सकता है। लड़कों की शादी हल चलाने आने के बाद की जाती है और लड़कियों की ताड़ पत्तों से चटाई बनाना सीखने के बाद। विवाह बाहरी गोत्र में होता है। बहु-विवाह को भी सामाजिक मान्यता प्राप्त है। विवाह की कई प्रथाएँ प्रचलित हैं जैसे राजी-खुशी विवाह, हरण विवाह, प्रेम विवाह आदि। वधू मूल्यों में 'कुरीगोनोंग' अर्थात् दहेज की व्यवस्था प्रचलित है। विवाह का प्रस्ताव वर पक्ष के द्वारा भेजा जाता है।

मुंडा आदिवासी गाँव में युवाग्रह होते हैं। ये उसे 'गितिओड़ा' कहते हैं। इसके भवन के दो भाग होते हैं। एक में गाँव के कुंवारे लड़के होते हैं और दूसरे में कुंवारी लड़कियाँ। नृत्य-संगीत के समय एक साथ होते हैं। गाँव की बूढ़ी औरतें इन लड़कियों पर नजर रखती है। प्रेम-विवाह पर रोक नहीं है लेकिन अपने से निम्न आदिवासियों के साथ वैवाहिक संबंध आमतौर पर नहीं बनाए जाते। **'गितिओड़ा'** की तरह गाँव का दूसरा चर्चित स्थल है- 'सरना' या 'पूजा-पाठ' जैसे कार्यक्रम संपन्न होते हैं।

यह 'गितीओड़ा' के प्रकार से **'घोटुल'** व्यवस्था की तरह मिलता-जुलता है। इसमें कोई विशेष अंतर नहीं है। कोमरम् भीम की गोंड जनजाति में इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं है। लेकिन मध्य भारतीय गोंड जनजाति के गोंड समाज पर आधारित उपन्यास 'जंगल के फूल' में राजेंद्र अवस्थी ने घोटुल-व्यवस्था का स्पष्ट उल्लेख किया है।

दोनों साहित्य में त्यौहार भी अलग-अलग हैं। इनके त्यौहार, प्रकृति के मौसम के अनुसार होते हैं। 'कोमरम् भीम' उपन्यास में **आकाड़ी, दिवाली, नागोबा का पूजन, फसल पूजन, भीमदेव पूजन**, आदि अनेक त्यौहार होते हैं। इसी से संबंधित उनके समाज मेले को भी त्यौहार के रूप में देखते हैं। कोमरम् भीम के गोंड समुदाय में विशेष कर **केसलापुर का नागोबा मेला, जंगूबाई मेला, खामदेव मेला** भी महत्त्वपूर्ण है।

इन त्यौहारों में गोंड समुदाय के लोग नाच-गाना भी करते हैं। मुंडा समुदाय में भी अलग-अलग त्यौहार मनाया जाता है। वहाँ स्त्री-पुरुषों की असमानता की खाई बहुत कम है।

3.4.9.1 त्यौहार

आदिवासी समाज में त्यौहार, विवाह बहुत उत्साह और खुशी के साथ मनाये जाते हैं। आज भारत देश में पाश्चात्य-संस्कृति का अधिक मात्रा में प्रचलन हो रहा है। और इसे लगभग सभी रूपों में स्वीकार किया गया है। लेकिन आदिवासी समाज पर इस पाश्चात्य संस्कृति का इतना प्रभाव नहीं हुआ है। आदिवासी

समाज पहले जिस तरह से त्यौहार मनाता था आज भी उसी उत्साह और उल्लास के साथ त्यौहार मनाता है । उनके त्यौहार अधिकतर प्रकृति से संबंधित होते हैं । उनके दैनंदिन जीवन में प्रकृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसलिए वह प्रकृति को ही भगवान के रूप में पूजते हैं ।

झारखंड के आदिवासी समाज में अनेक पर्व एवं त्यौहार मनाये जाते हैं । मुख्य रूप से झारखंड में दो त्यौहार 'करमा' और 'सरहुल' मनाया जाता है । विशेष बात यह है कि किसी भी उत्साह, नाच, गाने में सभी लोग समान रुप से भाग लेते हैं । कोई भी पर्व त्योहार हो यही सहभागिता आदिवासी संस्कृति की अपनी विशेष पहचान बनती है । संथाल, मुंडा, हो आदि जनजातियों में यह देखा गया है कि एक पर्व को अलग-अलग नामों से जाना जाता है । 'सोहराय' संथालों का सबसे बड़ा त्यौहार है । जिसकी शुरुआत आषाढ़ महीने से होती है । आदिवासी समुदाय में अधिकांश पर्व एवं त्यौहार फसलों की कटाई के बाद मनाएँ जाते हैं । इसके बाद अच्छी फसल हो इस उद्देश्य से देवी-देवताओं, पूर्वजों एवं गोधन की पूजा की जाती है । यह त्यौहार पाँच दिन तक मनाया जाता है ।

झारखंड के ही मुंडा आदिवासियों का सबसे प्रमुख त्यौहार करमा और सरहुल है । जिसे बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है । उसी प्रकार कोमरम् भीम के आदिलाबाद क्षेत्र में गोंड समुदाय में **'दंडारी' (गुस्साडी)** उत्साह और **'आकाड़ी'** प्रमुख रूप से मनाया जाता है ।

3.4.9.2 करम पर्व

करम पर्व आदिवासियों का महान पर्व है । यह पारंपरिक रीति-रिवाजों से मनाया जाता है । भादो शुक्ल एकादशी से एक सप्ताह से पूर्व से इसकी तैयारी शुरू हो जाती है । यह प्रदेश के अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न जनजाति अपने विधि विधान के अनुसार पूरे उल्लास के साथ 'करम पर्व' मनाते हैं ।

आदिवासी समाज प्रकृति के उपासक होते हैं इन्हीं वृक्षों की पूजा आदिवासी समाज करता है याने की पर्यावरण की रक्षा भी आदिवासी समाज के हाथों से होती है । इस समाज में सप्ताह का एक दिन गुरुवार को लक्ष्मी का दिन माना जाता है । इस दिन महिलाएं उपवास रखती है और साल वृक्ष में कासे के लोटे से जल अर्पण कर सुख-समृद्धि की कामना करती है । पंचांग के अनुसार भादो एकादशी में मनाया जाने वाला करम पर्व में उपवास रखने वाली युवतियां 8 दिन पहले नदी से बालू लाकर नये बांस की टोकरी में अनाज के दाने ,धान, गेहूं, चना, मकई इत्यादि का जावा उगाती है । यह **'जावा'** हरियाली का प्रतीक है ।

आदिवासी समाज का रिश्ता प्रकृति से जुड़ा होता है । जन्म से लेकर मृत्यु तक हर विधि विधान में अलग-अलग प्रकार के पत्तल, दोना बनाएँ जाते हैं । यह समाज उसी की पूजा करता है । जिससे हमें जीने के लिए हमें अन्न,जल, वायु मिलती है । जल-जंगल-जमीन आदिवासियों की पहचान है । इस समाज के दो महान पर्व है- करमा और सरहुल, इसकी देवी सरना है । जो वृक्षों में ही निवास करती है।

3.4.9.3 दंडारी (गुस्साडी) उत्सव

'दंडारी' का अर्थ गोंड भाषा में 'सामूहिकता' है। यह त्यौहार दशहरा से लेकर दिवाली तक मनाया जाता है। लेकिन प्रमुख रुप से दिवाली से 8 दिन पहले शुरू होता है। इस त्यौहार के अवसर पर गोंड आदिवासी अपने समग्र वाद्ययंत्रों को बजाते हुए नाचते, गाते हैं। यह त्यौहार आषाढ़ महीने में मनाया जाता है। वह इस त्यौहार के लिए अपने पारंपरिक वेशभूषा में सजते हैं। इस अवसर पर यह मोर पंख से बना हुआ मुकुट पहनते हैं, अपने समग्र खुले बदन को सफेद मिट्टी या चूना लगाते हैं और पैरों में घुंघरू बांधते हैं।

वह सभी गाँव के केंद्र को साफ-सुथरा करते हैं और वहाँ अपने एक घर की सभी वस्तुएं लाकर सजा देते हैं। और उसे धो देते हैं और उसकी पूजा करते हैं। यहाँ पर वे संप्रदाय के रूप में पूजा करते हैं। और अपने भगवान को सामूहिक रुप से विनती करते हैं कि भगवान उन्हें खुश रखें। उन पर कोई संकट ना आने दे। उसी के साथ वह अपना बाजा, गाना शुरु करते हैं इसी को 'गुस्साडी' नृत्य कहा जाता है। यह गोंड आदिवासी प्रमुख नृत्य है, गुस्साडी नृत्य के लिए विशेष रूप से त्यौहार होते हैं। वह अपने समग्र शरीर पर सफेद मिट्टी और चूना लगाते हैं पैरों में घुंघरू बाँधते हैं। दायी भुजा पर हिरण का चमड़ा होता हैं और बाए हाथों में **'रोकली'** पकड़कर नाचते हैं।

वह केवल अपने गाँव में ही त्यौहार नहीं मनाते हैं बल्कि आस-पास के गाँव जाकर भी वे त्यौहार मनाते हैं। अपने समाज, बांधवों को परंपरा जारी रखने का संदेश देते हैं और उनका विश्वास बढ़ाते हैं। अपने भगवान के प्रति श्रद्धा भाव रखने का संदेश देते हैं। उनमें यह धारणा है कि उनके हाथों में 'रोकली' होती है। उस रोकली को अगर कोई रोगी स्पर्श करता है तो उस रोगी का रोग दूर हो जाता है। इस बात पर उनका बहुत विश्वास है। इस बहाने समग्र गाँव से मिलते-जुलते हैं और इससे अनेक रिश्तो में अटूटता बनती है।

इसी प्रकार गोंड समाज में दूसरे त्यौहार भी मनाए जाते हैं। जिनमें कोवंग, आकाड़ी, बडुगा, अकेपेन्क (बड़ा भगवान), भीम देव और जंगूबाई आदि की पूजा आराधना करते हैं। 'कोमरम् भीम' उपन्यास में अकाड़ी त्योहार का स्पष्ट उल्लेख किया गया है जिसमें गोंड आदिवासी बीज बोने के पहले मनाते हैं। इस अवसर पर बलि भी देते हैं।

3.4.10 आदिवासी संस्कृति और संघर्ष

बिरसा मुंडा पर लिखित साहित्य और कोमरम् भीम पर लिखित साहित्य में अपने जाति को एकत्र करना संगठित रखकर संघर्ष करने की प्रमुख प्रवृत्ति है। दोनों भाषाओं के साहित्य में वे अपने अस्तित्व के लिए लड़ते हैं। भोले-भाले आदिवासी जानवरों की भाँति बंदूकों का शिकार होते हैं।

लेकिन संघर्ष में इनकी हार होती है। क्योंकि नैतिकता ही आदिवासियों की कमजोरी बन गई है। अपनी सांस्कृतिक पहचान एवं परिस्थितियों से घिरा आदिवासी समाज बेचैन है। अपने स्थितियों की सुदृढ़ता

करने हेतु तथा अपनी पहचान बनाने हेतु दोनों समुदायों में एक सामान्य सभा होती है। जिसमें सभी मिलकर अत्याचार और शोषण के विरुद्ध लड़ने का निर्णय लेते हैं। लेकिन संघर्ष बिना नेतृत्व के नहीं होगा। इस सभा में कोमरम् भीम का व्याख्यान संदर्भ देने योग्य है-

“हे किसानों। आप सभी की ओर से बोलने हेतु मुझे मेरे काकाओं ने देवडम (गाँव का नाम) से ले आए हैं... मैं आप लोगों से बड़ा नहीं हूँ। अधिक जानकार भी नहीं हूँ। मैं भी आप लोगों की तरह ही अपना यह किसानी जीवन कितने कष्टों से घिरा है, अनुभव किया हूँ...मैं जो कहता हूँ उसे ध्यान से सुनिए। हमने जंगल काटे हैं किसलिए। सरकार और पट्टेदार हमारे इस कार्य को कानूनी गलत साबित कर रहे हैं। यह कैसी बात ? मेरे बचपन की बातें याद आ रही हैं। जो मुझे मोतिराम द्वारा कही गई हैं... माँ बालक को दूध न पीने देने पर क्या हम रूक गये थे ? नहीं। उसी तरह जंगल न काटते तो क्या हम जी सकते थे ? इसलिए हम उनके केस लगाने पर भी, जेल में बंद कर देने पर भी, हाथ काट देने पर भी, हम जंगल काटते ही आ रहे हैं...। मेरे काका कुर्दु, येसु आप सभी जानते हैं और पता नहीं कितनी जिंदगी देखे होंगे। इसलिए इन्होंने सभी को एक कर यह बारह गाँवों की स्थापना की।... अंततः जंगल काटने का अंतिम निर्णय हुआ। शाम हो गई।”[28]

इसी प्रकार की समस्या बिरसा मुंडा के साहित्य में चित्रित हुई है। विदेशी इनके जंगलों और खेती पर अपने अधिकार जमाने की योजनाएँ बना रहे हैं। यह अपनी मिट्टी से प्राणों से भी अधिक प्रेम करते हैं। विदेशी ताकतों एवं शोषण की आँच अपने अस्तित्व पर आते देख कई आदिवासी समूह मिलकर सभा का आयोजन करते हैं। अपने अधिकार हेतु मुंडा आदिवासी किसी भी स्थिति का सामना कर सकते हैं। ये परिस्थिति से निर्धन होते हैं लेकिन आत्माभिमान से बहुत अमीर होते हैं। ये अपने अस्तित्व को बचाए रखने हेतु प्रकृति की अनेक आपदाओं और विकट परिस्थितियों का सामना करते हैं।

अस्तित्व के लिए लड़ने वाले आदिवासियों का इतिहास गौरवपूर्ण रहा है। लेकिन इतिहासकार उन्हें योग्य स्थान नहीं दे पाए। उनको ‘असुर’ कह कर ‘दुर्लक्षित’ किया गया। इसका विस्तृत चित्रण ‘ग्लोबल गाँव के देवता’ में हुआ है। आदिवासी की संस्कृति एवं परंपरा तथा इतिहास गौरव गाथाओं की गलत व्याख्याओं का असर यह हुआ की समग्र भारत की व्यापक आदिवासी एकता और सामाजिक व्यवस्था टूटती गई। कोमरम् भीम कहते हैं कि ‘हमको इस जमीन के लिए राज्य के लिए, लड़ना है। इस लड़ाई में हमारा बलिदान व्यर्थ नहीं होगा। जिनकी मृत्यु होगी। उनका स्थान इतिहास में विराजमान रहेगा। इस लड़ाई में हमारी पराजय हो जाने पर भी इस पराजय का कारण खोजने की कोशिश आने वाली पीढ़ी करेगी।... और अंतिम विजय तो निश्चित रूप से प्रजा की ही होती है’।

---

[28] कोमरम् भीम- पृ. सं. 119

कोमरम् भीम कसम दिलाता है कि इस ऐतिहासिक-संघर्ष में जो बलिदान हो जायेंगे। आदिवासियों में हिम्मत की कमी नहीं होती है। बिरसा मुंडा के समाज की स्थिति भी कुछ इसी तरह है।

3.5 भौगोलिक अवस्थिति

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम पर आधारित साहित्य में अन्य स्थितियों की भांति भौगोलिक-स्थिति का भी सूक्ष्म रुप से वर्णन मिलता है। उनकी भौगोलिक-स्थिति का प्रसंग-प्रसंग में उल्लेख मिलता है। इस भौगोलिक स्थिति के संदर्भ में अलग-अलग पहलू हमारे सामने आते हैं। उसके साथ-साथ यह भी पता चलता है कि दोनों क्षेत्रों में भौगोलिक-स्थिति में क्या समानता और विषमता है ? इसे हम विस्तृत रुप से निम्न प्रकार देख सकते हैं।

भौगोलिक अवस्था पर विचार करने से पहले हमें झारखंड राज्य की निर्मित के संदर्भ में जान लेना जरुरी है वस्तुतः हम झारखंड को छोटा नागपुर के नाम से जानते हैं। झारखंड एक स्वतंत्रत राज्य के रूप में 15 नवंबर, 2000 को केंद्र सरकार के आदेश पर बिहार राज्य से भिन्न हुआ था। इस राज्य में जंगल-पहाड़ और नदियों की अधिकता है। भौगोलिक दृष्टि से झारखंड राज्य दो भागों में विभाजित है। वह दो विभाग है ‘छोटा नागपुर’ और ‘संथाल परगना’ इसकी भौगोलिक स्थिति महत्त्वपूर्ण है। झारखंड मध्य भारत के विशाल पठार पूर्वी भाग पर स्थित है यह प्रदेश अन्य प्रदेशों से बहुत कुछ अलग है। नदियों के माध्यम से बहकर आए गए उर्वरों की वजह से यह अधिक उपजाऊ बना है। इसके साथ ही यह क्षेत्र पहाड़ों और जंगलों से घिरा है। पहाड़ों में अलग-अलग तरह के अनेक सुंदर झरने और जल प्रपात हैं। इसका उत्तरी और पूर्वी भाग कम ऊँचा है बाकी पहाड़ियों की ऊंचाई अधिक है। इसकी औसत ऊँचाई प्राय 600 से 1400 मीटर तक है। पारसनाथ पहाड़ी झारखंड में सबसे ऊंची पहाड़ी मानी जाती है।

तेलंगाना के भौगोलिक स्थिति पर चर्चा करने से हमें उसकी उत्पत्ति के बारे में जान लेना आवश्यक है। 2 जून, 2014 को तेलंगाना, आंध्र प्रदेश से अलग होकर एक स्वतंत्र राज्य के रूप में उभरकर आया। इस राज्य में झारखंड राज्य के अपेक्षा कम जंगल और पहाड़ है। लेकिन तेलंगाना राज्य का आदिलाबाद नामक जिला पूर्ण रूप से पहाड़ों और वनों से घिरा हुआ है। लेकिन झारखंड की जमीन उपजाऊ और काली है तो, आदिलाबाद जिले की जमीन अधिकतर बंजर और पथरीली है। आदिलाबाद जिला गोदावरी और पेनगंगा नदियों के बीच 600 मीटर ऊंचे वनों से घिरा हुआ पठार पर स्थित है।

3.5.1 भौगोलिक क्षेत्रफल

झारखंड का भौगोलिक विस्तार लगभग 7971400 हेक्टर तक फैला हुआ है। यह राज्य ग्लोब की दृष्टि से 21 डिग्री 58 से 25 डिग्री 18 उत्तरी अक्षांश से 83 डिग्री 22 से 87 डिग्री 57 पूर्वी देशांतर के मध्य है। यह राज्य अनेक पहाड़ी और दुर्गम घाटों से भरा हुआ है। छोटा नागपुर का पठार दामोदर घाटी को

विभाजित करता है। इसके दक्षिण भाग में पोड़ाघाट एवं कोलाहन का क्षेत्र है, और उत्तर पूर्व में राजमहल की पहाड़ी फैली है।

आदिलाबाद का भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 16105 वर्ग किलोमीटर है आदिलाबाद जिले में जनसंख्या 2011 जनगणना के अनुसार 2741239 है। यह आदिलाबाद जिला अनेक पहाड़ियों और दुर्गम घाटियों से घिरा हुआ है। उसके दक्षिण भागों में करीमनगर और निजामाबाद जिले हैं, इसके पश्चिम पूर्व और उत्तर में महाराष्ट्र राज्य की सीमाएं हैं।

आदिलाबाद जिले की तुलना में झारखंड में पठारी क्षेत्र अधिक है। इसलिए यह राज्य समतल नहीं है। झारखंड का पहाड़ी भाग समुद्रतल से 1000 फिट पर स्थित है। पहाड़ों की ऊंचाई तो कहीं-कहीं 1000 फिट से भी अधिक है। आदिलाबाद समुद्रतल से 866 फिट पर अवस्थित है। पहाड़ियों की ऊंचाई लगभग 600 फिट है।

झारखंड का प्रसिद्ध जिला रांची जिसकी ऊंचाई लगभग 1200 फिट है। यहाँ का सबसे बड़ा जलप्रपात होंडु है जिसकी ऊंचाई 100 मीटर है। झारखंड कई राज्यों की सीमा से सटा हुआ है। उत्तर में बिहार, पश्चिम में मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़, दक्षिण में उड़ीसा और पूर्व में पश्चिम बंगाल है।

झारखंड में कुल 24 जिले हैं। झारखंड पहाड़ी क्षेत्र होने की वजह से यहाँ अधिक उपज नहीं होती। यहाँ की आबादी कम है। झारखंड में प्रमुख चार नदियां है कोयल, दामोदर, खडकई और स्वर्ण रेखा। इसके अतिरिक्त अन्य कई नदियां हैं जैसे बराकर, शंक, अमानत और कंसाई। कनहरा नदी पलामू एवं गढ़वा जिले के दक्षिण-पश्चिम सीमाओं में बहती है। रोजो, देव, कारों और काइना सिंहभूमि की छोटी नदियां हैं। हजारीबाग जिले में सक्रि, मोहिनी और नीलांचल नदियां बहती हैं। आदिलाबाद का सबसे बड़ा जलप्रपात कुंतला जलप्रपात है। जिसकी ऊंचाई 45 फिट है। आदिलाबाद में कुल 52 तहसील है। आदिलाबाद में आबादी घनी है, आदिलाबाद में गोदावरी, प्राणहिता और पेनगंगा आदि नदियां बहती हैं।

3.5.2 मौसम

झारखंड की जलवायु कटिबंधीय जलवायु है। झारखंड की जलवायु, गंगा मैदान के जलवायु में बहुत अंतर है। गर्मी के दिनों में गंगा के मैदान में बहुत गर्मी पड़ती है किंतु झारखंड के अधिकतर भागों में साधारण गर्मी पड़ती है। जाड़े के दिनों में झारखंड में बहुत ठंड पड़ती है पर गंगा के मैदानों में साधारण जाड़ा पड़ता है। यहाँ अक्सर ढंड अधिक होती है कभी-कभी तो बाहर रखा पानी भी जम जाता है। झारखंड में वर्ष में मुख्य तीन प्रकार के मौसम आते जाते हैं। जाड़ा, गर्मी और बरसात। जाड़ा नवंबर से फरवरी तक रहता है, गर्मी मार्च से मई तक होती है और बरसात जून से अक्टूबर तक होती है।

आदिलाबाद में भी झारखंड की भांति जाड़ा, गर्मी और बरसात समान होती है। झारखंड में विशिष्ट मिट्टी की प्रधानता है। यहाँ पर चार प्रकार की मिट्टी पायी जाती है। लाल मिट्टी, रेतीली मिट्टी, काली मिट्टी और लैटेरेड मिट्टी होती है। झारखंड के भांति ही आदिलाबाद में तीन प्रकार की मिट्टी दिखाई देती है। लाल, काली और रेतीली।

3.6 राजनीतिक सहभागिता

झारखंड के छोटानागपुर में अनेक आदिवासी जन जातियाँ समूह बनाकर रहती हैं। बिरसा मुंडा पर आधारित साहित्य में मुंडा जनजाति कई गाँवों तथा समूहों में वर्गीकृत है। उसी प्रकार कोमरम् भीम पर लिखे गए साहित्य में यह दिखाया है कि आदिलाबाद की गोंड जनजाति अपने-अपने समुदाय के रूप में जीवन-व्यतीत करते हैं। अनेक समुदाय अलग-अलग क्षेत्रों में अपनी जीवन प्रणाली का 'रथ' खींचते हैं। इनके अनेक छोटे गाँव है जिनके अलग-अलग पटेल भी हैं।

3.6.1 पंचायत-व्यवस्था

पंचायत-व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जो आदिवासी समाज में पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह परंपरा चली आ रही है। आदिवासी समुदाय के अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक आदि विषयों पर सामूहिक सभा में निर्णय करना तथा अपराधी को दंडित करना आदि मामले गाँव की पंचायत करती है। समुदाय का एक मुखिया होता है जो छोटे-बड़े विषयों एवं समुदाय की आवश्यकता को ध्यान में रखता है। मुंडा समाज में भी गोंड समाज की भांति पंचायत की व्यवस्था है। मुंडा समाज की पंचायत व्यवस्था को 'हातू पंचायत' या 'परहा पंचायत' कहा जाता है। इनके गाँवों का प्रधान 'मुंडा' या 'मुखिया' कहा जाता है। गाँव का दूसरा महत्त्वपूर्ण अधिकारी 'पहान' होता है। गाँव के समग्र सामाजिक कार्यों को सही ढंग से संपन्न कराने की जिम्मेदारी मुखिया की होती है। गाँव के झगड़े, विवाह, अपराधों और शांति भंग को नियंत्रण रखने के लिए सारी जिम्मेदारी पंचायत और उनके प्रमुख मुंडा की होती है। उनके इस पंचायत व्यवस्था के संदर्भ में, डॉ. राम दयाल मुंडा लिखते हैं कि "झारखंड क्षेत्र में अंग्रेजी हुकूमत के आने तक यहाँ का राजनीतिक/प्रशासनिक स्वरूप एक ग्रामगणराज्य की संघात्मक व्यवस्था का जिसका एक ढीला रूप (पहड़ा-पंचायत, मुंडा-मानकी, मांझी-परगनाइत के रूप में) आज भी देखने को मिलता है। हर गाँव एक गणराज्य की तरह काम करता था और गाँव स्तर का काम ग्राम-परिषद द्वारा संचालित होता था। अंतर्ग्रामीण मामलों का निपटारा अंतग्रीम-परिषद् के स्तर पर हुआ करता था। योजना, कार्यान्वयन और मूल्यांकन के निर्णय सर्वसम्मति से हुआ करते थे और इस प्रकार के निर्णय सबको मान्य थे।" [29]

[29] आदिवासी अस्तित्व और झारखंडी अस्मिता के सवाल- पृ. सं. 116

विवाह हो या किसी दंपत्ति के बीच हुआ विवाद अथवा एक समूह का दूसरे समूह से मनमुटाव आदि मामले के संदर्भ में एक रीति के तहत एक विधान होते हैं। कोई भी सहसा सामाजिक नियमों को तोड़ने की कोशिश नहीं करता है। अगर मुखिया या पटेल के नियमों को तोड़ दिया जाए तो उनको समाज से बहिष्कृत किया जाता है। उनके निजी क्षेत्र में अगर कोई बाहरी शक्ति हस्तक्षेप करने की कोशिश करती है तब वह सभी एक होकर उसका विरोध करते हैं। किसी विषयों पर अंतिम निर्णय लेते समय समग्र गाँव एवं मुखिया, पटेल एकत्र होते हैं। नृत्यों, त्यौहारों या अन्य प्रसंगों में कोई विवाद हो जाने पर उसका हल पंचायत में किया जाता है। उनके गाँव की पंचायत उनके लिए न्यायालय होती है। वहाँ गवाहों की ईमानदारी से बयान बाजी होती है और निष्पक्ष न्याय किया जाता है।

आदिलाबाद के गोंड आदिवासी समुदाय के गाँव में पटेल गाँव का प्रमुख होता है। गाँव की समग्र व्यवस्था उसी के ऊपर आधारित होती है। वह गाँव का चालक और मालिक होता है। उसका निर्णय अंतिम निर्णय होता है। वह निष्पक्ष भूमिका निभाता है। किसी झगड़ों का निपटारा करते समय वह पक्षपात नहीं करता है। समग्र गाँव का विश्वास पटेल पर होता है। कोमरम् भीम पर आधारित साहित्य में पटेल की इसी भूमिका को दर्शाया गया है। कोमरम् भीम के पिता चिन्नु अंत समय अपने पुत्रों को पटेल के कर्तव्य तथा सामाजिक विधि विधानों से परिचित कराता है क्योंकि "चिन्नु भी गुडेम (गाँव का बड़ा आदमी) का पटेल था।"[30] वह कहता है "ध्यान देकर सुनो... पटेल गिरी करना आसान नहीं... सभी त्यौहारों को अच्छी तरह मनाना, अपने गाँव का पटेल ही बड़ा होता है... तेरे पास रहने दें अथवा न रहने दें जो भी गाँव में आने वाले सरकारी लोगों की व्यवस्था करना आदि। कहोगे यह सब मुझसे नहीं होगा। तब जो वह सब करेगा वही गाँव का पटेल होता है।... देवताओं की पूजा करवानी चाहिए... कहीं अन्य गाँव को कोई खबर या वार्ता पहुँचानी हो तो, प्रति गाँव का एक हवलदार के रूप में लगा लेना चाहिए। अधिकारी आने पर ठीक से उनका मान-समान करना चाहिए... और एक विषय गाँव में किसी... वह सही-गलत सभी मान लेने पर उसे दंडित व्यक्ति को स्वीकारने से इनकार करने पर उसे गाँव से बहिष्कृत कर देना चाहिए-दिया हुआ निर्णय योग्य रहने पर, यह न निपटानेवाले पंचायत को अपने गाँव का बड़ा-सौ गुडेम का एक अधिकारी 'मुखासी' रहता है उसे कहना चाहिए... यह इतनी सारी जिम्मेदारियां इसलिए है क्योंकि पटेल गाँव का पिता के समान होता है... गाँव के लोगों के समक्ष किसी भी तरह की समस्या आ जाने पर पटेल को ही जाना चाहिए। अच्छी तरह संभाल लेना चाहिए।"[31]

[30] कोमरम् भीम- पृ. सं. 9
[31] कोमरम् भीम- पृ. सं. 26

इस प्रकार हमें गोंड जनजाति की पंचायत-व्यवस्था और राजनीतिक-व्यवस्था का पता चलता है। उनकी न्याय-व्यवस्था समानता पर आधारित है। इस प्रकार हमें मुंडा समुदाय और गोंड समुदाय की राज व्यवस्था की जानकारी मिलती है।

लेकिन आज के दौर में पंचायत व्यवस्था की परंपरा टूट गई है और उनके निजी मामलों में गाँव के सरपंच से लेकर राजनीतिक नेता भी दखलंदाजी करने लगे हैं। इनके निजी मामले अगर गाँव के स्तर पर नहीं निपटते तो यह लोग न्याय-व्यवस्था (कोर्ट-कचहरी) तक पहुँच जाते हैं।

3.6.2 आदिवासी समाज और राजनीतिक सहभागिता

आदिवासी समाज में आरंभ से ही शिक्षा का अभाव रहा है इसी वजह से वह प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़ा है जैसे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक आदि। आरंभ में राजनीति से उनका प्रत्यक्ष संबंध नहीं रहा है क्योंकि वह जंगल में निवास करते थे, या समूह में रहते थे। उनके अपने ही जात, पंचायत तक के कायदे कानून थे। जिनका वह कठोरता से पालन करते थे। मुख्यधारा के समाज की जो राजनीतिक पद्धति थी उससे यह कोसों दूर थे। लेकिन जैसे-जैसे आदिवासियों में शिक्षा का प्रचार होता गया वैसे-वैसे उनकी राजनीतिक चेतना जागृत होने लगी वह भी राजनीति में सक्रिय सहभागिता करने लगे उनको भी लोकतंत्र, समता, बंधुता, न्याय आदि की संकल्पनाएँ समझ में आने लगी। उनको अपनी शक्ति की सक्रियता का एहसास होने लगा
।

आदिवासियों में अज्ञान एवं अनेक प्रकार के अंधविश्वास प्रचलित रहे थे। इसलिए यह समझना उचित नहीं है कि उनमें सामाजिक, राजनीतिक चेतना का अभाव था। उन्होंने समय-समय पर राजनीतिक रूप से संगठित होकर जन आंदोलन चलाए हैं। लेकिन अंग्रेज और मुख्यधारा के भारतीय समाज द्वारा इनके सामाजिक, राजनीतिक नेतृत्व को हमेशा दबाया गया। इसे बार-बार कुचल कर नष्ट किया गया, इसका प्रमाण आदिवासी समुदाय में हुए अनेक आंदोलन हैं। राजनीतिक नेतृत्व को बार-बार नष्ट किया जाना आदिवासियों के एक प्रमुख समस्या के समान था। अंग्रेजों के खिलाफ आदिवासियों में कई राजनीतिक विद्रोह किए लेकिन उनको अंग्रेजों द्वारा दबाया गया। इसका प्रमाण के रूप में हम 'बिरसा मुंडा का उलगुलान आंदोलन' और 'कोमरम् भीम का जोड़ेघाट' में हुए आंदोलन को देख सकते हैं। यह राजनीतिक आंदोलन ही था। आजादी के बाद भी आदिवासी नेतृत्व को मुख्यधारा की राजनीति ने काफी नुकसान पहुँचाया।

राजनीति के क्षेत्र में शुरू में आदिवासी समाज की अवस्थिति नगण्य थी लेकिन स्थितियों में धीरे-धीरे परिवर्तन आता गया और उनके मन में राजनीतिक चेतना भी जागृत हुई और धीरे-धीरे आदिवासी समाज का प्रवेश होना शुरू हुआ। आज जितने भी आदिवासी बहुल क्षेत्र या राज्य हैं उन राज्यों में आदिवासियों की राजनीतिक हिस्सेदारी संतोषजनक जनक नहीं है। आदिवासी समुदाय पहले भी राजनीति में उपेक्षित था

और आज भी । आज के मुख्यधारा के राजकर्त्ता नहीं चाहते हैं कि आदिवासी समुदाय से कोई राजनीतिक नेतृत्व उभर कर आए । आज के नेता आदिवासी समाज को राजनीति के संदर्भ में दिशा, भूल करते हैं । उनके साथ धोखाधड़ी की राजनीति कर उनको शीर्ष नेतृत्व से दूर रखा जाता है । और इस बात से काफी सजग रहते हैं कि आदिवासी समाज से कोई बड़ा नेतृत्व निर्माण न हो और अपनी राजनीति का अंत न हो । इसके प्रमाण हम पूर्व-इतिहास में भी देख सकते हैं जैसे कि बिरसा मुंडा का उलगुलान राजनीतिक चेतना से उत्प्रेरित आंदोलन था जिसे अंग्रेजों ने निर्ममता से कुचल दिया । उनके आंदोलन को कुचलना या दबाना उनकी राजनीतिक चेतना को दबाने जैसा ही है । उसी प्रकार कोमरम् भीम का आंदोलन भी राजनीतिक चेतना से ओत-प्रोत आंदोलन था जिसे निजाम सरकार ने कुचल दिया । कोमरम् भीम का यह आंदोलन राजनीतिक चेतना से प्रेरित था जिसमें उन्होंने अपने अधिकारों, अपनी सत्ता की बात उठाई थी ।

आदिवासी जन समुदाय की संख्या पर विचार किया जाए तो उस संख्या के हिसाब से आदिवासी समुदाय की राजनीति की भागीदारी बहुत कम है । उनको राजनीति में आने से रोकना यह आज के उच्च वर्ग, और राजनेताओं का एक षड्यंत्र है । लेकिन भारत में आदिवासी बहुल क्षेत्र में उनके लिए आरक्षित स्थानों को निश्चित किया गया है । उन आरक्षित स्थानों के अनुसार उनको विधायक, सांसद आदि पदों से लेकर गाँव की राजनीति तक उनको चुनने का अवसर मिलता है ।

आज के राजनीति में आदिलाबाद जिले में गोंड आदिवासी समुदाय का एक सांसद ‘गड़ेम नागेश’ और विधायक ‘कोव्वा लक्ष्मी’ आदि हैं । उनके संख्या के अनुसार यह राजनीतिक प्रतिनिधि बहुत नगण्य है । उनमें अधिक राजनीतिक चेतना की संचार की आवश्यकता है । उसी प्रकार झारखंड में मुंडा समाज आदिलाबाद के गोंड समाज से अधिक राजनीति में सक्रिय है ।

3.7 पात्रगत

किसी भी विधा में पात्र की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है । पात्र ही प्रत्येक विधा का प्रमुख आधार होते हैं । पात्रों के सहारे रचनाकार अपनी कथा को बयान करता है । वह अपने विचार पात्रों के संवादों से अभिव्यक्त करता है, प्रत्येक विधा में हर पात्र महत्त्वपूर्ण होता है । उसकी प्रत्येक भूमिका होती है । इसलिए हम किसी एक पात्रों को महत्त्वपूर्ण और दूसरे पात्रों को गौण नहीं समझ सकते । उन सभी का अपना-अपना स्थान, प्रसंग और समय के अनुसार विशिष्ट महत्त्व होता है ।

बिरसा मुंडा पर आधारित उपन्यास ‘जंगल के दावेदार’ और कोमरम् भीम पर आधारित उपन्यास ‘कोमरम् भीम’ में अनेक पात्र हैं । ये पात्र अनेक प्रसंगों एवं दृश्यों में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । इन पात्रों की विशेषता यह है कि सभी वास्तविक पात्र हैं तो कुछ पात्र काल्पनिक भी हैं । इन दोनों उपन्यासों में लेखकों ने उन्हीं पात्रों को स्थान दिया है जो वास्तविक रुप में बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के साथ रह कर

उनको मदद की थी। इन दोनों उपन्यासों में अनेक पात्र आए हैं जैसे- पुरूष पात्र, स्त्री-पात्र, विदेशी-पात्र, स्थानीय-पात्र आदि। जिसका उल्लेख विस्तृत रूप से निम्न प्रकार किया जा रहा है-

3.7.1 पुरुष पात्र

पुरुष पात्रों में बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम ये प्रमुख पात्र हैं। प्रमुख पात्र होने के साथ-साथ ऐतिहासिक भी पात्र हैं। उपन्यासों के ये दोनों नायक के रूप में उभर कर आते हैं। यह दोनों पात्र अपने-अपने समाज का नेतृत्व करते हैं। यह दोनों पात्र अपने समाज के विकास हेतु अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। आंदोलन उनका महत्त्वपूर्ण हथियार है। उन दोनों ने अपने समाज पर होने वाले अन्याय और अत्याचार का विरोध आंदोलन से शुरु किया। साथ-ही-साथ उन्होंने समाज जागृति का भी कार्य किया। अपने समाज में प्रचलित समस्या जैसे अंधविश्वास, अज्ञानता, रुढ़ि आदि का समूल नाश करने का प्रयास किया। वे आजीवन अपने समाज हित के लिए जूझते रहे। इन दोनों महानायकों को अपनी परंपरा से प्रेरणा मिलती थी। बिरसा मुंडा पढ़े-लिखे थे इसलिए उनमें अपने समाज पर होने वाले जुल्म और शोषण का एहसास था। इसलिए उनके मन में विद्रोह की चेतना जागृत हो उठी। उसी प्रकार कोमरम् भीम पर रामजी गोंड, अल्लूरी सीताराम राजु जैसे महान व्यक्तियों का प्रभाव था। इनकी प्रेरणा ही उनके क्रांतिकारी विचारों का स्रोत थी।

इनके आंदोलन का मूल उद्देश्य अपने समाज को मुक्त करना था। जो अंग्रेज सत्ता और निजाम सत्ता के दलदल में फँसे हुए थे। दोनों ने इन महाशक्तियों का बड़ी कुशलता के साथ विरोध किया, अंग्रेजों ने अंत में बिरसा मुंडा को पकड़ कर जेल में डाल दिया तो कोमरम् भीम उनके जुल्मों के खिलाफ लड़ते-लड़ते शहीद हुए।

सुगना मुंडा यह बिरसा मुंडा के पिता है जिनकी भूमिका इस उपन्यास में बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसी प्रकार ‘कोमरम् भीम’ उपन्यास में चिन्नु, कोमरम् भीम के पिता के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनके अतिरिक्त ‘जंगल के दावेदार’ उपन्यास में धानी, गया मुंडा, भूरा मुंडा, कोंता, डोंका, आनंद पांडे आदि प्रमुख है। इनके अलावा मुंडा समाज को सहायता करने वाले जेकब और अमूल्य बाबू आदि का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। उसी प्रकार ‘कोमरम् भीम’ उपन्यास में कुर्दु, येसु, रघु, मोतीराम दादा, कोंडल, रघु, सोमु, भोजु, लच्चु पटेल, मडावी महदू, वकील रामचंदर राव और साले पंतुलु, विटोबा और मन्नेम् दोरा आदि महत्त्वपूर्ण है। इनमें से कुर्दु की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इन्होंने कोमरम् भीम के पिता के निधन के बाद उनके समग्र परिवार का पालन-पोषण करते हैं। उन्होंने गाँव की देखभाल की थी। उन्होंने अपने समाज को विघटित होने से बचाया था। हर परिस्थिति एवं संकटों का सामना किया था। उसी प्रकार मोतीराम दादा की भूमिका महत्त्वपूर्ण और विशेष है। इनकी भूमिका को हम बिरसा मुंडा के धानी के समान देख सकते हैं। ये समय-समय पर अपने समाज को सचेत करते रहे हैं। इन पात्रों में विटोबा नामक पात्र भी महत्त्वपूर्ण है। जो कोमरम् भीम को

पढ़ना-लिखना सिखाया था है और उनका योग्य मार्गदर्शन करता था। मन्नेम् दोरा भी कोमरम् भीम को अल्लूरी सीताराम राजु की कहानी सुनाकर प्रेरणा देते हैं।

मडावी महदु की भूमिका भी अत्यंत उल्लेखनीय है। यह कोमरम् भीम के सबसे निकट का साथी है और शिक्षित भी। पत्राचार आदि जैसे व्यवहार यही देखते थे। यह नेता की भाँति काम करते हैं, जो कि उन परिस्थितियों में बहुत महत्त्वपूर्ण साबित होता है। यह व्यवहार ज्ञान में और बाहरी ज्ञान में अत्यंत जानकारी रखने वाला पात्र हैं। कोमरम् भीम को प्रेरित और उत्तेजित करने में इनका अहम् योगदान है। उसी प्रकार दूसरा पात्र रामचंद्र राव पैकाजी है। यह पेशे से वकील है, और कोमरम् भीम को, समाज की समय-समय पर सहायता करते हैं। तीसरे प्रमुख पात्र साले पंतुलु हैं, जो कोमरम् भीम को नियमित रूप से आंदोलन के लिए प्रेरित और मार्गदर्शन करते हैं।

3.7.2 स्त्री-पात्र

पुरुष पात्रों की भांति स्त्री पात्रों ने भी दोनों उपन्यासों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 'जंगल के दावेदार' उपन्यास में आने वाली स्त्री पात्रों ने बिरसा मुंडा के उलगुलान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। ये स्त्री पात्र हैं 'करमी' बिरसा मुंडा की माँ है। करमी के भांति ही बिरसा मुंडा जंगल को माँ के रूप में स्वीकारते हैं। इसके संदर्भ में 'धरती आबा' नाटक में उल्लेख मिलता है "नहीं माँ, मुझसे तेरा दुःख नहीं देखा जाता। तुम्हीं तो हो यह धरती...ये पहाड़...ये जंगल। माँ हो तुम। तुमने ही पशु-पंछी...पेड़-पौधों, सब लोगों को पाला-पोसा है। मुंडा तुम्हारी संतान हैं। उराँव, हो, संथाल, सब तुम्हारे ही बच्चे हैं। सब के सब तुम्हारे ही गरभ से जनमे हैं। तुम्हें आज दिकू लूट रहे हैं। सरकार-सिपाही-साहेब सब तुम्हें लूट रहे हैं। माँ, मैं कैसे देखता रहूँ ! बोलो माँ बोलो ?"[32]

'जोनी' करमी की बहन और बिरसा मुंडा की मौसी है। जिसने बिरसा मुंडा का पालन-पोषण किया। जिनके सहारे बिरसा मुंडा ने प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की। साली अन्य स्त्री पात्रों में से एक है। साली की बिरसा मुंडा के उलगुलान में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आंदोलन कर्त्ताओं को अपने घरों में आसरा देती थी। यह एक वीर नारी के भांति लड़ाई में भाग लेती है। सभी स्त्री पात्रों को प्रेरित करती हैं। जैसे 'कोमरम् भीम' उपन्यास में कोमरम् भीम की पत्नी पैकूबाई और सोमबाई के साथ तुलना कर सकते हैं। इसके साथ साथ करमी, परमी की भूमिका भी लक्षणीय रही है।

इसी प्रकार 'कोमरम् भीम' नामक उपन्यास में अनेक स्त्री पात्र है। जिनकी भूमिका उल्लेखनीय है। जिनमें कुकूबाई, सोमबाई, पैकूबाई आदि प्रमुख है। 'सोमबाई' कोमरम् भीम की माँ है। कुकूबाई उनकी भाभी है जिसने कोमरम् भीम को हमेशा प्रेरित किया। इनके विचारों का बहुत सारा प्रभाव कोमरम् भीम के

[32] धरती आबा- पृ. सं. 34

जीवन पर पड़ा। सोमबाई और पैकूबाई उनकी पत्नी है। जो उनके साथ आंदोलन में भाग लेती है। इनके अतिरिक्त अन्य स्त्री पात्र हैं जो उपन्यास में प्रसंग के अनुसार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

3.7.3 विदेशी-पात्र

इन दोनों उपन्यासों में अन्य पात्रों के भांति विदेशी पात्र भी आये हैं। बिरसा मुंडा पर आधारित उपन्यास 'जंगल के दावेदार' में फादर नैट्रेट, स्ट्रीटफिल्ड, लुकास, टॉमसन ,रोश और जेकब आदि प्रमुख पात्र हैं। यह सब विदेशी शासक पात्र हैं। फादर नैट्रेट ईसाई मिशनरी चर्च के फादर हैं। जो मुंडा समाज को ईसाई धर्म में परिवर्तित करता है, और साथ-साथ ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार करता है। स्ट्रीटफिल्ड अंग्रेजी कमिश्नर है जो बिरसा मुंडा को गिरफ्तार करने की अहम् भूमिका निभाता है। मेयर्स यह विदेशी पात्र है जो रांची पुलिस के डिप्टी सुपरिटेंडेंट है। 'कोमरम् भीम' उपन्यास में विदेशी पात्र नहीं है बल्कि निजाम सरकार के स्थानीय पात्र हैं।

3.7.4 सामंती-पात्र

'जंगल के दावेदार' और 'कोमरम् भीम' उपन्यास में अन्य पात्रों के साथ सामंती पात्र आते हैं। 'जंगल के दावेदार' उपन्यास में ठाकुर जगनमोहन सिंह और जगदीश साहू आदि हैं। जगनमोहन सिंह बनगाँव के जमींदार हैं। यह समय-समय पर अंग्रेज सरकार का साथ देता रहता है, और मुंडा समाज का शोषण करता है। दूसरा पात्र के रूप में जगदीश साहू एक जमींदार थे उन्होंने बेचैन मुंडा की जमीन पर कब्जा किया था।

उसी प्रकार 'कोमरम् भीम' उपन्यास में पट्टेदार सिध्दिक साहब, पटवारी लक्ष्मण, तहसीलदार अब्दुल सत्तार, सूबेदार अजर हसन, और डी. एस. पी. हिदायत अली आदि प्रमुख हैं। ये पात्र सामंती पात्र के रूप में उभर कर आते हैं, ये गोंड आदिवासियों पर निर्मम, अन्याय और अत्याचार करते हैं। और कोमरम् भीम के नेतृत्व में हो रहे हैं जोड़ेघाट आंदोलन को कुचल देते हैं।

3.8 आंदोलन : शक्ति और सीमाएँ

आदिवासी समुदाय आरंभ से शांति से, प्रकृति से, जंगल के सहारे जीता आया है। वह प्रकृति के सान्निध्य में ही जीवन व्यतीत करता है। लेकिन अंग्रेजों के आगमन से उनके जीवन में बहुत हस्तक्षेप होने लगा। शांत प्रकृति से जीने वाले समुदाय को अंग्रेजों के नियमों के अनुसार व्यवहार करना पड़ा। सदियों से जिस जंगल में रहते आए थे, उसी में प्रवेश करने के लिए अब विदेशी शासकों अंग्रेजों की अनुमति लेनी पड़ी। वह अपनी ही भूमि में अपने ही हक को खो कर लाचार जीवन जीने के लिए विवश हो गए। "हजारों सालों से आदिवासियों द्वारा संरक्षित जंगलों से उन्हें ही बेदखल कर कई पुराने वनों को नष्ट कर दिया गया। करोड़ों साल की भूगर्भीय प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप जमा हुए खनिज-संसाधनों के भंडार को धरती की कोख फाड़कर निकाल लिया गया। संसाधनों की लूट के इस तांडव ने इस जमीन पर बसने वालों को कहीं

का न छोड़ा। नेपथ्य से नियंत्रण कर रही शक्तियाँ तो खूब मालामाल हुई, लेकिन जमीन को माँ की तरह आदर और पुत्र की तरह प्यार देने वाला आदिवासी समूह अपनी ही जमीन पर शरणार्थी बनने को मजबूर हो गया।"[33]

अंग्रेजों के साथ-साथ वहाँ के स्थानीय जमींदारों, साहूकारों और महाजनों ने भी उनका शोषण कर उनको निर्धन बनाया। वह उनकी अज्ञानता का लाभ उठाने लगे। उनसे बेगारी करवाने लगे। कहने का आशय यह है कि उन पर अन्याय, अत्याचार करने की सभी सीमाएं पार की जाने लगी। इस जुल्म का विरोध करना ही भी शुरू हुआ। "आदिवासी बिरसा आंदोलन के मूल में कई कारण थे। जिसमें स्वायत्तता, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारण मुख्य थे। यह आंदोलन भूमि से लेकर धर्म संबंधी तमाम समस्याओं के खिलाफ जन-संघर्ष था और साथ ही उन समस्याओं के राजनीतिक समाधान का प्रयास भी।"[34]

आदिवासियों ने इस जुल्म के खिलाफ अनेक आंदोलनों को शुरू किया। क्योंकि अंग्रेज सरकार ने उनका जीना मुश्किल किया था। उन पर विविध कानून लगाए गए। उन पर इतने सारे प्रतिबंध थे कि वह घूम-फिर भी नहीं सकते थे। उनकी जमीनें भी अंग्रेजों ने छीन ली। जो बची उस पर कर बढ़ा-चढ़ाकर लगान लगाया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों और जमींदार, कारिंदों तथा साहूकारों की ज्यादती का विरोध होने लगा। आदिवासी आंदोलन की एक लंबी परंपरा रही है।

बिरसा मुंडा हमारे समय के सबसे महान वीर नायक थे। केवल वीर ही नहीं थे एक विचारक, चिंतक तथा समाज-सुधारक थे। इसके अलावा उनके और भी अनेक रूप हैं जो हमें प्रायः प्रेरित करते हैं और जुल्म के खिलाफ लड़ने की प्रेरणा देते हैं। बिरसा मुंडा की विचारधारा आधुनिक एवं दूरदर्शिता से युक्त है। उन्होंने अपने समाज को अपने विचारधारा द्वारा प्रेरित कर विकास के पथ पर लाकर खड़ा किया। वह आज भी अनेक रुपों में प्रासंगिक है। बिरसा मुंडा के विचार आज भी आदिवासी समुदाय के प्रेरणादाई स्रोत के रूप में काम करते हैं।

बिरसा मुंडा ने किसी भी प्रकार के अन्याय को सहन नहीं किया। उन्होंने तत्काल विरोध किया। अपने समाज, बंधुओं को अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया। उनके द्वारा शुरू उलगुलान अन्याय, अत्याचारों के विरोध में ही आरंभ हुआ था। बिरसा मुंडा के भाँति ही कोमरम् भीम भी आधुनिक विचारधारा से प्रभावित थे। बिरसा मुंडा ने जिस प्रकार अपने समुदाय के शत्रुओं को पहचान कर उनको सजग रहने की सूचना की थी उसी प्रकार कोमरम् भीम ने भी अपने गोंड समाज को सूचना की थी। अपने गोंड समाज का नेतृत्व कर उन्हें भी अपने शत्रुओं को पहचानने और उनसे सजग रहने की सलाह दी। कोमरम्

[33] आदिवासी सत्ता, अक्तूबर-नवंबर, 2011- पृ. सं. 11

[34] आदिवासी सत्ता, नवबंर, 2010- पृ. सं. 25

भीम, बिरसा मुंडा की भांति शिक्षा के समर्थक थे। जिस प्रकार बिरसा मुंडा ने कुप्रथा, रूढ़ियों और अंधविश्वास आदि का जिस प्रकार विरोध कर उसे समूल नष्ट करने का प्रयास किया उसी प्रकार कोमरम् भीम ने भी इन घातक तत्वों को अपने समाज से, अपने विचारों द्वारा दूर ही रखा। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के विचार सभी बिंदुओं पर और समस्या पर एक से हैं। दोनों ही समाज-सुधार के समर्थक थे। वह अपने समाज में बदलाव लाना चाहते थे। उनको लगता था कि अपने समाज के बंधु पढ़-लिखकर आगे बढ़े। अपने समाज का नेतृत्व करे और अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते रहे।

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम ने नारी को कभी कम नहीं माना। नारी के प्रति इनका दृष्टिकोण बहुत महत्त्वपूर्ण है। वह नारी के आजादी में विश्वास करते हैं। इस संदर्भ में 'जंगल के दावेदार' उपन्यास में मुंडा समुदाय के स्त्री-पुरुष की समानता को देख सकते हैं- "उनका समाज पुरुष-शासित नहीं था। इस समाज में स्त्री-पुरुष समान रूप से मेहनत करते थे, बराबर कमाते थे, बराबर समान पाते थे। मुंडा समाज में माता का सम्मान बहुत होता है। करमी ने बहुत दिनों वह सम्मान पाया। गर्व से सिर उठाए करमी घूमती-फिरती थी।"[35]

बिरसा मुंडा अपने समाज को स्वस्थ रहने के लिए कहते हैं क्योंकि आदिवासी समाज में अनेक बीमारियां अज्ञानता के कारण होती हैं। यह बिरसा मुंडा ने जान लिया था। इसलिए वह स्वास्थ्य का संबंध स्वच्छता से मानते हैं। बिरसा मुंडा के भाँति कोमरम् भीम ने अपने समाज को स्वच्छ रहने के लिए संदेश दिया। लेकिन इनके बावजूद आज भी कोमरम् भीम का क्षेत्र आदिलाबाद में आदिवासी जन-जातियां जो अंधविश्वास की जकड़बंदी में हैं।

बिरसा मुंडा के आंदोलन का मुख्य कारण उनके जीवन यापन के आधारभूत कारकों जैसे- जल-जंगल-जमीन और अस्मिता के अस्तित्व पर आने वाला खतरा था। अपने अस्तित्व को बचाने के लिए उनके पास आंदोलन के अलावा और कोई रास्ता नहीं बचा। अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन के लिए अनेक कारण हैं। लेकिन उन सब कारणों में महत्त्वपूर्ण है अंग्रेजों द्वारा किए जानेवाले निर्मम अत्याचार। जिस प्रकार बिरसा मुंडा ने अंग्रेजों के दमन के विरोध में आंदोलन शुरु किया, उसी प्रकार आदिलाबाद में कोमरम् भीम ने भी इसी अन्याय के विरोध में आंदोलन शुरु किया। फर्क़ बस इतना था कि बिरसा मुंडा के झारखंड में अंग्रेजों का शासन था तो कोमरम् भीम के आदिलाबाद क्षेत्र में निजाम का शासन था। लेकिन दोनों समाज पर किए जाने वाले जुल्म और शोषण में कोई अंतर नहीं था। दोनों समाज को प्रताड़ित कर उनको जीने के लिए मुश्किल किया था। झारखंड में बिरसा मुंडा तो आदिलाबाद में कोमरम् भीम ने शोषण का विरोध कर शोषण प्रवृत्तियों का विरोध किया। इस प्रकार दोनों के आंदोलनों का उद्देश्य एक-सा है। दोनों ने दूसरी सत्ता

[35] जंगल के दावेदार- पृ. सं.171

को नष्ट करने के लिए अपने समाज को संगठित कर आंदोलन शुरू किया। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम दोनों अंग्रेजों और निजाम के चंगुल से अपने समाज की किसी भी कीमत पर मुक्ति चाहते थे।

इन प्रमुख उद्देश्यों के अतिरिक्त एक और समस्या थी जैसे छीनी गई जमीन को वापस लौटाना। जमीन से लगान को मुक्त कराना। जमीन पर जोतने वाले के दावे को पुष्ट करना और कारिंदों का बंदोबस्त करना। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम ने जो आंदोलन चलाया था वह निश्चित पद्धति से प्रेरित था। उन्होंने अपने आंदोलन में अनेक सारी पद्धतियां समय के अनुसार और पद्धतियों के अनुसार प्रयोग की। अनेक पद्धतियों में से एक महत्त्वपूर्ण बिंदु है- नियोजन। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम, इन दोनों ने पहले नियोजन किया और उसके बाद उस नियोजन को लागू किया। इस नियोजन-पद्धति में यह तय होता था कि शत्रु-पक्ष पर आक्रमण कब करना ? कैसे करना ? कहाँ करना ? आदि।

नियोजन के भाँति ही उन्होंने संगठन को महत्त्व दिया। उनके आंदोलन का संगठन बहुत महत्त्वपूर्ण अंग था। उनका समग्र आंदोलन ही संगठन के आधार पर ही टिका था। उसी के आधार पर ही चल रहा था। उन्हें भली-भांति पता था कि हम अकेले कुछ नहीं कर सकते। अगर हमें इन महाशक्तियों से लड़ना है तो हमें अपने समाज के लोगों को संगठित कर उनसे टक्कर लेनी होगी। जिस प्रकार जिस बिरसा मुंडा का संगठन मजबूत था उसी प्रकार कोमरम् भीम का संगठन भी बहुत मजबूत था। संगठन ही उनकी आंदोलन की प्रमुख शक्ति थी। उन्होंने अंग्रेजी सत्ता को और निजाम सत्ता को अपने आंदोलनों द्वारा जितने भी बड़े-बड़े धक्के पहुंचाए उसका श्रेय एक मात्र संगठित हुए आदिवासियों को दिया जाता है। इसलिए दोनों ही अपने समाज, बंधुओं को, संगठन को बहुत महत्त्वपूर्ण शक्ति मानते थे। उन्होंने जितने भी आंदोलन किए हैं उनके प्रेरणा देने का काम इन संगठन की कार्य शक्ति ने दिया है। दोनों महानायकों ने अपने समाज को हमेशा संगठित रहने का संदेश दिया है। वह मानते थे कि अगर हमारा समाज संगठित रहेगा तभी आंदोलन में टिक पाएंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनकी आंदोलन के पद्धति में संगठन ने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के आंदोलनों के समय पर विचार किया जाए तो दोनों के कार्यकाल में समानता है। लेकिन दोनों के समय में कुछ वर्षों का अंतर है। इसलिए जब वह आंदोलन कर रहे थे तब की स्थितियों में अधिक विषमता नहीं है। दोनों के भी आंदोलन को अंग्रेज सरकार और निजाम सरकार कुचलना चाहती थी। दोनों वीर नायकों की स्थितियां बहुत मुश्किल थी। इस प्रकार दोनों आंदोलन कर्त्ता खतरों से भरे दौर से गुजर रहे थे। और दोनों का समय लगभग समान ही था। इस प्रकार समय अथवा काल की दृष्टि में भी उनमें कुछ वर्षों का अंतर जोड़ा जाए तो समानता ही दिखाई देती है।

इस आंदोलन का परिणाम यह हुआ कि झारखंड में अंग्रेजों, ने आदिलाबाद क्षेत्र में निजाम ने उनको गंभीरता से लिया और उनकी मांगें क्या हैं ? इसे जानने की कोशिश की। कोमरम् भीम के आंदोलन से त्रस्त होकर निजाम सरकार उनको जमीन देने के लिए तैयार हो जाती है। लेकिन कोमरम् भीम 'समग्र स्वराज्य' की मांग करते हैं। जो कि अमान्य की जाती है। परिणाम स्वरुप कोमरम् भीम अंत में अपने समाज को संगठित कर 'स्वराज्य' के लिए आंदोलन किया। लेकिन उनको असफलता ही मिली।

इस प्रकार उनके समग्र स्वराज्य का सपना अधूरा ही रह जाता है। लेकिन उनका आंदोलन व्यर्थ नहीं गया। उनके विचार आज भी अंगारों की भाँति धधकते हैं। बिरसा मुंडा को भी अंत में पकड़ लिया जाता है और यातनाएं दी जाती है। इस प्रकार दोनों नायक अंत तक लड़ते रहे और अपने समाज को एक अनोखा संदेश छोड़ा। 'बिरसा मुंडा के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि इस तरह एक क्रांतिकारी जीवन का अंत हो गया। सिर्फ पच्चीस साल की उम्र में ही वह काम किया कि, जो किसी व्यक्ति को युग-पुरूष बनाता है। आदिवासी समाज ने उनके जीते-जी उन्हें भगवान माना। मृत्यु के बाद आज तक आदिवासी जन-मानस में बिरसा की छवि ऐसे क्रांतिदूत की है, जो अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से इंसान से भगवान बन गया। बिरसा भारत के प्रथम क्रांतिकारी थे, जिन्होंने अपनी मातृभूमि, अंग्रेजों, साहूकारों, जमींदारों के विरूद्ध संगठित होकर सबसे कम उम्र में आजादी की लड़ाई लड़ी। स्वाधीनता संग्राम में **'गोरों, अपने देश वापस जाओ'** का नारा देने वाले बिरसा मुंडा ही थे।'

बिरसा मुंडा और भीम ने जो आंदोलन शुरू किया था उसका अंत नहीं हुआ। भले ही वह निर्णायक शहीद हुए हो लेकिन उनका आंदोलन विचारधारा के रूप में आज भी जारी है। उनके विचारधारा पर अनेक आदिवासी संगठन बनकर अपनी अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। अपने अधिकारों की बातें कर रहे हैं। आज उनकी विचारधारा प्रासंगिक है। आज के समय में भी बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम को याद किया जाता है। यह उनके आंदोलन की विशेष उपलब्धि मानी जा सकती है। सन् 1900 में किया गया **'उलगुलान'** आंदोलन एक विश्व प्रसिध्द घटना है। बिरसा मुंडा आज भी भगवान बनकर झारखंडियों के संस्कृतियों में बसा है। इस पर कुमार सुरेश सिंह अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि **"बिरसा मुंडा पूरे भारत में आदिवासी लोगों के महानायक के रूप में उभर कर आये हैं और क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक परिवर्तन के प्रतीक के रूप में बिरसा और उनके आंदोलन को मान्यता मिल चुकी है।"**[36]

[36] आदिवासी समाज, साहित्य और राजनीति- पृ. सं. 35-36

3.9 भाषा शैली:

3.9.1 भाषा

भाषा साहित्य का प्रमुख उपकरण माना जाता है। भाषा के माध्यम से ही साहित्यकार पाठकों तक पहुँचता है। भाषा रचनाकारों की अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम है। कथा-साहित्य में भाषा का सर्वाधिक महत्त्व है। रचना-प्रक्रिया की अवधि में कथाकार सहज भाव से भाषा से जुड़ जाता है और भाषा के माध्यम से उसका कृतित्व उद्घाटित होता है। इसलिए अंततः लेखक की भाषिक कला भी सिद्ध होती है। बिरसा मुंडा पर लिखित उपन्यास ‘जंगल के दावेदार’ और कोमरम् भीम पर लिखे गए उपन्यास में लेखकों ने आदिवासियों की भाषा को ध्यान में रखकर साधारण समाज की जन-बोली का प्रयोग किया है। मूल रूप से कोमरम् भीम पर लिखा गया उपन्यास तेलुगु भाषा में है, और बिरसा मुंडा पर लिखा गया उपन्यास हिंदी में है। कोमरम् भीम पर लिखे गए उपन्यास में भाषा के अनेक स्तर दिखाई देते हैं। वैसे ही बिरसा मुंडा पर लिखित उपन्यास ‘जंगल के दावेदार’ में प्रसंगानुसार भाषा में परिवर्तन आता है। दोनों उपन्यास आदिवासी जीवन पर रचित है। इसलिए इसमें परिनिष्ठित भाषा की अपेक्षा बोली, और जनसाधारण की भाषा का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है। इन दोनों उपन्यासों की विशेषता यह है कि लेखकों ने कथावस्तु को ध्यान में रखकर ही आम लोगों की भाषा का प्रयोग कर परिवेश को निर्मित किया है। बिरसा मुंडा पर आधारित उपन्यास ‘जंगल के दावेदार’ में आदिवासियों की बोलचाल की भाषा के अनेक शब्द जस-के-तस ले लिए गए हैं। गीत भी अनेक मूल भाषा से ही लिए हैं। उसी प्रकार कोमरम् भीम पर आधारित उपन्यास में गीत गोंड आदिवासी भाषा में ही लिखे गए हैं। लेखक पात्रों के साथ उनकी मूल भाषा गोंड, मराठी में संवाद करते हैं लेकिन लेखक ने उसे तेलुगु भाषा में लिखा है। इस संदर्भ में ‘कोमरम् भीम’ उपन्यास में गोंड जनजाति का एक लोक गीत है-

कुसे कूकू...कूकू...	-	कोयल का बोलना कू... कू
केड़ा मावई कू...कू	-	जंगल हमारा कू... कू
बीडू मावई कू... कू	-	बंजर जमीन हमारी कू... कू
गोंड राज्यम् कू... कू	-	गोंड राज्य कू... कू
मैसीवाकट कू...कू	-	जीतकर आयेंगे कू... कू
तुडूं अंकत कू... कू	-	नगाड़े बजायेंगे कू... कू
सच्चुला देशम् कू... कू	-	पूरा देश कू...कू
लड़ाई गोल्वना कू... कू	-	आंदोलन जितना कू... कू

मैसीवाकट कू... कू	-	जीतकर आयेंगे कू... कू
कुसे कू.... कू... कू... कू...	-	कोयल का बोलना कू... कू

3.9.2 शैली

'शैली' शब्द हिंदी में अंग्रेजी से आया है। 'शैली' अंग्रेजी शब्द 'स्टाईल' का हिंदी रूपांतरण है। भारतीय काव्यशास्त्र में शैली से मिलते-जुलते अर्थ में रीति शब्द का प्रयोग अर्थ के रूप में देखने को मिलता है। 'काव्यालंकार सूत्र' के आचार्य वामन ने 'रीति' को 'विशिष्ट पद रचना' कहकर परिभाषित किया है। इस परिभाषा के अनुसार विशिष्ट शब्द का अर्थ होता है- गुणयुक्त। यहाँ पर यह बताना आवश्यक है कि शैली केवल साहित्य की नहीं होती बल्कि अन्य कलाओं में भी होती है। शैली एक कलाकार की अभिव्यक्ति का विशिष्ट गुण होता है जिसके द्वारा वह अपने विचारों को विशिष्ट रूप से अभिव्यक्त करता है। इसलिए शैली अपनी बात को कहने का ढंग या तरीका या रीति है।

इसके संदर्भ में आलोचक बच्चन सिंह लिखते हैं "शैली अभिव्यक्ति की विशिष्ट पद्धति होती है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने भावों और विचारों की अपेक्षा अपने को अधिक अभिव्यक्त करता है। अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में कवि का अपना उद्देश्य, स्वभाव, दृष्टिकोण, जीवन प्रणाली अथवा विश्वास, संदेह, अनपढ़ व्यक्ति होते चलते हैं। इसमें केवल मानस की ही अभिव्यंजना नहीं होती है बल्कि संपूर्ण जीवन प्रणाली की होती है।... शैली में लेखक का व्यक्तित्व ही नहीं उभरता समसामयिक लेखक चिंतक प्रणाली भी उभरती है।" बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के जीवन पर आधारित साहित्य में वर्णनात्मक, भावात्मक, पत्रात्मक, संवादात्मक आदि शैलियों का प्रयोग लेखकों ने किया है।

3.9.2.1 वर्णनात्मक-शैली

वर्णनात्मक शैली एक प्रमुख प्रकार है। इसके अंतर्गत उपन्यास में या नाटकों में किए गए वर्णनात्मक प्रसंग आते हैं। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम पर लिखित साहित्य में वर्णनात्मक शैली का अनेक बार प्रयोग हुआ है। इस साहित्य में वर्णनात्मक-शैली की अधिकता होने के कारण यह है कि इसमें ऐतिहासिक कहानी कही गई है। और उनका वर्णन किया गया है। इसलिए यहाँ पर वर्णनात्मक शैली की प्रधानता रही है। वर्णनात्मक शैली में उपन्यास के अनेक प्रसंग आते हैं। जैसे बिरसा मुंडा का सभा बुलाना, कोमरम् भीम द्वारा सभा बुलाना, दोनों का जंगल में छुपना और दोनों के आंदोलन आदि।

इस वर्णनात्मकक शैली का उदाहरण हम 'जंगल के दावेदार' उपन्यास में देख सकते हैं। "डोंबारी पहाड़ के नीचे जागरी मुंडा के घर पर बिरसाईतों ने पहली सभा की। फरवरी का महिना था। कड़ाके के सरदी ! जागरी मुंडा का घर खूब लिप-पोतकर साफ किया गया था। आँगन में धर्म-चुल्हा जला। सारे बिरसाइत

दाल-चावल, चीना-दाना, खड़ी मसूर, जंगली सेम, सेम के बीज-जिसकी जैसी सामर्थ थी- ले आए थे। सब-कुछ एक ही कड़ाही में पकाया गया। सब ने एक साथ बैठकर खाया। उसके बाद सभी घर में अंदर आकर बैठ गए। बिरसा बोला, देखो! साफ-साफ कह रहा हूँ। जो करने जा रहा हूँ वह सब लोग समझ लो। आँखें बंदकर तुम लोग उलगुलान में उतरो, यह मेरी इच्छा नहीं है।"[37]

3.9.2.2 भावात्मक-शैली

भावात्मक-शैली भी साहित्य में प्रत्येक विधाओं में अधिक मात्रा में प्रयुक्त किए जाने वाली एक महत्त्वपूर्ण शैली है। इस शैली के अंतर्गत भावात्मक वातावरण की निर्मिति की जाती है। भावात्मक-शैली के बिना साहित्य लिखा नहीं जा सकता है। भावात्मक-शैली लेखक की कुशलता को भी उजागर करती है। भावात्मक-शैली के अंतर्गत ऐसे प्रसंग या दृश्यों का वर्णन किया जाता है जिससे मानव मन हृदयद्रावक हो जाता है। जिससे मानव मन को वेदना की अनुभूति होती है। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के जीवन पर रचित साहित्य में भावात्मक शैली का अधिक मात्रा में प्रयोग हुआ है। यह समग्र साहित्य भावों से भरा हुआ है। इसलिए इस साहित्य में अन्य शैलियों की अपेक्षा भावात्मक शैली अधिक प्रमाण में प्रयुक्त हुई है। जिसमें अनेक भावात्मक प्रसंग और दृश्य आए हैं।

इसे बिरसा मुंडा पर आधारित नाटक 'धरती आबा' में देख सकते हैं। "उसने मेरी आँखों में देखा।...उसकी आँखों में बहुत दुःख था रे। मैंने उसकी आँखों में सारे दुःख देखे...अपने बाप का दुःख...अपनी माई का दुख...जंगल का दुख...हर मुंडानी का दुख। उसके छुते ही लगा मैंने नदी के बहते जल में नहाया हो जैसे...जैसे भोर की हवा ने छू लिया हो मुझे...किसी देवता के फल की तरह था सब कुछ।...उसने डोंका के कलेजे में कई हाथियों की ताकत भर दी थी। उसने मुझ पगली को भी बदल दिया।"[38]

3.9.2.3 पत्रात्मक-शैली

अन्य प्रकार के उपन्यासों में लेखकीय कथ्य की सुगमता के लिए पत्रात्मक-शैली का प्रयोग भी करते हैं। जबकि ऐतिहासिक उपन्यासों में पत्र-शैली कथ्य की आवश्यकता बन जाती है। इतिहास में एक राजा दूसरे राजा तक अपने सैन्य संदेश पहुँचाता था। वह संदेश पत्र के रूप में होते थे। इस रूप में पत्रात्मक-शैली ऐतिहासिक कथ्य की अनिवार्यता बन जाती है। इससे युग, जीवंत होता है। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम पर लिखित साहित्य में पत्रात्मक-शैली का प्रयोग किया गया है। 'जंगल के दावेदार' उपन्यास में अमूल्य बाबू, मुंडा समाज पर घटित अत्याचारों की जानकारी या बिरसा मुंडा को जेल में किए जाने वाले अन्याय के

---

[37] जंगल के दावेदार- पृ. सं. 175

[38] धरती आबा- पृ. सं. 58-59

बारे में पत्र के द्वारा जेकब को सूचित करते हैं। उसी प्रकार ‘कोमरम् भीम’ उपन्यास में उनके साथी अपनी मांगों के लिए निजाम सरकार को पत्र लिखते हैं। इस प्रकार दोनों पर लिखित साहित्य में पत्रात्मक-शैली का प्रयोग किया गया है। इसका उदाहरण हम ‘कोमरम् भीम’ उपन्यास में उदाहरण देख सकते हैं-

डायरेक्टर जनरल ऑफ रेवेन्यु,

हैदराबाद दक्कन को,

प्रणाम,

सेशन कोर्ट वारंगल से भेजा गये लिफाफा के लिए मैं कल सेशन जज के सामने हाजिर हुआ... मैं कोर्ट में जाकर बैठते ही प्रतिवादी आकर दो पत्र देकर सरकार को भेजने की विनती करते हैं। कुछ प्रतिवादी रो रहे थे और कुछ लोग दुख से देख रहे थे... वह सभी लोग बहुत दुखी दिखाई दिए... उनके व्यवहार को देखकर सेशन जज जी इस तरह के काम मत करना... कोर्ट में होने वाले सभी प्रतिवादी इस स्थिति को देखकर स्थिर हुए...

आपका आज्ञाधारक

विश्वासी सेवक

प्रथम तहसिलदार,

आसिफाबाद।

3.9.2.4 कथा-शैली

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम पर लिखे गए साहित्य में लेखक घटनाओं को कथा या कहानी के रूप में पेश करते हैं। एक पात्र घटित घटना की कथा कह रहा हो, पर अन्य पात्र उसे सुनते हो। ऐसा बार-बार हुआ है। कहीं-कहीं लंबे संवाद भी कथा-शैली में प्रयोग में लाते हैं। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम पर लिखे गए साहित्य में अनेक बार कथा-शैली का प्रयोग हुआ है जैसा कि ‘जंगल के दावेदार’ उपन्यास मों धानी अपने पूर्वजों के समृद्धि की कथा सुनाती है उसी प्रकार ‘कोमरम् भीम’ उपन्यास में मोतीराम दादा उनके पिता, भाभी आदि द्वारा अपने पूर्वजों एवं ऐतिहासिक व्यक्तित्वों की कथा सुनाना।

3.9.2.5 संवादात्मक-शैली

साहित्य में संवादों के माध्यम से कथा घटित होती है। वैसे तो उपन्यासकार को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी पात्रों के गुण-दोषों का चित्रण करने की छूट होती है लेकिन समग्रता में लेखक ऐसा नहीं कर सकता। कथानक से ही, विकास, पात्रों के संवाद द्वारा होता है। संवाद -शैली से कथा का विकास होता है तथा रोचकता पैदा होती है। उपन्यासकार इस शैली का प्रयोग करके पात्रों का विकास करता है। यह शैली उपन्यासों की अपेक्षा नाटकों में अधिक प्रयुक्त होती है। संवाद नाटक का प्राण तत्व है। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के जीवन पर आधारित साहित्य में यह संवाद-शैली भी प्रयुक्त है। इसका एक उदाहरण देखा जा सकता है। 'करमी' और 'बिरसा मुंडा' का संवाद-

"करमीः तू बचाएगा मुझे ?... मेरी रक्षा करेगा ?

बिरसाः हाँ माँ !

करमीः तो बचा ले मुझे ! बचा ले बेटा ! मुझे फिर से हरा-भरा कर दे। जिला दे मुझे इन पापियों ने मेरा नाश किया है।... मुझे अपवित्र किया है।... मुझे रिहाई दिला।... पवित्र कर मुझे।

बिरसाः हाँ माँ, अपने खून से सींचूँगा तुझे। इन नदियों में बाढ़ ला दूँगा ताकि वे घुस न सकें।... इन पहाड़ों से इतने विष बुझे तीर बरसाऊँगा की उनका वंश नहीं बचेगा।

करमीः गाँव ख़ाली हो रहे हैं। तेरे लोग भाग रहे हैं बिरसा। जो भाग रहे हैं उन्हें लौटाकर ले आ मेरे बेटे।

बिरसाः हाँ माँ। ले आऊँगा उन्हें भी।

करमीः मेरा रोना कोई नहीं सुनता।

बिरसाः मैं सुन रहा हूँ माँ।

करमीः मुझे कोई नहीं देखता।

बिरसाः तुम कहाँ हो माँ ?

करमीः तेरी छाती में हूँ।... तेरे खून में हूँ। तेरी साँसों में... तेरी आँखों में... तेरी नींद में... तेरे सपनों में... तेरी आवाज में।"[39]

---

[39] धरती आबा- पृ. सं. 34-35

3.9.3 बिंब

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के जीवन पर लिखित साहित्य की भाषा में बिंबात्मकता की अधिकता है। समय, घटनाओं के बिंब चित्र की भांति दिख जाते हैं। तो कभी स्पर्श, गंध, श्रवण स्वाद आदि का अनुभव भी करवा जाते हैं। उनके बिंब-विधान अर्थ को मानस तक पहुँचाने वाले हैं।

3.9.4 प्रतीक

भारतीय साहित्य में प्रतीक का प्रयोग आदिकाल से किया जा रहा है। जहाँ साहित्यकार अपनी बात को सीधे-सीधे अभिव्यक्त नहीं कर पाता वहाँ प्रतीकों का आश्रय लेता है। आदिकाल के कवि सरहपा से लेकर वर्तमान साहित्यकारों तक प्रतीक का किसी न किसी रूप में अवश्य प्रयोग किया है। 'प्रतीक' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'सिम्बल' शब्द का हिंदी रूपांतरण है जिसकी उत्पत्ति अंग्रेजी में ग्रीक भाषा के 'सिमबोलेन' शब्द से हुई जिसका अर्थ होता है। चिह्न, संकेत, सगुन, मुठ-भेड़ आदि।

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के जीवन पर लिखित साहित्य में अनेक प्रतीकों का प्रयोग किया है। जैसे कि- 'कोमरम् भीम' उपन्यास में कोमरम् भीम द्वारा लाल और सफेद झंडा को दिखाना। लाल झंडा अंग्रेजी सत्ता का प्रतीक है जो संकटों को सूचित करता है। सफेद झंडा गोंड़ों की शांति का प्रतीक है। उसी प्रकार बिरसा मुंडा ने भी इन्हीं प्रतीकों का प्रयोग किया है।

इस संदर्भ में एक उदाहरण है- "झंडे कहाँ ? लाओ, झंडे लाओ।...सामने लगा दो इन्हें। ऐसी जगह लगाओ की दूर से दिखें।... यह उजला झंडा, मुंडा लोगों का झंडा है। और वो दूसरा लाल झंडा, दिकुओं का है। उन्होंने हम पर जुलुम किया है, उन्होंने हमारा खून चूसा है इसलिए उनका झंडा लाल है। अब हम सब उनसे लड़ेंगे, और उनका इतना खून बहाएँगे कि इस डोंबारी पहाड़ के सारे पत्थर लाल हो जाएँ।... हम उनके लाल झंडे को फाड़ देंगे। चिथडा-चिथड़ा कर देंगे। लाओ इस लाल झंडे को।"[40]

3.9.5 मिथक

मिथक का प्रयोग भारत में वेदों, पुराणों, उपनिषदों और शास्त्रों में देखने को मिलता है। भारतीय साहित्य में मिथकों का प्रयोग आदिकाल से हो रहा है चाहे वह किसी भी भाषा या बोली का साहित्य हो। मिथकों से तात्पर्य काल्पनिक, पौराणिक, वैदिक, धार्मिक तथा सामाजिक कथाओं से होता है। इन कथाओं में सत्य ना के बराबर होता है अर्थात् इनका संबंध तार्किकता से नहीं होता। इन मिथकों में समुदायों का युगीन सत्य रहता है। इन मिथकों का प्रयोग साहित्य में देखने को मिलता है। इनका प्रयोग भारतीय साहित्य

[40] धरती आबा- पृ. सं. 79

में ही नहीं बल्कि पाश्चात्य साहित्य में भी देखने को मिलता है। भारतीय साहित्य में वैदिक काल से समकालीन तक सभी साहित्यकारों ने अपने-अपने लेखन में मिथकों का प्रयोग किया है।

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम के जीवन पर लिखित साहित्य में भी मिथकों का प्रयोग हुआ है। जैसे- गोल्लपल्ली यादगीरी द्वारा लिखे गए नाटक में मोतीराम दादा द्वारा यह मिथक बताना कि हम गोंड, कोलाम आदिवासी पांडव के महा बलशाली भीमराजा के वंशज हैं।

3.9.6 शब्द-चयन

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम पर लिखित साहित्य में अनेक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसे- अंग्रेजी, हिंदी, उर्दू, तेलुगु, मराठी, गोंड और मुंडारी आदि।

बिरसा मुंडा पर लिखा गया साहित्य अधिकतर हिंदी भाषा में लिखा गया है जिसमें अंग्रेजी भाषा के साथ अन्य भाषाओं का प्रयोग किया गया है।

कोमरम् भीम के जीवन पर आधारित साहित्य तेलुगु भाषा में लिखा गया है जिसमें हिंदी, गोंडी, उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसके साथ-साथ अशिष्ट शब्दों का भी अधिक मात्रा में प्रय़ोग हुआ है।

3.9.6.1 अंग्रेजी शब्द

अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग दोनों पर लिखे गए कथा-साहित्य में यत्र-तत्र पाया जाता है। अंग्रेजी शब्दों से युगीन प्रभावों को बनाने में सफलता मिली है क्योंकि आज का मनुष्य चाहे सामान्य जन हो वह बार-बार अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करता है। अतः लेखक की रचनाओं में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग होना स्वाभाविक है। अंग्रेजी शब्दों और वाक्यों का उदाहरण-

पुलिस, कलेक्टर, जेल, स्टेशन, टिकट, डी.एस.पी, कम्युनिस्ट, क्रिमिनल, लेफटिनेन्ट गवर्नर, सुपरिडेंट, बुक, रेल, रिपोर्ट, आई डू, दिस आई डोन्ट क्वाईट, देअर इज मोर टू फॉलो, व्हाई कॉल द आर मी, बट दिस इट रिबोलियन, टेरेरिज्म, व्हाई टेल मी ऑल दिस, नो मोर किलिंग, फायरिंग, डेथ, रेन ऑफ टेरेर।

3.9.6.2 देशज-विदेशज शब्द

ज्वार, तिल, तुअर, भात, धान, बाजरा, कपास, घास-फूस, परिवार, डर, पत्थर, उधार, करजा, ठग, तेल, गेहूँ, बूढ़ा-बूढ़ी, बीमारी, डायन, डकैती, लंगोटी, तीर, कुत्ता, धुँआ, दूध, लाल, सफेद, भूत-प्रेत, बलोया, साहब,

मर गया, लाश, राख, चकमक, कंघी, पाउडर, आँधी, बैलगाड़ी, भेड़, बकरी, हिरण, नाक, हट्टे-कट्टे, धोती, घी, गुड़, सत्तु आदि।

3.9.6.3 मुंडारी शब्द

घाटो, बैबूल, बिरसाइत, मादल, हूल, सिंगबोंगा, बेठ, बेगारी, काउन, सदान, भात, कालघून, गोर, बान, खाडू।

3.9.6.4 गोंड़ी शब्द

गुडेम, दुराडी, अक्कर पोरा, बावे, बुडूबावे, सोमी जेरा तड़ीमी सीम।

3.9.6.5 हिंदी-देशज शब्द

"वो हरामी लोग पहाड़ पे हैं, कैसा मिलना… हम गये तो और चढ़ जाते। नहीं... नहीं होता-वो बदमाश का नहीं चलता ! देखना एकेक को गोली से मार डालना ! ऐसा एकेक लमड़ी के इतराज करते रहे तो सरकार किधर रहना ! तुम सरकार के नमक खाते रहकर नमक हराम हो गया ! तुम सब डरपोकू आदमी है... इतना दूर आने दिया।"[41] उनका उँगली काटो, शिकारी, गलत काम किया, पूरा सत्तेनाश किया, बाप रे, क्या समझे ?

3.9.6.6 तेलुगु देशज शब्द

पालेरू, इल्लु, वाकीली, जागलु, गीरूलू, वागलु, वरदलु, रोट्टेलु, दिवीटी, तोड़ेलु, आउ, ऐद्दु, नागली, बेल्लम, निच्चमें, ऐवुसायम्, बोगडा, कलनवाडी, गायरान, बुरीदलु, नेगलु, रोगम्, आव्वा, लट्टू, ढोलु, कोमट्लु, गिरद्वार, पटवारी, पट्टा, तुडूम, कातरी, वड्डे, गड्म्, बंडलु, राईलु।

3.9.6.7 उर्दू-अरबी और फारसी

फरेबी, सिपाही, बंदूक, तोप, बरछा, हुन्नर, मकदमा, नसीब, विलायत, इतमिनान, इंसाफ, खामोश, हरगिज, इंतजाम, खाकी, खैरीयत, मुन्सोसाब।

[41] कोमरम् भीम- पृ. सं. 169-17

3.9.6.8 संयुक्त अर्थ वाले शब्द

तीर-धनुष, घास-फूस, धूल-गद, धीरे-धीरे, नदी-पहाड़, पेड़-पंछी, चाँद-सूरज, मांदर-ढोल, भूत-प्रेत, रोग-शोक, जले-भूजे, साफ-सुधरा, गाँव-गाँव, पेड-पौधे, छोड़े-छोड़े, सुख-दुख, चिखने-चिल्लाने।

3.9.6.9 अशिष्ट शब्द

1- "साला ! बिचारा जाने दो कहके कानून बात करते रे ! तेरी भैन को चोदू... गोंड़ों का धमाक गांड में है तुम इतमिनान से बोले तो सुनते नहीं ! जोर के लौड़ा !... तुम मेरा जमीन नहीं छोड़ते तेरे बाप का जागीर है ! साला ! गोली चलाऊँगा।"[42]

2- "तेरी माँ! का हराम गोंडा।"[43]

3- "अरे हराम का गोंडा! तेरे बाप का जागीर है-यह जमीन मेरा है... मादरचोद...।"[44]

*****

---

[42] वही- पृ. सं. 40

[43] वही- पृ. सं. 124

[44] वही- पृ. सं. 168

उपसंहार

उपसंहार

आदिवासी समाज आरंभ से लेकर आज तक निरंतर मुख्यधारा के समाज द्वारा उपेक्षित रहा है। उनको मुख्य समाज प्रवाह से दूर रखने में तथाकथित दिकू लोगों का लाभ ही है। वह आज भी आदिवासियों को लाभ से और विकास से वंचित रखना चाहता है। आदिवासी समाज अपने हकों के लिए देश पर आये हुए अंग्रेजी सत्ता के संकट के लिए लड़ रहा था। लेकिन आज वही सकंट में है और स्वयं को असुरक्षित महसूस करता है। आदिवासियों ने अंग्रेजों के खिलाफ उनके औपनिवेशिक नीतियों के खिलाफ अनेक आंदोलन किए। लेकिन इतिहासकारों ने इनकी कोई सुध नहीं ली। इस बात का प्रमाण है 'बिरसा मुंडा' और 'कोमरम् भीम' पर अनेक लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्य। इस साहित्य में लेखकों ने इन दोनों महानायकों के आंदोलन और उसके महत्त्व को तो प्रमुख रूप से उजागर किया ही है, लेकिन साथ-साथ अन्य छोटे-मोटे आंदोलन और उससे प्रभावित स्थितियों का चित्रण भी किया है।

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में वास्तविक रूप से आदिवासियों की जो भूमिका रही है उसे तनिक भी दुर्लक्षित नहीं किया जा सकता। प्रस्तुत शोध कार्य में भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में आदिवासियों की भूमिका का अध्ययन करने के उपरांत यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय इतिहासकारों ने इनके आंदोलन और बलिदान को पक्षपात करके दुर्लक्षित किया है। आदिवासियों ने भारत के प्रत्येक क्षेत्र में शोषक सत्ता के खिलाफ आंदोलन किए हैं। *उनके आंदोलन का आंकड़ा लगभग 400 के आसपास है*। जिनमें कुछ प्रमुख आंदोलन को अनेक आदिवासी लेखकों ने साहित्य की प्रत्येक विधाओं के माध्यम से उजागर करने का प्रयास किया है।

भारत में जितने आदिवासी आंदोलन हुए हैं उनमें बिरसा मुंडा द्वारा प्रेरित *'उलगुलान आंदोलन'* और कोमरम् भीम द्वारा *'जोडेघाट आंदोलन'* सर्वाधिक चर्चित है। इन दोनों के आंदोलन की महत्ता एवं योगदान को उजागर करने हेतु हिंदी, बंगाली, मराठी और तेलुगु आदि भाषाओं में विविध साहित्यिक विधाओं में इन पर आधारित साहित्य रचा गया है। इन समग्र विधाओं का उद्देश्य एक ही है। उनकी देशभक्ति और वीरता को दर्शाकर हमें प्रेरित करना। उन पर आधारित समग्र कृतियों में उनके बचपन से लेकर उनके अंत तक सभी घटनाओं का वास्तविक लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम यह दोनों नायक बहुत सारी समानताओं की कसौटी पर खरे उतरते हैं। उनमें अगर समय का अंतर छोड़ दें तो कोई विषमता नहीं प्रतीत होती है।

बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम दोनों महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक पात्र हैं। वह इतिहास निर्माता और इतिहास पुरूष भी हैं। इतिहास में तो बहुत सारे अन्य महानायक भी होकर गए हैं लेकिन बिरसा मुंडा और

कोमरम् भीम के व्यक्तित्व में कुछ जरूर विशेष खासियत है जो इन दोनों को अपने दौर के या पूर्ववर्तियों से भिन्न साबित करता है। इनके संघर्ष और आंदोलन ने रचनाकारों को प्रभावित किया है। यही कारण है कि अखिल भारतीय स्तर पर यह दोनों महापुरुष रचनाकारों की रचना भूमि के आधार स्तंभ बने। इस रूप में देखा जाए तो पाते हैं कि दोनों नायकों पर भारत की विभिन्न भाषाओं में साहित्य सृजित हुआ है। साथ ही दोनों ऐतिहासिक नायकों पर फिल्में भी बनी हैं। यह माध्यम का रूपांतरण मात्र नहीं है। 'बल्कि उस संघर्षशील चेतना का विकास है जो भारतीय इतिहास लेखन को पूर्ण भी करती है। साहित्य, इतिहासकारों के लिए आधार सामग्री बनता है'। उन्हें प्रेरणा देता है और इतिहास के पुनर्लेखन का सवाल इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण हो जाता है। दोनों ऐतिहासिक महापुरूषों और आधुनिक भारतीय इतिहास के निर्माताओं पर जो साहित्य लिखा गया है उसमें उनका जीवन, परिवेश संघर्ष और प्रतिरोध की इतिहास धारा प्रभावित हुई है।

इस लघु शोध कार्य का प्रमुख उद्देश्य दोनों महानायकों के जीवन-संघर्ष को उजागर करना है। इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन अनेक बिंदुओं के सहारे किया गया है। जैसे- कथ्यगत, परिवेश, जीवन-निर्वाह पद्धति, सांस्कृतिक-मूल्य, भौगोलिक-स्थिति, राजनीतिक सहभागिता, पात्र और भाषा-शैली आदि। इन बिंदुओं में वैषम्य की अपेक्षा साम्य ही अधिक है। दोनों पर आधारित साहित्य की कथावस्तु या कथ्य एक समान है। उनका परिवेश भी लगभग समान है। उसी प्रकार उनकी जीवन-निर्वाह पद्धति भी एक-सी है। सांस्कृतिक-मूल्यों में कहीं-कहीं अंतर है। भौगोलिक-अवस्थिति में कुछ विषमता को छोड़कर समानता अधिक है। राजनीतिक-सहभागिता के संदर्भ में भी दोनों समाज की स्थिति समान-सी है। उनमें 'पंचायत व्यवस्था' प्रचलित है। दोनों महानायकों पर लिखित साहित्य में सर्वाधिक समानता पात्रों के संदर्भ में हैं। बिरसा मुंडा के साहित्य में जो पात्र हैं जो भूमिका निभाते हैं। वही पात्र हमें कोमरम् भीम पर लिखे गए साहित्य में जस-के-तस मिलते हैं। विदेशी पात्रों और शोषक पात्रों के संदर्भ में विषमता दिखाई देती है। क्योंकि बिरसा मुंडा पर लिखित साहित्य में विदेशी-पात्रों की प्रधानता है, तो कोमरम् भीम पर आधारित साहित्य में कोई विदेशी पात्र नहीं है।

भाषा-शैली के संदर्भ में भी विषमता की अपेक्षा समानता ही अधिक है। जिस प्रकार बिरसा मुंडा पर आधारित साहित्य में रचनाकारों ने भाषा की विभिन्न शैलियों, बिम्बों और प्रतीकों का और अनेक विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है उसी प्रकार कोमरम् भीम पर लिखे गए साहित्य के रचनाकारों ने उपर्युक्त भाषा संदर्भ के सभी महत्त्वपूर्ण बिंदुओं का प्रयोग कर समानता ही दर्शायी है।

इस प्रकार बिरसा मुंडा और कोमरम् भीम पर आधारित साहित्य में साम्य-वैषम्य अभिव्यक्त हुआ है।

*****

संदर्भ-ग्रंथ सूची

संदर्भ-ग्रंथ सूची

(अ) आधार-ग्रंथ

1. अडवि तल्लि, पुलुगु श्रीनिवास, चेतना प्रकाशन, हैदराबाद- प्र. सं. 1999
2. ओ मेरे बिरसा, भुजंग मेश्राम, (सं. हरिराम मीणा-समकालीन आदिवासी कविता), अलख प्रकाशन, जयपुर- प्र. सं. 2013
3. कोमरम् भीम, भूपाल, वेन्नेला प्रचुरणलु, हैदराबाद- सा. सं. 2012
4. कोमरम् भीम, एस. एम. प्राण राव, रमण प्रकाशन, हैदराबाद- 2010
5. कोमरम् भीम, साहु-अल्लम राजय्या, पर्सस्पेक्टिवस, हैदराबाद- पां. सं. 2013
6. जंगल के दावेदार, महाश्वेता देवी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली- आ. सं. 2016
7. धरती आबा, हृषीकेश सुलभ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- प. आ. 2013
8. बिरसा मुंडा की याद में, सं.हरिराम मीणा,(सुबह के इंतजार में), अक्षर शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली- 2008

(आ) सहायक-ग्रंथ

9. अल्लुरी सीताराम राजु, डॉ. अट्लूरि मुरली, नवतेलंगाना पब्लिशिंगहॉउस, हैदराबाद- 2015
10. आदियोधुलु..अजरामरूलु, गुम्मडी लक्ष्मीनारायण, आदिवासी रचयितला संघम, तेलंगाना-आंध्रा- 2016
11. आदिवासी अस्तित्व और झारखंडी अस्मिता के सवाल, डॉ. रामदयाल मुंडा, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली- प्र. सं. 2002
12. आदिवासी दुनिया, हरिराम मीणा, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली- प. सं. 2013
13. आदिवासी विद्रोह, विद्रोह परंपरा और साहित्यिक अभिव्यक्ति की समस्याएँ, केदार प्रसाद मीणा, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली- प्र. सं. 2015
14. आदिवासी : समाज, साहित्य और राजनीति, केदार प्रसाद मीणा, अनुज्ञा प्रकाशन, दिल्ली- 2014
15. आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह (झारखण्ड), रमणिका गुप्ता, सुरभि प्रकाशन, दिल्ली- प्र. सं. 2015
16. आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह (पूर्वोत्तर खंड), रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली- प्र. सं. 2012
17. आदिवासुलु चट्टालु अभिवृध्दि, के. बालगोपाल, पेरस्पेक्टिवेस, हैदराबाद- 2016

18. आधुनिक भारत का इतिहास, बिपिन चंद्रा, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, हैदराबाद- 2008
19. कोमरम् भीम (जीवितम्-पोराटम्), कासुला प्रताप रेड्डी, तेलुगु अकादमी, हैदराबाद- प्र. सं. 2012
20. कोमरम् भीम मुंदु तर्वाता इप्पुडु, डॉ. वी. एन. वी. के. शास्त्री, नवतेलंगाना पब्लिशिंग हॉउस, हैदराबाद- 2015
21. ग्लोबल गाँव का देवता, रणेंद्र , भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली- 2009
22. चोट्टि मुंडा और उसका तीर, महाश्वेता देवी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली- दू. सं. 2008
23. जनजातीय भारत, नदीम हसनैन, जवाहर पब्लिकेशर्स एंड डिस्ट्री ब्यूटर्स, नई दिल्ली- आ. सं. 2013
24. बिरसा मुंडा, गोपीकृष्ण कुँवर, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली- 2016
25. बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन, कुमार सुरेश सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- 2008
26. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, बिपिन चंद्रा, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय- 2013
27. भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद : एक अध्ययन, सं. हिमांशु रॉय, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय- 2013
28. Trible Revolts, B. K. Sharma, Pointer publishers, Jaipur- 1996
29. The Roots of Periphery, Bhangya Bhukya, Oxford University Press, New Delhi- 2017

(इ) पत्र-पत्रिकाएँ

30. आदिवासी सत्ता, के. आर. शाह, छत्तीसगढ़- 2010-2011

परिशिष्ट

परिशिष्ट-क

बिरसा मुंडा का परिवार

- लकड़ी मुंडा (चलकद में विवाहित)
  - कानू पाहन
  - सुगना मुंडा (अयुबहतु, खूँटी में विवाह)
    - कोम्ता
    - दसकीर (कनादर में विवाहित)
    - चम्पा (पंगुरा में विवाहित)
    - बिरसा मुंडा
      - परिबा (दत्तक पुत्र)
        - नारायण सिंह
    - कानू (अपनी ससुराल में बस गया)
  - पासना

अयुबहतु में बिरसा की माँ का परिवार

- डीबर मुंडा
  - करमी (बिरसा की माँ)
  - सोहराई
  - जोनी (बिरसा की मौसी, खटंगा में विवाहित)

परिशिष्ट-ख

कोमरम् भीम का परिवार